प्रकाशक—
वृद्धिशंकर शर्मा "हितैषी"
हितैषी पुस्तक भण्डार
उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण १९५२ ई०
मूल्य ५)

मुद्रक—
जे. एन. भिडे,

विषय-सूची

निवेदन

राजस्थान के कवियों ने अपनी काव्य-रचनाओं का निर्माण मुख्यतः दो भाषाओं में किया है, डिंगल और पिंगल। डिंगल मारवाड़ी का पर्यायवाची शब्द है और पिंगल ब्रजभाषा का। अपने इस ग्रंथ में मैंने राजस्थान के पिंगल साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया है।

इसमें पिंगल भाषा के ४६४ कवियों का विवरण दिया गया है जिनमें ६२ कवि ऐसे हैं जो अभी तक अज्ञात थे और जिनका पता सर्वप्रथम मैंने अपनी खोज से लगाया है। शेष कवियों में से लगभग आधे कवियों का वर्णन शिव-सिंह-सरोज, दि मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिंदुस्तान, मिश्रबंधु-विनोद इत्यादि ग्रंथों में मिलता है और बाकी के नाम राजस्थान के इतिहासकारों, साहित्यान्वेषकों, संग्राहकों आदि की पुस्तकों में इधर-उधर बिखरे पाये जाते हैं। परन्तु इन कवियों के परिचय आदि जो इन ग्रंथों में मिलते हैं वे प्रायः अपूर्ण अथवा इतिहास की दृष्टि से भ्रान्तिदायक हैं। विशेषकर मिश्रबंधु-विनोद तो भूलों से भरा हुआ है। उसमें शायद ही कोई ऐसा पृष्ठ मिले जिस में कोई न कोई अशुद्धि न हो। कहीं कवि का निर्माण-काल ठीक नहीं है, कहीं उसके पिता अथवा आश्रयदाता का नाम अशुद्ध दिया हुआ है, कहीं एक ही ग्रंथ को तीन-चार कवियों के नाम पर लिख दिया गया है, तथा इसी प्रकार की और भी कई भूलें उसमें दृष्टिगोचर होती हैं। इस ग्रंथ में मैंने इन भूलों को ठीक किया है और साथ ही इन ग्रंथों में जिन कवियों के विवरण अधूरे रह गये हैं उनको पूरा भी किया है। इसके लिये मैंने राजस्थान के प्रायः सभी हस्तलिखित पुस्तकों के भंडारों को टटोला है और अपनी एकत्र की हुई इतिहास-सामग्री का उपयोग किया है जिसका निर्देश स्थान-स्थान पर इस पुस्तक की पाद-टिप्पणियों में किया गया है।

यह एक साहित्यिक शोध का ग्रंथ है। अतएव इसके लिखने में मैंने किसी कवि अथवा ग्रंथ की आलोचना करने की अपेक्षा उसके ऐतिहासिक पहलू पर विशेष जोर दिया है। कविताओं के नमूने भी केवल उन्हीं कवियों के दिये हैं जो बिलकुल नये हैं अथवा हिंदी-साहित्य के इतिहास संबंधी प्रकाशित ग्रंथों में नहीं मिलते हैं।

राजस्थान के पिंगल साहित्य के निर्माण में जैन कवियों का भी पूरा सहयोग रहा है। परंतु इनके ग्रंथ धार्मिक विषयों पर अधिक है और 'साहित्य' शब्द का जो अर्थ आजकल लिया जाता है उसके अंतर्गत उनकी समाई नहीं होती। अतएव मैंने अधिकांश जैन कवियों को छोड़ दिया है और केवल उन्हीं को लिया है जिनकी रचनाओं में साहित्यिक गुण पाये जाते हैं।

जिन कवियों की रचनाओं को मैंने साहित्य, इतिहास, भाषाशास्त्र इत्यादि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझा उन कवियों का वर्णन मैंने विस्तारपूर्वक इस पुस्तक के मूल भाग में किया है और शेष का परिशिष्टों में। परिशिष्टों में आये हुए कुछ कवियों के काल आदि का व्योरा उन्हीं के ग्रंथों के आधार पर दिया गया है, और वह ठीक है। परन्तु कुछ के काल आदि का निर्णय उनके आश्रयदाता राजा-महाराजाओं के शासन-समय, उनके समकालीन कवियों की रचनाओं, उनके ग्रंथों की कुछ पीछे की लिखी हुई हस्तलिखित प्रतियों आदि के आधार पर किया गया है और इसलिये उनके जो संवत दिये गये हैं वे लगभग ठीक हैं, निश्चयात्मक नहीं हैं। यह एक प्रकार की कच्ची सामग्री (Raw Material) है जिसको यह सोचकर इस पुस्तक में सम्मिलित किया गया है कि भविष्य में यदि कोई विद्वान डिंगल साहित्य संबंधी इस शोध-कार्य को आगे बढ़ाने के लिए हाथ में लेंगे तो उनको कुछ सहारा मिलेगा।

हिंदी भाषा में कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके दो रूप प्रचलित हैं। जैसे मीरां–मीरा, राठोड़–राठौर, वाणी–बानी, चौहाण–चौहान, महाराणा–महाराना, चित्तौड़–चित्तौर आदि। राजस्थान में इनका पहला रूप प्रचलित है। परन्तु हिंदी के विद्वानों में दूसरे रूप का चलन अधिक देखने में आता है। मैंने प्रथम रूप को अपनाया है और मीरां, राठोड़ आदि लिखा है। यह ठीक भी है। क्योंकि ये शब्द राजस्थान में इसी तरह लिखे और बोले जाते हैं। डा० ओझा आदि विद्वानों ने भी इनको इसी तरह लिखा है।

मैं भी हिंदी का एक तुच्छ सेवक हूँ और मुख्यतः हिंदी-सेवा के उद्देश्य से ही मैंने यह ग्रंथ तैयार किया है। यदि इससे हिंदी की कुछ श्री-वृद्धि हुई तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

अंत में यहां मैं श्रीमान् मोहनवल्लभजी पंत एम० ए०, प्रोफेसर, महाराणा भूपाल कॉलेज, उदयपुर, को धन्यवाद देना भी अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की पांडुलिपि को आद्योपान्त पढ़ने का कष्ट उठाया और उसमें अनेक सुधार-संशोधन किये। श्रद्धेय पंतजी हिंदी के एक प्रतिष्ठित विद्वान एवं मर्मज्ञ समालोचक हैं और उनके पथ-प्रदर्शन से मुझे बहुत लाभ हुआ है। वस्तुतः यदि इस पुस्तक में कोई अच्छाई है तो उसका श्रेय श्री पंतजी ही को है।

उदयपुर (मेवाड़)
ता० [illegible]

मोतीलाल मेनारिया

संकेत-चिह्न

अ० सं० पु० = अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर
ग्रं० = ग्रंथ
ज० = जन्म-काल
ना० प्र० स० = नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
नि० का० = निर्माण-काल
पु० = पुल्लिग
वे० प्रे० = वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
म० = महाराजा
मृ० = मृत्यु-काल
र० = रचना
वि० = विवरण
वें० प्रे० = श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई
स० भं० उ० = सरस्वती भंडार, उदयपुर
स्त्री० = स्त्रीलिंग
हिं० सा० स० = हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

पहला अध्याय

पृष्ठभूमि

राजस्थान भारत का एक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रदेश है। इसे भारत की वीरभूमि कहा गया है। यहाँ का इतिहास भारत की वीरता का इतिहास है। इसके सिवा यह साहित्य और कला का भी केन्द्र रहा है। महाकवि माघ और प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त यहीं के निवासी थे[1]। भक्त मीरांबाई और नागरीदास ने यहीं जन्म लिया था। कविकुल चूड़ामणि बिहारी और पद्माकर यहीं के आश्रित थे।

प्राचीन नाम–प्राचीन समय में इस प्रान्त के लिए किसी एक नाम का प्रयोग नहीं होता था। इसके भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध थे। पुराणों के अनुसार वर्तमान अलवर-जयपुर राज्य के कुछ अंशों को मत्स्य देश कहते थे।[2] मत्स्य के दक्षिण में धुंधुमार (ढूंढाड़) देश का उल्लेख आता है। अजमेर के निकट का प्रदेश पुष्करारण्य और आबू के आसपास का शाल्वदेश कहलाता था। बीकानेर के प्रदेश का नाम जाँगल प्रसिद्ध था।[3] पश्चिमी राजस्थान प्रायः समूचा भूतत्व की दृष्टि से मरूकान्तार कहलाता था। मेवाड़ का नाम शिविदेश था जिसकी राजधानी मध्यमिका थी।[4] डूँगरपुर-बाँसवाड़ा के सम्मिलित राज्यों के लिये (वार्गट) वागड़ नाम प्रयुक्त होता था और अब भी वे उसी नाम से प्रसिद्ध हैं[5]।

राजस्थान–इस समय यह प्रान्त राजपूताना और राजस्थान दोनों नामों से प्रसिद्ध है। जिस समय अंग्रेजों का संबंध इस प्रान्त के साथ हुआ उस समय इसके अधिक भाग पर राजपूत राजाओं का अधिकार था। इसलिए उड़ियाना, तिलंगाना आदि के अनुकरण पर उन्होंने इसका नाम भी राजपूताना, अर्थात् राजपूतों

---

1. ओझा; राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द. पृ० १३२ और १४६।
एम० कृष्णमाचार्य; हिस्ट्री ऑव क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ १५४।
2. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३३३।
3. ओझा; बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ० १०२।
4. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३३५।
5. ओझा; डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १

का देश रख दिया । इसका राजस्थान नाम भी बहुत प्राचीन नहीं है। सर्वप्रथम जार्ज टॉमस ने अपने "मिलिटरी मॅमोयर्स" (सं० १८५७) में और उनके पश्चात् कर्नल टॉड ने अपने 'एनल्स ऍंड एंटिक्विटीज आव राजस्थान' (सं० १८८६) में इसके लिए इस शब्द का प्रयोग किया था जो राजाओं तथा उनके स्थान का सूचक है और लोक-प्रचलित 'रायथान' शब्द का रूपान्तर है। वैसे 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग उल्लिखित 'मॅमोयर्स' से पूर्व के लिखे राजस्थानी भाषा के 'नैणसी की ख्यात' (सं० १६८७-१७२७) और 'राजरूपक' (सं० १७८८) ग्रंथों में भी देखने में आता है। परन्तु वहां यह शब्द राजस्थान प्रान्त के अर्थ में नहीं, प्रत्युत 'राजधानी' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है:—

"संमत १६७२।। रांणी अमरसिंघ साहजादै खुरम सूं मिलियो ।। तठा पछै राणी अमरसिंघ उदैपुर आयौ ।। तठा पछै राजस्थान उदैपुर हुवौ" ।।

—नैणसी की ख्यात[6]

"सप्तपुरी सिरताजं, क्रत अपवर्ग हूँत समकारण ।
उत्तम धाम अजोध्या, ओपै नाम ग्राम पुर ऊपर ।। २५ ।।

थिर ते राजसथानं, महि इक छत्र भोम सामर्थ ।
एकै आण अखंडं, खंडण माण प्राण नवखंडं" ।। २६ ।।

—राजरूपक[7]

राजनीतिक विभाग—भारत की स्वतंत्रता के पूर्व राजस्थान छोटे-बड़े २१ राज्यों में बंटा हुआ था[8] और अजमेर-मेरवाड़े का प्रदेश और अलग था। इन सब राज्यों को मिलाकर अब राजस्थान को भी एक प्रशासनीय इकाई अथवा संघ का रूप दे दिया गया है। कुछ राजनीतिक कठिनाइयों के कारण अजमेर-मेरवाड़ा अभी इसमें नहीं मिल पाया है। परन्तु भाषा, संस्कृति, रहन-सहन, जनतत्व इत्यादि की दृष्टि से वह राजस्थान का एक अविभाज्य अंग है और उसकी आर्थिक तथा भौगोलिक स्थिति कुछ ऐसी है

---

6. सरस्वती-भंडार, उदयपुर, की हस्तलिखित प्रति पृ० २७

7. राजरूपक (ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित); पृ० १०-११

8. उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, जयपुर, अलवर, बूंदी, कोटा, सिरोही, जैसलमेर, करौली, झालावाड़, भरतपुर, धौलपुर, टोंक, शाहपुरा, लावा, और कुशलगढ़,

कि वह पृथक् नहीं रह सकता। अतः कभी न कभी उसका भी इसमें सम्मिलित हो जाना निश्चित है।

प्राकृतिक विभाग–अर्वली[9] पर्वत श्रेणी ने इस प्रान्त को दो भागों में विभक्त कर दिया है, उत्तर-पश्चिमी और दक्षिण-पूर्वी। उत्तर-पश्चिमी भाग में बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, और जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश का अंश है। यह भाग मारवाड़ या मरुदेश कहलाता है। इसमें समस्त प्रान्त का $\frac{3}{5}$ भाग आ गया है। यह भाग रेतीला एवं अनउपजाऊ है और यहाँ वर्षा बहुत कम होती है। जोधपुर में वर्षा का औसत १३ इंच, बीकानेर में १२ इंच तथा जैसलमेर में ७ इंच के लगभग है। इस तरफ़ थार का एक बहुत बड़ा रेगिस्तान है और भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा इधर अकाल भी अधिक पड़ते हैं। शीतकाल में इधर बहुत अधिक सर्दी तथा उष्णकाल में बहुत अधिक गर्मी पड़ती है और लू-आँधियाँ बहुत चलती हैं। यहाँ विशेषकर एक ही फसल सियालू की होती है, उनालू की बहुत कम। जलवायु शुष्क किन्तु स्वास्थ्यप्रद है। यहाँ घोड़े, ऊँट, बैल आदि जानवर बहुत अच्छे होते हैं।

दक्षिण-पूर्वी भाग में जयपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, किशनगढ़, टोंक, कोटा, बूंदी, झालावाड़, मेवाड़, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, सिरोही, शाहपुरा, कुशलगढ़, लावा और अजमेर-मेरवाड़े का इलाक़ा है। इस विभाग में वर्षा अपेक्षाकृत कुछ अच्छी होती है और भूमि भी अधिक उपजाऊ है।

---

9. 'अर्वली' शब्द डिंगल भाषा के 'आड़ावळा' शब्द का विकृत रूप है। अंग्रेज़ी भाषा के उच्चारण की अपूर्णता के कारण 'आड़ावळा' का 'अर्वली' हो गया है। डिंगल भाषा के प्राचीन ग्रंथों में 'आड़ावळा' ही लिखा मिलता है:—

> अति आणंद ऊमाहियौ, वहइ ज पूगळ वट्ट।
> त्रीजइ पुहरि उलाँघियौ, आड़वळा री घट्ट॥
> आडवळे आधौ फरइ, एवड़ माँहि असन्न।
> तिण अजाँण ढोलइ तणै, मूरख भागइ मन्न॥
>
> —ढोला मारू रा दूहा (सं० १५३०)

> दुवै फौज फव्वै गिरंगज्ज डाणे
> उभै जाणि आड़ावळा खेत आणे
>
> —रतन रासौ (सं० १७७२)

मेवाड़ में वर्षा का औसत २४ इंच, झालावाड़ में ३७ इंच और बांसवाड़े में ३८ इंच के लगभग है। अधिक ऊंचाई के कारण आबू पर्वत में ५७-५८ इंच के लगभग वर्षा होती है। जल की अधिकता से इस तरफ कई घने जंगल हैं जिनमें इमारती काम के लिये उपयोगी लकड़ी के अतिरिक्त तरह-तरह के फल-फूल भी होते हैं। इस भाग में फसलें साधारणतया दो होती हैं—उनालू और सियालू। परन्तु जलवायु की आर्द्रता के कारण लोगों को प्रायः मलेरिया और मंदाग्नि की शिकायत रहती है।

भौगोलिक स्थिति का प्रभाव—राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति और जलवायु का प्रभाव इसके इतिहास, इसकी संस्कृति और इसके निवासियों की रहन-सहन एवं आचार-विचार पर बहुत पड़ा है। यहां के लोग बड़े परिश्रमी, बड़े साहसी एवं बड़े कष्ट-सहिष्णु होते हैं। चित्रकला, संगीत और कविता के ये बड़े प्रेमी होते हैं और अपने पूर्वजों की गौरव-गाथाओं के सुनने-सुनाने में में बड़ा रस लेते हैं। इनमें धर्म-भीरुता, रूढ़िवादिता और यशःप्रियता कुछ विशेष देखने में आती है। यहाँ की राजपूत जाति की वीरता और वैश्य जाति की व्यापारिक बुद्धि एवं दानशीलता विश्व-विख्यात है। इसके सिवा यहाँ की भील जाति भी अपने पुरुषार्थ, अपनी स्वामिभक्ति और अपने अतिथि-सत्कार के लिए बहुत प्रसिद्ध है। बहुत दीर्घ काल तक इस जाति ने राजपूतों को उनके स्वाधीनता-संग्राम में सहायता दी है। महाराणा प्रताप के मुख्य साथी भील ही थे। जिस समय औरंगजेब ने उदयपुर पर आक्रमण किया उस समय महाराणा राजसिंह की सेना में ५०००० भील थे[10]। आजकल भील एक जंगली जाति मानी जाती है। परन्तु एकता और स्वावलंबन ये इस जाति के दो ऐसे गुण हैं जो भारत की अन्य किसी जाति में इतनी अधिक मात्रा में नहीं पाये जाते।

संगीत—केवल वीरता के क्षेत्र में ही नहीं, संगीतकला, चित्रकला, शिल्पकला और साहित्य के क्षेत्र में भी राजस्थान ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है। संगीत का आदर यहाँ के राजदरबारों एवं देव-मंदिरों में निरंतर रहा। यहाँ के रागों में 'मीरांबाई का मलार' बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त राग मांड़ और राग सिंधू ये दो राग राजस्थान के खास अपने हैं। राग मांड़ शृंगार रस के लिये बहुत उपयुक्त है। इसका उत्पत्ति-स्थान जैसलमेर माना गया है[11]। राग सिंधू वीर रस का राग है। प्राचीन काल में रण-

10. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५५८

11. ओझा; राजपूताने का इतिहास पहली जिल्द, पृ० ३१

मेवाड़ में वर्षा का औसत २४ इंच, झालावाड़ में ३७ इंच और बांसवाड़े में ३८ इंच के लगभग है। अधिक ऊंचाई के कारण आबू पर्वत में ५७-५८ इंच के लगभग वर्षा होती है। जल की अधिकता से इस तरफ कई घने जंगल हैं जिनमें इमारती काम के लिये उपयोगी लकड़ी के अतिरिक्त तरह-तरह के फल-फूल भी होते हैं। इस भाग में फसलें साधारणतया दो होती हैं—उनालू और सियालू। परन्तु जलवायु की आर्द्रता के कारण लोगों को प्रायः मलेरिया और मंदाग्नि की शिकायत रहती है।

भौगोलिक स्थिति का प्रभाव—राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति और जलवायु का प्रभाव इसके इतिहास, इसकी संस्कृति और इसके निवासियों की रहन-सहन एवं आचार-विचार पर बहुत पड़ा है। यहाँ के लोग बड़े परिश्रमी, बड़े साहसी एवं बड़े कष्ट-सहिष्णु होते हैं। चित्रकला, संगीत और कविता के ये बड़े प्रेमी होते हैं और अपने पूर्वजों की गौरव-गाथाओं के सुनने-सुनाने में में बड़ा रस लेते हैं। इनमें धर्म-भीरुता, रूढ़िवादिता और यशःप्रियता कुछ विशेष देखने में आती है। यहाँ की राजपूत जाति की वीरता और वैश्य जाति की व्यापारिक बुद्धि एवं दानशीलता विश्व-विख्यात है। इसके सिवा यहाँ की भील जाति भी अपने पुरुषार्थ, अपनी स्वामिभक्ति और अपने अतिथि-सत्कार के लिए बहुत प्रसिद्ध है। बहुत दीर्घ काल तक इस जाति ने राजपूतों को उनके स्वाधीनता-संग्राम में सहायता दी है। महाराणा प्रताप के मुख्य साथी भील ही थे। जिस समय औरंगजेब ने उदयपुर पर आक्रमण किया उस समय महाराणा राजसिंह की सेना में ५०००० भील थे[10]। आजकल भील एक जंगली जाति मानी जाती है। परन्तु एकता और स्वावलंबन ये इस जाति के दो ऐसे गुण हैं जो भारत की अन्य किसी जाति में इतनी अधिक मात्रा में नहीं पाये जाते।

संगीत—केवल वीरता के क्षेत्र में ही नहीं, संगीतकला, चित्रकला, शिल्पकला और साहित्य के क्षेत्र में भी राजस्थान ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है। संगीत का आदर यहाँ के राजदरबारों एवं देव-मंदिरों में निरंतर रहा। यहाँ के रागों में 'मीरांबाई का मलार' बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त राग मांड और राग सिंधू ये दो राग राजस्थान के खास अपने हैं। राग मांड शृंगार रस के लिये बहुत उपयुक्त है। इसका उत्पत्ति-स्थान जैसलमेर माना गया है[11]। राग सिंधू वीर रस का राग है। प्राचीन काल में रण-

10. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५५८
11. ओझा; राजपूताने का इतिहास पहली जिल्द, पृ० ३१

प्रयाण के समय ढोली और ढाढ़ी लोग इसे सेना के आगे गाते हुए चलते थे। डिंगल भाषा के कवियों ने इसका वर्णन किया है[12]। युद्ध का अवसर न होने से यह राग अब शनैः शनैः विस्मृत होता चला जा रहा है। संगीत-शास्त्र संबंधी प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में इस राग का नामोल्लेख नहीं मिलता। परन्तु अठारवीं शताब्दी और उसके बाद के कुछ ग्रंथों में इसका नाम देखने में आता है। उदयपुर के सरस्वती-भंडार में 'रागमाला' की एक चित्रित प्रति सुरक्षित है। यह कदाचित महाराणा जयसिंह के राजत्व-काल (सं० १७३७–५५) में तैयार की गई थी। इसमें राग सिंधू को राग दीपक का पुत्र बतलाया गया है। इसमें राग सिंधू का एक भव्य चित्र भी है।

संगीत कला के साथ-साथ संगीत-साहित्य को भी राजस्थान से बहुत प्रोत्साहन मिला है। संगीत-शास्त्र संबंधी कई उत्कृष्ट ग्रंथ यहाँ लिखे गये हैं जिनमें संगीत-कला के विविध अंगों का बड़ा सूक्ष्म और वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। इनमें मेवाड़ के महाराणा कुंभाजी (सं० १४९०–१५२५) के रचे तीन ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं–संगीत-मीमांसा, संगीतराज और सूड़प्रबंध[13]। इनमें संगीतराज सब से बड़ा है। कहा जाता है कि इसमें १६००० श्लोक थे[14]। परंतु आजकल यह ग्रंथ पूरा नहीं मिलता। जयपुर के कछवाहा राजा भगवंतदास (सं० १६३०–४६) के पुत्र माधवसिंह बड़े संगीत-प्रेमी थे। इन्होंने खानदेश के पुंडरीक विट्ठल से 'राग-मंजरी' नाम का एक ग्रंथ लिखवाया था[15] जो प्रकाशित भी हो चुका है। भगवंतदास से कोई दो सौ वर्ष

---

12. (क) हुवो अति गींदवो राग वागी हकां।
घाट आया पिसण घाट लागै थकां॥
—ईसरदास (सं० १५६५–१६७५)

(ख) सखी अमीणो साहिबो, निरभै काळो नाग।
सिर राखै मिण सांमध्रम, रीझै सिंधू राग॥
—बाँकीदास (सं० १८२८–९०)

(ग) आळस जाणं ऐस मे, वपु ढीलै विकसंत।
सींधू सुणियाँ सो गुणो, कवच न मावै कंत॥
—सूरजमल (सं० १८७२–१९२५)

13. हरबिलास सारड़ा; महाराणा कुंभा, पृ० १६६

14. एम० कृष्णमाचार्य; हिस्ट्री आव क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० ८६२

15. ओझा; राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० ३२

पश्चात् महाराजा प्रतापसिंह (सं० १८३५-६०) जयपुर के राजसिंहासन पर आसीन हुए। इनके समय में 'राधा-गोविंद-संगीत-सार', 'राग-रत्नाकर' और 'स्वर-सागर' तीन बहुत उत्तम कोटि के ग्रंथ इस विषय पर लिखे गये[16]। इसी प्रकार बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह (सं० १७२६-५५) ने भी अपने राजाश्रित पंडित भाव भट्ट से 'संगीत-अनूपांकुश', 'अनूप-संगीत-विलास' और अनूप-संगीत-रत्नाकर' नामक तीन ग्रंथ बनवाये थे[17]।

चित्रकला—राजस्थान चित्रकला के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। यहां के राजकीय चित्रालयों तथा राजपूत सरदारों के घरों में प्राचीन चित्र बहु-संख्या में पाये जाते हैं जिनमें कोई-कोई चार सौ वर्ष तक के पुराने हैं। ये चित्र एक विशेष शैली में अंकित किये गये हैं जिसे कला विशेषज्ञों ने 'राजस्थानी शैली' नाम दिया है। इन चित्रों में देवी-देवताओं, राग-रागिनियों, पौराणिक कथाओं, सामंतों, युद्ध-घटनाओं आदि के चित्र अधिक देखने में आते हैं। ये चित्र बहुधा मोटे बांसी कागज पर मिलते हैं। रंगों की उज्ज्वलता, कल्पना की सुघड़ता और वातावरण की तीव्रता इन चित्रों की मुख्य विशेषताएँ हैं। इनमें आलंकारिकता कुछ अधिक पाई जाती है पर भाव-कोमलता का भी सर्वथा-अभाव नहीं है। इनके द्वारा गुप्तकालीन तथा उससे पूर्व की भारतीय चित्रकला का भी अच्छा आभास मिलता है। इन चित्रों में अनेक ऐसे हैं जिन पर मुग़ल-शैली का यथेष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ये चित्र अकबर-जहांगीर के समय या उसके बाद के हैं। इनमें मानव आकृति के यथार्थ चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। सौन्दर्य्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये चित्र अनुपम हैं।

फुटकर चित्रों के अतिरिक्त संस्कृत, राजस्थानी, फारसी आदि भाषाओं के चित्रित ग्रंथ भी राजस्थान में बहुत मिलते हैं। ये ग्रंथ खुले पत्रों के रूप में भी मिलते हैं और सजिल्द पुस्तकाकार में भी। खुले पत्रोंवाले चित्रित ग्रंथों को राजस्थान में 'जोतदान' कहते हैं। इन ग्रंथों के चित्रों के चारों ओर सादी कोर होती है और प्रत्येक चित्र के ऊपर उससे संबंधित पूरा छंद अथवा उस छंद का संक्षिप्त गद्यात्मक विवरण लिखा रहता है। रामायण, महाभारत पृथ्वीराज रासो आदि बड़े आकार के ग्रंथों की केवल मुख्य-मुख्य घटनाओं के चित्र बनाये गये हैं पर 'बिहारी-सतसई' जैसे छोटे ग्रंथों के प्रत्येक पद्य का

---

16. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली (ना॰प्र॰ सभा द्वारा प्रकाशित); पृ० ४८ (भूमिका)।
17. ओझा; बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ० २८६

चित्रांकन किया गया है। जयपुर के पोथीखाने में रज्मनामा (महाभारत का फारसी में सारांश) की एक सचित्र प्रति सुरक्षित है जो मुगल सम्राट अकबर की आज्ञा से तैयार की गई थी [18]। इसमें १६६ चित्र हैं। इस पर चार लाख रुपया खर्च हुआ था और अकबरी दरबार के चौदह चित्रकारों ने इस पर काम किया था[19]। यह ग्रंथ भारतीय चित्रकला के भंडार का अनमोल रत्न है और मुद्रित भी हो चुका है। इस प्रकार की चित्रित पोथियों का सब से बड़ा संग्रह उदयपुर के 'सरस्वती-भंडार' में पाया जाता है जहां लगभग ५० ग्रंथ विद्यमान हैं।

शिल्प—संगीतकला और चित्रकला के समान प्राचीन काल में राजस्थान की शिल्पकला भी बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। आबू, चितौड़, नागदा, चंद्रावती, झालरापाटन आदि स्थानों के कुछ प्राचीन देवालयों में खुदाई का काम इतना सुन्दर और बारीकी के साथ किया गया है कि उसे देखकर मनुष्य चकित रह जाता है। इसी तरह बहुत से अन्य स्थानों में भी शिल्प-चातुर्य्य के उत्कृष्ट नमूने पाये जाते हैं। उदयपुर से कोई सवा सौ मील पूरब दिशा में बाड़ोली नामक एक छोटा-सा प्राचीन गांव है जो नवीं-दशवीं शताब्दियों में बहुत समृद्ध था और भद्रावती नाम से विख्यात था। यहाँ शिव, विष्णु, गणेश, त्रिमूर्ति आदि के कई जीर्ण-शीर्ण मंदिर हैं जिनकी कारीगरी की भारतीय शिल्प के विशेषज्ञ फर्गूसन ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, और शेषशायी नारायण की मूर्त्ति के संबंध में तो यहां तक कह दिया है कि मेरी देखी हुई हिंदू मूर्त्तियों में यह सर्वोत्तम है[20]। प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टाड ने भी यहां की तक्षण-कला को अद्भुत और वर्णनातीत बतलाया है[21]।

भाषा—प्राचीन काल में राजस्थान की राजकीय भाषा संस्कृत थी। विद्वान लोग अपने ग्रंथों की रचना इसी भाषा में करते थे और यहाँ के दानपत्र तथा शिलालेख आदि भी इसी भाषा में लिखे जाते थे। लेकिन जनसाधारण की भाषा प्राकृत थी। अशोक के समय का एक स्तंभ-लेख जयपुर राज्यान्तर्गत

---

18. टी० एच० हेंडले; मेमोरियल्स ऑव् दि जयपुर एग्जिबिशन, भाग चतुर्थ, भूमिका, पृ० १
19. वही; पृ० २
20. दि हिस्ट्री आव इंडियन ऐंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर, पृ० १३४।
21. दि एनल्स ऐंड एंटिक्विटीज़ आव राजस्थान (क्रुक्स का संस्करण), पृ० १७५२–१७६४।

बैराट गाँव से मिला है जो उस समय की प्राकृत में है। प्राकृत के बाद वहाँ अपभ्रंश का प्रचार हुआ। इसमें भी प्रचुर साहित्य रचा गया जिसका अधिकांश श्रेय जैन विद्वानों को है।

डिंगल—लगभग छठी से लेकर १३ वीं शती तक अपभ्रंश यहाँ की साहित्यिक भाषा के पद पर आरूढ़ रही। तदंतर इसका प्रभाव क्षीण होने लगा और इसीके लोकप्रचलित रूप राजस्थानी ने इसका पद ग्रहण करना प्रारंभ किया जिसका एक रूप (मारवाड़ी) डिंगल नाम से विख्यात हुआ।

डिंगल भाषा में चारण लोगों ने अधिक लिखा है। इसलिए कोई-कोई डिंगल साहित्य को चारण साहित्य भी कहते हैं। राजस्थान में इस जाति के लोग पहले पहल मारवाड़ में आकर बसे थे। वहाँ से धीरे-धीरे राजस्थान की दूसरी रियासतों में फैले और अपने साथ अपनी भाषा को भी ले गये। इस प्रकार इसका प्रवेश राजस्थान की अन्य रियासतों में हुआ। राजपूतों और चारणों का पारस्परिक संबंध बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। उन्होंने डिंगल भाषा-साहित्य को बहुत प्रोत्साहन दिया। मध्यकालीन हिंदू-मुस्लिम संघर्ष के वातावरण और राजनीतिक घटना चक्रों से भी बहुत मदद मिली। राजा-महाराजाओं द्वारा सम्मानित होते देख अन्य जातियों के लोगों ने भी इसे अपनाया और इसमें साहित्य-निर्माण करना प्रारंभ किया। डिंगल साहित्य के दो सर्वश्रेष्ठ काव्य 'ढोला मारूरा दूहा' और 'वेलिक्रिसन रुकमणी री' चारणेतर कवियों ही के रचे हुए हैं। डिंगल का सर्वोत्तम गद्य-ग्रंथ 'नैणसी री ख्यात' भी एक वैश्य लेखक की रचना है।

डिंगल साहित्य प्रधानतया वीर रसात्मक है। इसमें राजपूत जाति के इतिहास, उसकी संस्कृति एवं उसकी भाव-भावनाओं की बड़ी सुन्दर व्यंजना हुई है। स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसकी प्रशंसा में लिखा है कि "भक्ति-रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया जाता है। राधा-कृष्ण को लेकर हर एक प्रान्त ने मंद या उच्च कोटि का साहित्य पैदा किया है। लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसके जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं पाया जाता। और उसका कारण है। राजस्थानी कवियों ने कठिन सत्य के बीच में रहकर युद्ध के नगारों के बीच अपनी कविताएं बनाईं थीं। प्रकृति का तांडव रूप उनके सामने था। क्या आज कोई केवल अपनी भावुकता के बल पर फिर वही काव्य-निर्माण कर सकता है?

"इस साहित्य में जो भाव है, जो उद्वेग है वह राजस्थान का खास अपना है। यह केवल राजस्थान के लिये ही नहीं, सारे भारतवर्ष के लिये गौरव की वस्तु है"।[22]

रवि बाबू का यह कथन अक्षरशः सत्य है। वास्तव में यह साहित्य है ही ऐसा। युद्ध का, रणभूमि का, वीरोल्लास का, जैसा सजीव, ओजपूर्ण और मार्मिक चित्रण डिंगल साहित्य में मिलता है वैसा भारत की अन्य किसी प्रांतीय भाषा में नहीं मिलता। विशेषकर वीर महिलाओं के हृदयस्थ भावों का वर्णन तो डिंगल के कवियों का ऐसा सुन्दर और स्वाभाविक बन पड़ा है कि देखकर मन मुग्ध हो जाता है:—

सहणी सबरी हूं सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणे पूत सम, वळय लजाणै नाह॥ १॥
नायण आज न मांड पग, काल सुणीजै जंग।
धारां लागीजै धणी, तो दीजै घण रंग॥ २॥
विण मरियां विण जीतियां, जो धव आवै धाम।
पग पग चूड़ी पाछटूं, हूं रावत री जाम॥ ३॥
खग बाहूँ उळझै धणी, मेंगळ रहिया घूम।
णणदल ऊँची बांध द्यो, बाजूबंद री लूम[23]॥ ४॥

---

22. राजस्थान वर्ष २, अंक ४, पृ० ७२। माडर्न रिव्यू, दिसंबर सन् १९३८, पृ० ७१०।

23. हे सखी! और सब बातें मुझे सहन हो सकती हैं किंतु यदि पति मेरी चूड़ियों को लजा दे और पुत्र मेरे दूध को, तो ये दो बातें मेरे लिये समान रूप से दाहकारी एवं हृदय को उलट देनेवाली हैं॥ १॥ हे नाइन! आज मेरे पैर में महावर मत लगा, कल युद्ध सुना जाता है। यदि मेरे पति धारा-तीर्थ में स्नान करें अर्थात् तलवार की धार से कटकर युद्ध में काम आवें तो फिर (सती होने के समय) खूब रंग देना॥२॥ हे सखी! यदि मेरे पति बिना मृत्यु या बिना जीत के घर आ गये तो मैं पग-पग पर अपनी चूड़ियों के टुकड़े कर डालूंगी। मैं भी राजपूत की बेटी हूँ॥ ३॥ हे ननद! हाथी झूम रहे हैं और मैं तलवार चलाना चाहती हूँ। मेरे भुजबंद की लटकन को ऊपर बाँध दो। यह बहुत उलझती है॥ ४॥

चौदहवीं शताब्दी में जिस समय राजस्थान में राजस्थानी भाषा का उदय हो रहा था लगभग उसी समय शूरसेन देश अथवा व्रजमंडल में व्रजभाषा विकसित हो रही थी जिसका आधार शौरसेनी अपभ्रंश था। प्रारंभ में यह 'भाखा' कहलाती थी[24] पर बाद में व्रजभाषा नाम से पुकारी जाने लगी। डा० धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार सर्वप्रथम भिखारीदास ने अपने 'काव्य-निर्णय' (सं० १८०३) में 'व्रजभाषा' शब्द का प्रयोग किया था।[25] परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं। भिखारीदास से भी बहुत पहले के कवियों की रचनाओं में यह शब्द मिलता है :—

(१) मरुभाषा निरजल तजी, करि व्रजभाषा चोज।
अब गुपाल या तें लहैं, सरस अनोपम मोज॥[26]

—गोपाल कृत रसविलास (सं० १६४४)

(२) सुरभाषा तें अधिक है, व्रजभाषा सौं हेत।
व्रजभूषन जा कौ सदा, मुख भूषन करि लेत॥[27]

—समरथ कृत रसिकप्रिया की टीका (सं० १७५५)

---

24. 'भाखा' शब्द का प्रयोग व्रजभाषा के लिए ही नहीं, बल्कि संस्कृत से भिन्न अवधी आदि अन्य समकालीन लोकभाषाओं के लिये भी होता था। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस' की अवधी को, नंददास ने रासपंचाध्यायी' की व्रजभाषा को और राठौड़ पृथ्वीराज ने वेलि क्रिसन रुकमणी री की डिंगल को 'भाखा' कहकर पुकारा है:—

(१) "भाखाबद्ध करब मैं सोई"

—रामचरितमानस

(२) "ताही ते यह कथा यथा मति भाखा कीनी"

—रासपंचाध्यायी

(३) "भाखा संस्कृत प्राकृत भणंतां, मूझ भारती ए मरम"। "चारण भाट सुकवि भाखा चित्र, करि एकठा तो अरथ कहि"।

—वेलि

25. व्रजभाषा व्याकरण, पृ० १० (भूमिका)

26. अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, की हस्तलिखित प्रति (सं १७४६), पद्य ४५।

27. दानसागर भंडार, बीकानेर, की हस्तलिखित प्रति (सं १७६६), पद्य १७।

(३) केशवदास कहे छ जे माहरी मति संस्कृत वाणीं नैं विषै बुद्धि विशेष छै तो पिण हुं भाषा रस नैं विषै लोलपी छुं ते केहनी परे जिम देवता ने देवलोक माहे अमृत थकां पिण देवांगना ना अधर ना रस नी वांछा कर अधर नीरस घणी इच्छा तिम जंपिण संस्कृत भाषा जाणु हुं तो पिण ब्रजभाषा नी वांछा घणी है मुझ नें ।[28]

—(केशवदास कृत) शिखनख की टीका (सं० १७६२ से पूर्व)

(४) नेही महा ब्रजभाषा-प्रवीन औ सुंदरतान के भेद को जानै ।
भाषा-प्रवीन सु छंद सदा रहै सौ घन जू के कवित्त बखानै ।।
—घननआनंद (स० १७७१-९६)

ब्रजभाषा—सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते ब्रजभाषा ने अच्छा व्यवस्थित रूप धारण कर लिया और फिर धीरे-धीरे लगभग सारे मध्यदेश[29] की साहित्यिक भाषा बन गई जिसमें राजस्थान का भी एक बड़ा भाग सम्मिलित था । अतः राजस्थान में दो साहित्यिक भाषाएँ साथ-साथ व्यवहृत होने लगीं, डिंगल और ब्रजभाषा । कुछ समय तक ये दोनों भाषाएँ समानांतर में समान गति से आगे बढ़ती रहीं । परन्तु बाद में डिंगल पिछड़ गई और ब्रजभाषा आगे निकल गई । अपने घर में ही डिंगल का पिछड़ जाना एक अस्वाभाविक और आश्चर्यदायक घटना थी । परन्तु इसके कुछ विशेष कारण थे । वे कारण ये हैं —

(१) डिंगल एक राजाश्रित भाषा थी । इसका सारा ठाट-बाट, सारा वातावरण, सामंती था । इसकी जीवन-शक्ति राजकृपा पर निर्भर थी । इसके पृष्ठपोषक राजा-महाराजा, इसमें रचना करनेवाले राजकवि और इसके प्रशंसक राजदरबारी लोग थे । जनता से सीधा संपर्क इसका न था । राजवर्ग व राजपूत जाति के ही लोग इसकी उन्नति के इच्छुक थे । लेकिन ब्रजभाषा को राजसत्ता तथा जनसाधारण दोनों का बल प्राप्त था ।

(२) डिंगल में मुख्यतः चारण, भाट, मोतीसर आदि इनी-गिनी दो-

---

28. अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, की हस्तलिखित प्रति (सं १७६२) पद्य १ ।

29. कन्नौज के राजकवि राजशेखर (सं. ९३७–७७) के अनुसार बनारस मध्यदेश का पूर्वी बिंदु था । पंजाब के कर्नाल जिले का पृथूदक अथवा पिहोवा उसकी उत्तरीय एवं आबू पर्वत पश्चिमीय सीमा था । दक्षिण में उसका विस्तार गोदावरी तक था ।

चार भटायत जातियों के लोग ही साहित्य-रचना करते थे। दूसरी जातियों के कवि न तो इसमें लिखना पसंद करते थे, न इसे बल-प्रोत्साहन देते थे। विशेषकर ब्राह्मण जाति ने तो इस भाषा को कभी छूआ भी नहीं। वह हमेशा इसे हीनता की दृष्टि से देखती रही। डिंगल भाषा का एक भी ग्रंथ अभी तक ऐसा देखने में नहीं आया जो किसी ब्राह्मण द्वारा रचा गया हो। इसके विपरीत व्रजभाषा में सभी जातियों के लोग काव्य-रचना करते थे। अतएव डिंगल की अपेक्षा व्रजभाषा में रचना करनेवालों की संख्या बहुत अधिक थी।

(३) डिंगल भाषा के कवियों का दृष्टि-बिंदु लौकिक था। वे प्रायः धन-प्रतिष्ठा के लोभ से कविता करते थे। अतः नरकाव्य अधिक लिखते थे जिनमें जनसाधारण की कोई रुचि नहीं थी। उनके ग्रंथ राजदरबारों में पढ़े जाते या राजभंडारों की शोभा बढ़ाते थे। लोकप्रियता का सहारा उन्हें नहीं था। लेकिन व्रजभाषा के कवि अधिकतर शृंगारी भक्त एवं संत-महात्मा थे जो ईश-भक्ति एवं लोक-कल्याण की भावना से काव्य-रचना करते थे। वे प्रेम, भक्ति, धर्म, नीति, वैराग्य आदि लोकप्रिय विषयों पर लिखते थे जिनकी ओर तत्कालीन हिंदू समाज का स्वाभाविक आकर्षण था।

(४) डिंगल के कवि अधिकतर वीर रस की कविता लिखते थे। परन्तु व्रजभाषा के कवि शृंगार, वीर, शान्त आदि नवों रसों में रचना करते थे। अतः रस-निरूपण की दृष्टि से भी व्रजभाषा का क्षेत्र डिंगल की अपेक्षा अधिक व्यापक था।

(५) डिंगल की अपेक्षा व्रजभाषा अधिक कोमल, कर्णमधुर और बोधगम्य भाषा थी।

(६) व्रजभाषा के गेय पद संगीत के लिए बहुत उपयुक्त थे। यह विशेषता उसे लोकप्रिय बनाने में बहुत सहायक हुई। परन्तु डिंगल इस दृष्टि से उतनी उपयोगी न थी।

ये कुछ ऐसे सहज कारण थे जिससे डिंगल की अपेक्षा व्रजभाषा का अधिक प्रचार और प्रभाव होना स्वाभाविक था और वही हुआ भी। इतना ही नहीं, अठारवीं शताब्दी में पहुँचकर तो व्रजभाषा ने एक नई परिस्थिति ही राजस्थान में उत्पन्न कर दी। वह यह थी कि उसने चारण कवियों को भी अपने प्रभाव में ले लिया और उनमें आत्मलघुता का भाव पैदा कर दिया

जिससे वे स्वयं ब्रजभाषा की तुलना में डिंगल को एक घटिया और प्रभावहीन भाषा समझने लग गये । अतः जिस डिंगल को वे अभी तक अभिमान की दृष्टि से देखते आ रहे थे, जिसे वे अपनी बपौती मानते थे, और जिसमें कविता करना वे अपने लिए गौरव की बात समझते थे उसी से किनारा कर उन्होंने ब्रजभाषा का आश्रय लिया । बारहठ नरहरिदास पहले चारण थे जिन्होंने 'अवतारचरित्र' (सं० १७३३) लिखकर ब्रजभाषा में ग्रंथ-रचना का सूत्रपात किया । फिर तो ब्रजभाषा में लिखने का सिलसिला बन गया और चारण कवियों ने उत्तम कोटि के अनेक ग्रंथों का निर्माणकर ब्रजभाषा साहित्य के भंडार को भरा ।

हिन्दी-क्षेत्र के कुछ भागों में, विशेषकर राजस्थान में, ब्रजभाषा के लिए 'पिंगल' नाम प्रचलित है जिसका वास्तविक अर्थ छंद-शास्त्र है । परन्तु इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन नहीं है । कोई १८ वीं शताब्दी से यह इस अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है और सिख सम्प्रदाय के प्रसिद्ध गुरु गोविंदसिंह (सं० १७२३–६५) के 'विचित्र नाटक' में कदाचित् पहले पहल देखने में आता है । जैसे, "भाषा पिंगल दी" ।[30]

इसके पश्चात् इस शब्द का प्रयोग हिन्दी-राजस्थानी के कई ग्रंथों में मिलता है । राजस्थान में इसका प्रयोग चारण कवियों ने अधिक किया है:—

(१) डिंगळिया मिळियां करै, पिंगल तणो प्रकास ।[31]
संस्क्रती व्हे कपट सज, पिंगल पढ़ियां पास ॥

—बांकीदास

(२) और भी आमीयूं में कवि बंक ।
डिंगल पिंगल संस्कृत फारसी में निसंक ॥[32]

—बुधाजी

(३) वदन सुकवि सुत कवि मुकट, अमरगिरा मतिमान ।
पिंगल डिंगल पटु भये, धुरंधर चंडिदान ॥[33]

—सूरजमल

---

30. दशम ग्रंथ (श्री गुरुमत प्रेस अमृतसर द्वारा प्रकाशित) ; पृ० ११७ ।
31. बांकीदास-ग्रंथावली, भाग दूसरा, पृ० ८१
32. बांकीदास-ग्रंथावली, भाग तीसरा, पृ० १० (भूमिका)
33. वंशभास्कर; प्रथम राशि, चतुर्थ मयूख, पृ० ४०.

(४) पिंगल डिंगल पटु प्रकट, गहरो ब्रह्म गुणगान ।
बदनसिंह रै गुन विदित, दानो नरसिंहदान ॥[34]

—मुरारिदान

चारणेतर कवियों ने ब्रजभाषा के लिए पिंगल शब्द का प्रयोग प्रायः नहीं किया। उन्होंने अधिकतर 'भाषा' शब्द का व्यवहार किया है।

परन्तु किस विशेष अभिप्राय से चारण कवियों ने इस नाम को ग्रहण किया इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। चारण लोग, कहा जा चुका है, अधिकतर अपनी देशी भाषा अर्थात् मरुभाषा में कविता करते थे जो डिंगल कही जाती थी। ब्रजभाषा को ये लोग परदेशी भाषा मानते थे और उसे 'भाट भाषा' (भाटों की भाषा) कहते थे। क्योंकि भाट जाति के लोग प्रायः उसीमें काव्य-रचना करते थे जो पूरब की ओर से आकर राजस्थान में बसे थे। परन्तु जब ब्रजभाषा के लिये 'पिंगल' शब्द का प्रयोग होना शुरू हुआ तब चारण लोगों ने भी उसे स्वीकार कर लिया। क्योंकि छंद-रचना में डिंगल शब्द के साथ संगति मिलाने और कविता-पाठ में सुगोच्चारण की दृष्टि से 'पिंगल' शब्द 'ब्रजभाषा' शब्द की अपेक्षा अधिक उपयुक्त था। इन दो कारणों के अतिरिक्त इस क्रिया के पीछे दूसरा कोई मनोवैज्ञानिक कारण रहा हो ऐसा अनुमान नहीं होता।

स्वर्गीय डा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है कि जो लोग ब्रजभाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी और इससे भेद करने के लिए मारवाड़ी भाषा का उसी की ध्वनि पर गढ़ा हुआ डिंगल नाम पड़ा[35] है।' उनके इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'पिंगल' शब्द (ब्रजभाषा के अर्थ में) 'डिंगल' की अपेक्षा अधिक प्राचीन है जो वास्तव में नहीं है। राजस्थान में कुशललाभ नाम के एक जैन कवि हो गये हैं जिनका रचना-काल सं० १६१६ के लगभग है। इनका लिखा 'पिंगल-शिरोमणि' नामक छंद-शास्त्र का एक ग्रंथ हाल ही में उपलब्ध हुआ है। इसमें उन्होंने मारवाड़ी भाषा के लिये डिंगल शब्द का प्रयोग किया है।[36] अतः स्पष्ट ही डिंगल शब्द पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन है, और इसलिए पिंगल की ध्वनि पर डिंगल शब्द के गढ़े जाने की जो बात डा० श्यामसुन्दरदास ने कही है वह

34. डिंगल कोष, पृ० १६

35. हिंदी शब्दसागर की भूमिका, पृ० २८

36. राजस्थान-भारती, भाग १, अंक ४, पृ० २५

निर्मूल है। डा० तेस्सितोरी ने भी डा० श्यामसुन्दरदास की उल्लिखित राय से मिलती-जुलती राय प्रकट की है। साथ ही उन्होंने पिंगल के अनुकरण पर डिंगल शब्द के बनने का कारण भी बतलाया है। उनके अनुसार 'व्रजभाषा परिमार्जित थी और साहित्य-शास्त्र के नियमों का अनुसरण करती थी। पर डिंगल इस संबन्ध में स्वतन्त्र थी। इसलिये उसका यह नाम पड़ा।[37]' परन्तु डा० तेस्सितोरी का यह कथन यथार्थ नहीं। कारण, डिंगल भाषा के अनेक ग्रंथ तथा फुटकर गीत, कवित्त, दोहे आदि अद्यापि मिल चुके हैं और इनमें व्याकरण, छंद, रस, अलंकार आदि साहित्य के विविध अंगों व नियमों का पालन उतनी ही सचाई से किया गया है जितना व्रज-भाषा के कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है।

पिंगल और डिंगल दो भिन्न भाषाएँ हैं जो क्रमशः शौरसेनी अपभ्रंश[38] और गुर्जरी अपभ्रंश[39] से उत्पन्न हुई हैं। इन दोनों का पृथक् व्याकरण एवं पृथक् छंद-शास्त्र है और दोनों की प्रकृति भी बहुत कुछ भिन्न है। साथ ही दोनों में कुछ समानताएँ भी पाई जाती हैं। परन्तु इनका समुचित ज्ञान न होने से कुछ लोग पिंगल और डिंगल की पहचान करने में चूक जाते हैं और पिंगल को भी डिंगल कह देते हैं। उदाहरणार्थ पृथ्वीराज रासो,[40] वंशभास्कर,[41] इत्यादि ग्रंथ पिंगल भाषा के हैं, पर कुछ विद्वान इन्हें डिंगल के बतलाते हैं। क्योंकि इनमें कहीं-कहीं डिंगल की शब्दावली का प्रयोग हुआ है। परन्तु यह उनकी एक भारी भूल है। वास्तव में ये ग्रंथ डिंगल के नहीं, पिंगल के हैं। किसी भाषा का यथार्थ स्वरूप शब्दों से प्रकट नहीं होता, व्याकरण से स्पष्ट होता है। शब्द तो हिंदी (खड़ी बोली), बंगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी इत्यादि भाषाओं में अधिकतर वही संस्कृत के हैं। फिर भी ये भिन्न भाषाएँ कहलाती हैं। क्योंकि इनके व्याकरण के

---

37. जर्नल आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, वोल्यूम १०, पृ० २३६

38. डा० ग्रियर्सन; लिंग्विस्टिक सर्वे आव इण्डिया, भाग पहला 'पृ० १२६' डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी, राजस्थानी भाषा, पृ० ६४।

39. के०एम० मुंशी; अ० भा० हिंदी साहित्य सम्मेलन के ३३ वें अधिवेशन का विवरण, पृ० ९

40. एकादश हिंदी साहित्य सम्मेलन, कलकत्ता का कार्य विवरण, पृ० १६

41. ओझा; कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ६५-६६

रूप व नियम भिन्न हैं। इसके विपरीत उर्दू में अधिकतर अरबी-फारसी के शब्द प्रयुक्त होते हैं। लेकिन उसके व्याकरण के रूप प्रायः हिंदी के अनुसार चलते हैं और इसलिए वह हिंदी के अंतर्गत मानी जाती है।"[42]

नीचे पिंगल और डिंगल की मुख्य-मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किया जाता है :—

मूल स्वरों का उच्चारण पिंगल और डिंगल दोनों में प्रायः एक ही तरह से होता है। परन्तु दो-एक व्यंजन वर्णों के उच्चारण में थोड़ी-सी भिन्नता पाई जाती है। जैसे, व अक्षर पिंगल में प्रायः ब में परिवर्तित हो जाता है और फिर ब ही लिखा और बोला जाता है: विपिन—बिपिन, दिवस—दिबस, वन—बन। डिंगल में इस व का उच्चारण दो प्रकार से होता है, एक संस्कृत व अथवा अंग्रेजी W की तरह और दूसरा अंग्रेजी V की तरह। उच्चारण का यह भेद बतलाने के लिए लिखने में एक व को तो वैसा ही रहने दिया जाता है पर दूसरे के नीचे बिंदी (व़) लगा दी जाती है। डिंगल की प्राचीन लिखित पोथियों में भी प्रायः इसी तरह लिखा देखने में आता है।

तालव्य श पिंगल और डिंगल दोनों में स में परिवर्तित हो जाता है। परिवर्तन के पश्चात् पिंगल में श का उच्चारण स होने लगता है जैसा कि वह लिखा जाता है। परन्तु डिंगल में ऐसा नहीं होता। स लिखा जाने पर भी बोला वह श ही जाता है। जैसे लिखने में देस, सीसोदिया, वंस लिखते हैं पर उच्चारण इनका क्रमशः देश, शीशोदिया, वंश होता है।

यदि किसी शब्द का अन्तिम अक्षर ल (दीर्घान्त) हो तो पिंगल में वह प्रायः र हो जाता है। जैसे काले—कारे, पनाले—पनारे, भोली—भोरी, हरियाली—हरियारी। परन्तु डिंगल में ल का र नहीं होता, ळ होता है। जैसे काल—काल़, टोल—टोल़, भाल—भाल़। इसी तरह पिंगल में ड़ का भी प्रायः र हो जाता है। जैसे ठौड़—ठौर, कुल्हाड़ो—कुल्हारो, पकौड़ी—पकौरी, भिड़े—भिरे। परन्तु डिंगल में इस तरह का परिवर्तन नहीं होता। ड़ उसमें ड़ ही बना रहता है।

संस्कृत ण पिंगल में प्रायः न हो जाता है। जैसे, प्राण—प्रान, रण—रन, अरुण—अरुन। परन्तु डिंगल में ऐसा नहीं होता। यही नहीं, संस्कृत, खड़ी बोली आदि के अनेक नकारान्त शब्दों को भी डिंगल में णकारान्त बना दिया

42. हिंदी-शब्द-सागर की भूमिका, पृ० ४०। डा० धीरेन्द्र वर्मा; हिंदी भाषा का इतिहास, पृ० ६०।

ज़ाता है। जैसे नयन--नयण, दानी--दाणी, पानी--पाणी। न को ण कर देने की यह प्रवृत्ति डिंगल में बहुत पाई जाती और यह इसकी एक प्रधान विशेषता है।

क्ष का पिंगल में छ हो जाता है। जैसे, क्षोभ--छोभ, क्षिति--छिति, क्षण--छन, क्षमा--छमा। परन्तु डिंगल में क्ष का ख होता है। जैसे, क्षण--खण, क्षिति--खिति, क्षोणि--खोणि।

संस्कृत एवं खड़ी बोली की पुल्लिग तद्भव संज्ञाएँ, विशेषण और संबन्ध-कारक के सर्वनाम पिंगल और डिंगल दोनों में ओकारान्त होते हैं।[43] जैसे भौंरो, घोड़ो, आछो, गोरो, मेरो, थारो। पिंगल में शब्दों के रूपों में संज्ञा का विकृत रूप बहुवचन-'अन' लगाकर बनता है। जैसे घरन, ढोटन। डिंगल में 'आँ' लगता है। जैसे, घराँ, घोड़ाँ।

डिंगल में कारकों के निर्विभक्तिक और सविभक्तिक दोनों रूप मिलते हैं। परन्तु पिंगल में निर्विभक्तिक रूप प्रायः कम देखने में आते हैं। दोनों के परसर्गों में भी बहुत भिन्नता है:--

कारक	पिंगल	डिंगल
कर्ता	नैं, ने नें।	ए।
कर्म-संप्रदान	को, कों, कौ, कौं, कूं, कुं।	नै, प्रति।
करण-अपादान	सों, सौं; तें, ते।[44]	करि, सूं, कनै, थी, हूंत[45] हुंताँ, हूंतो।
संबंध	को, कों, कौ, के, कें, कै, कैं, की, कि।	रा-री-रे-रो; चा-ची-चै-चौ; केरा-केरी-केरो; तणा-तणी-तणो; हंदा-हंदी-हंदो।
अधिकरण	में, मैं, मै, मांझ, पै, पर।[46]	मंझार, मांझ, माँ, मांझल, मधि, में।[47]

43. इसी तरह आकारांत साधारण क्रियाएँ और भूतकालिक कृदंत भी दोनों भाषाओं में ओकारांत होते हैं। जैसे, आवनो-आवणो, देनो-देणो, गयो, आयो।

44. इस परसर्ग के सो, सौ, से, सें, सुं, सूं आदि रूपांतर भी कहीं-कहीं देखने में आते हैं।

45. इसका प्रयोग कभी-कभी अधिकरण कारक में भी होता है। जैसे—

ढोल वरज सब भेज घर, धर नारेळ सुधाम।
घावां कंत पधारिया, पाँवां हूंत प्रणाम।।—सूरजमल

46. इसके मे, माँहि, माहि, पाँहि, माहीं, माँह, माह, महँ, मंझारन, मधि, मध्य, मों, पें, पैं, ऊपर आदि अन्य रूपों को प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है।

47. इनके अतिरिक्त मैं, मैं, मइं, मइ, महिँ, मँही माँहि, माँही, मंझ, मंझि इत्यादि का प्रयोग भी कुछ ग्रंथों में दृष्टिगोचर होता है।

सर्वनाम

पुरुष वाचक

उत्तम पुरुष

कारक	पिंगल	डिंगल
एक वचन		
मूलरूप	हौं, मैं,[48]	हूं, म्हूं, मूं, म्हैं, अह्न, अह्नैं, मइ।
विकृत रूप	मो, मौं।	म्हा, मैं।
संबंध	मेरो, मेरौ मो।	म्हारो, मारो, म्हारउ
बहुवचन		
मूल रूप	हम।	म्हे, मे, आपां।
विकृत रूप	हम।	म्हां, मां, आपां।
संबंध	हमारो, हमारौ।	म्हांरो, मांरो, अम्हां।[49]

मध्यम पुरुष

कारक	पिंगल	डिंगल
एक वचन		
मूल रूप	तू, तूं, तैं, तें।	तूं।
विकृत रूप	तो	तो।
संबंध	तेरो, तेरौ।	थारो, तुझ, तुझ्झ।[50]
बहुवचन		
मूल रूप	तुम।	थे, तुम।
विकृत रूप	तुम।	थां।
संबंध	तुम्हारो, तिहारो।	थांरो, तुम्हारो, थांकौ।

48. इनके अतिरिक्त हौं, हुँ, मैं, में आदि का प्रयोग भी देखने में आता है।

49. इसके म्हारी, म्हांकौ, हमारउ, म्हांजी, अम्हीणइ, अम्हीणी, अमीणा, अमीणो आदि रूप भी मिलते हैं।

50. कहीं-कहीं 'तुहालो' रूप भी मिलता है। यथा—

अइरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी॥
—दुरसाजी

निश्चयवाचक सर्वनाम

यह

कारक	पिंगल	डिंगल
एकवचन		
मूल रूप	यह	ओ, यो; (स्त्री०) आ, या।
विकृत रूप	या	इण, इणि, अण, अणी।
बहुवचन		
मूल रूप	ये, ए	ए, अै, अइ।
विकृत रूप	इन, इन्ह	इणां, अणां, यां, आं
	वह	
एकवचन		
मूल रूप	वह, वो	ऊ, वो (स्त्री०) वा
विकृत रूप	वा	उण, उणी, वणी
बहुवचन		
मूल रूप	वे, वै	वै,
विकृत रूप	उन, विन	उणां, वणां, वां।

अन्य सर्वनाम

	पिंगल	डिंगल
संबंधवाचक	जो, जु; (बहु०) जे	जो, जिको, जिका
विकृत रूप	जा; (बहु०) जिन	जिण, जण, जणी
नित्य संबंधी	सो; (बहु०) ते, से	सो, तिको, तिका
विकृत रूप	ता; (बहु०) तिन	तिण, तिणि, तिणां
प्रश्न वाचक	कौन, को, कौ	कुण, किण, कावण
विकृत रूप	का, कौन	किणां
अनिश्चय वाचक	कोऊ, कोई	कोई
विकृतरूप	काहू	केवि, कोय, काइ, केइ
निजवाचक	आप, आपु	आप
विकृत रूप	आपन	आपण
आदरवाचक	आप, आपु	आप, राज
विकृत रूप	आपुन	आपण, आपां आदि

क्रिया

(१) सहायक क्रिया

पिंगल और डिंगल के क्रिया-रूपों में बहुत कुछ सादृश्य पाया जाता है। वर्तमान, भूत और भविष्य निश्चयार्थ में सहायक क्रिया 'होना' के रूप दोनों में इस प्रकार बनते हैं:—

	पिंगल		डिंगल	
वर्तमान	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पु०	हौं, हौं, हूँ	हैं, आहि	हूँ	हां
मध्यम पु०	है	हौ	है	हो
प्रथम पु०	है, अहै, आहि	हैं	है	है
भूत				
पुल्लिग	हो, हुतो, हुतौ हौ, हते, भयौ, भौ	हे, हुते, हते, भये	हो, हुओ, थयो हुतौ	हा, थया
स्त्रीलिंग	ही, हुती, भई	हीं, हुतीं, भईं	ही, थई	ही, थई
भविष्य				
उत्तम पु०	ह्वैहौं	ह्वैहैं	हुऊंला, ह्वेऊंला ह्वेऊंगा	हुवांला, व्हैं-वांला, व्हैवांगा
मध्यम पु०	ह्वैहै	ह्वैहौ	हुवेला, ह्वैला, व्हैगा, होसी	हुवोला, व्होला, व्हौगा
प्रथम पु०	ह्वैहै, होइहैं, होयगो	ह्वैहैं, होउगे होहिंग, होंयगे	हुवैला, व्हैला व्हैगा, हुसि	हुवैला, व्हैला व्हैगा

(२) कृदन्त

पिंगल और डिंगल की काल-रचना में वर्तमान कालिक कृदंत तथा भूत-कालिक कृदंत रूपों का व्यवहार स्वतंत्रतापूर्वक होता है। पिंगल में पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग दोनों में वर्तमान कालिक कृदंत के रूप व्यंजनांत धातुओं में 'अत' तथा स्वरान्त धातुओं में 'त' लगाकर बनाये जाते हैं। जैसे सेवत,

खावत, जात । इन रूपों के अतिरिक्त पुल्लिग में 'अतु' तथा स्त्रीलिंग में 'ति' या 'ती' लगाकर भी रूप बनते हैं । जैसे परियतु, निहारति, इतराती ।

डिंगल में पुल्लिग एकवचन में 'अत' अथवा 'तौ' प्रत्यय तथा बहुवचन में 'ता' अथवा 'तां' प्रत्यय लगता है । जैसे, वेलत, चलतौ, जावता, नींगमतां । स्त्रीलिंग में बहुधा 'ती' लगता है । पर कहीं-कहीं 'दी' भी देखने में आता है । जैसे, चाहंदी ।

भूतकालिक कृदन्त के रूप पिंगल और डिंगल में अधिकतर निम्नलिखित प्रत्यय लगाकर बनते है । इनमें परस्पर बहुत समानता है :—

पिंगल		डिंगल	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
ओ, औ, यो, यौ; (स्त्री०) ई	ए, ये, यै, (स्त्री०) ईं	ओ, औ, यो, यौ इयौ; (स्त्री०) ई	आ, या, इया (स्त्री०) इयां

पूर्वकालिक कृदन्त धातुओं के रूप पिंगल में धातु में प्रायः इ, य, ऐ आदि लगाकर बनाये जाते हैं । जैसे समुझि, खोय, दै। डिंगल में इनके रूप प्रायः अ, इ, र, एवि, नै, ह, आदि प्रत्यय लगा कर बनते है । जैसे पालिअ, ठानि, जायर, प्रणमेवि, लिखनै, भरेह ।

प्रधान क्रिया

काल-रचना

उल्लिखित वर्तमानकालिक कृदन्त रूपों के अतिरिक्त पिंगल और डिंगल दोनों में वर्तमान निश्चयार्थ के लिए धातु में नीचे लिखे प्रत्यय लगाकर भी रूप बनाये जाते हैं :—

	पिंगल		डिंगल	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पु०	ओं, औं, ऊँ	अइँ, एँ, हि	ऊँ, अऊँ, औं	आं
मध्यम पु०	अहि	ओ, औ	अइ	अउ, ओ, औ
प्रथम पु०	ए, ऐ, इ, य	एँ, ऐं	अइ, अय	एह, आहि, अही

भविष्य निश्चयार्थ के रूप दोनों भाषाओं में धातु में निम्नलिखित प्रत्यय लगाकर बनते हैं :—

	पिंगल		डिंगल	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	ऊँगो, औंगो, उँगो, इहौं, इहों; (स्त्री०) औंगी. ओंगी	एँगे, इहैं; (स्त्री०) अहिंगी	सूं, इस, एस स्यउं, ला, गा,	स्यां, एस, ला, गा
मध्यम पुरुष	यगो, ऐगो, इहै; (स्त्री०) ऐगी	औंगे, ओगे, हुगे, इहौ; (स्त्री०) अहुगी, ओगी, औंगी	सी, से, इस, ला, गा	स्यउ, ला, गा।
प्रथम पुरुष	ऐगो, एगो, एगो, यगो, इहै, (स्त्री०) ऐगी, अहिगी, यगी	एँगे, हिंगे, ऐंगे यगे, इहैं (स्त्री०) आहिंगी	सी, से, एस, सइ, ला, गा	स्यइ, इसइ, एह, एस्यइ, ला, गा।

भूत निश्चयार्थ के लिए पिंगल और डिंगल दोनों में भूतकालिक कृदंत के रूपों का प्रयोग होता है जिनका विवरण पहले दिया जा चुका है।

शब्दकोश—जिस तरह पिंगल और डिंगल के व्याकरण संबन्धी रूपों में पर्याप्त-समानता है उसी तरह इनका शब्द-कोश भी बहुत मिलता-जुलता है। क्योंकि इन दोनों भाषाओं के कवियों ने संस्कृत शब्दों ही का प्रयोग अधिक किया है चाहे वे शब्द अपने तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हों या तद्भव रूप में। अंतर है तो केवल इतना कि एक ही शब्द को दो भिन्न प्रकार से बदला गया है। पिंगल के कवियों ने उसे अपनी भाषा की प्रकृति के अनुकूल बदला है और डिंगल के कवियों ने अपनी भाषा की प्रकृति के अनुकूल। हाँ, इतना अवश्य है कि शब्द को बदलने में डिंगल-कवियों की अपेक्षा पिंगल के कवियों ने कुछ अधिक सावधानी से काम लिया है। उन्होंने शब्द को इस तरह परिवर्तित किया है कि उसके मूल रूप को ढूंढ़ने में विशेष कठिनाई नहीं

पड़ती । परन्तु डिंगल के कवियों ने उसे इतना विकृत कर दिया है कि वह अपने मूल रूप से बहुत दूर चला गया है और उसे पहचानने में कभी-कभी बहुत कठिनाई होती है ।

संस्कृत शब्दों का पिंगल और डिंगल में कैसा रूप बन गया है इसे दिखाने के लिए कुछ शब्द यहां प्रस्तुत किये जाते हैं :—

संस्कृत	पिंगल	डिंगल
वृक्ष	वृच्छ	वरख
पार्थ	पारथ	पथ
आश्चर्य	अचरज	अछेरो
पिशुन	पिसुन	पसण
क्षिति	छिति	खत
युधिष्ठिर	जुधिस्ठिर	जुजुठिल्
हनुमान	हनुमंत	हणूंत
कुटुम्ब	कुटुम	कडूंब
कपाट	किवार	कमाड़
कश्यप	कस्यप	कासप
खड्ग	खग्ग	खग
वाणी	बानी	वाण
शावक	सावक	छावड़
शार्दूल	सारदूल	सादड़
किष्किधा	किस्किधा	खंखंधा

पिंगल साहित्य—पिंगल अथवा व्रजभाषा साहित्य भी राजस्थान में बहुत रचा गया है, और कुछ लोगों की यह जो धारणा है कि राजस्थानी कवियों ने डिंगल ही में अधिक लिखा है वह निराधार है । वस्तुतः राजस्थान का पिंगल साहित्य डिंगल साहित्य की अपेक्षा मात्रा में अधिक है । परन्तु इस विपुल साहित्य-राशि का बहुत अल्पांश अभी तक प्रकाश में आ पाया है और जो आया है उसका भी पूर्ण परीक्षण तथा वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हो सका है । इस साहित्य के रचयिताओं के व्यक्तिगत जीवन इत्यादि के विषय की खोज का कार्य तो अभी तक व्यवस्थित रूप में आरम्भ भी नहीं हुआ है ।

विषय-वस्तु की दृष्टि से राजस्थान के समस्त डिंगल साहित्य का वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है :—

(क) चरित्र काव्य

१. रासो काव्य

२. अन्य काव्य

(ख) पौराणिक काव्य और महाभारत काव्य

(ग) भक्ति-काव्य

३. कृष्ण-भक्ति काव्य

४. राम-भक्ति काव्य

५. निर्गुण-भक्ति काव्य

(घ) रीति-काव्य

६. रस

७. अलंकार

८. छंद

९. नायिका भेद, षट्ऋतु-वर्णन, नखशिख-वर्णन आदि।

(ङ) नीति-काव्य

(च) फुटकर

(क) चरित्र-काव्य—चरित्र-काव्यों में रासो ग्रंथ मुख्य हैं। 'रासो' शब्द संस्कृत 'रास' से बना है जिसका अर्थ आचार्य हेमचन्द्र[51] और कोषकार पुरुषोत्तम देव[52] दोनों ने 'ग्वालों की क्रीड़ा' तथा 'भाषा में शृंखलाबद्ध रचना' बतलाया है।

अपभ्रंश तथा हिंदी, राजस्थानी, गुजराती, इत्यादि के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में यह शब्द कई तरह से लिखा मिलता है: रास, रासक, रासो, राइसो, राइसौ, रायसो, रायसौ, रासौ, रासउ, रासु। जिस काव्य-ग्रंथ में किसी राजा की कीर्ति, विजय, युद्ध-वीरता आदि का विस्तृत वर्णन हो उसे 'रासो' कहते हैं। आजकल यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है और

51. "रासः क्रीड़ासु गोदुहाम्"
"भाषाशृंखलके"

—अनेकार्थ संग्रह (हेमचद्र)

52. "भाषाशृंखल के रासः क्रीड़ायामपि गोदुहाम्

—त्रिकांडशेष (पुरुषोत्तम)

इस अर्थ के आधार पर कुछ विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति 'राजयश' शब्द से बतलाई है[53]। परन्तु उनका यह अनुमान ठीक नहीं प्रतीत होता। क्योंकि यह शब्द काफी प्राचीन समय से प्रयुक्त होता चला आ रहा है और प्राचीन समय में यह राजयश का द्योतक नहीं, बल्कि एक सामान्य वर्णनात्मक पद्य-कृति अथवा कथा-काव्य का सूचक था जैसा कि भरतेश्वरबाहुबलि-रास (सं० १२४१), जीवदयारास (सं० १२५७), जंबूस्वामिरास (सं० १२६६), इत्यादि ग्रंथों से सूचित होता है। इन ग्रंथों में किसी राजा के यश का वर्णन नहीं है।

हिंदी-शब्द-सागर के संपादकों ने रासौ शब्द की उत्पत्ति 'रहस्य' से, फ्रांसीसी विद्वान तासी ने 'राजसूय' से और पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने 'रसायण' से मानी है।[54] परन्तु ये सब उनकी क्लिष्ट कल्पनाएँ हैं। भाषा-शास्त्र के नियमानुसार 'रासौ' शब्द के साथ इन शब्दों की संगति ठीक नहीं बैठती। वास्तव में यह शब्द 'रास' ही से बना है। प्रारम्भ में इससे एक साधारण पद्य-कृति या कथा-काव्य का बोध होता था। परन्तु बाद में जब राजाश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की प्रशंसा में लिखे अपने ऐतिहासिक काव्यों को 'रासौ' नाम से पुकारना शुरु किया तब से इसके अर्थ में परिवर्तन होने लगा और अब यह शब्द एक विशेष शैली पर लिखे गये किसी राजा अथवा राजघराने के प्रतिष्ठित व्यक्ति के पद्यात्मक जीवनचरित्र का द्योतक बन गया है।

संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य में रासौ ग्रंथ नहीं मिलते पर अपभ्रंश में कुछ मिलते हैं और गुजराती में तो सैकड़ों हैं जो अधिकतर जैन विद्वानों के बनाये हुए हैं। अपभ्रंश का प्राचीनतम रासौ ग्रंथ जो अभी तक उपलब्ध हुआ है वह अब्दुल रहमान का संदेशरासौ है। यह गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज अथवा कुमारपाल के शासन-समय में अर्थात् १२ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध या १३ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रचा गया था।[55] यह एक खंडकाव्य है। इसमें एक विरहिणी स्त्री का अपने प्रवासी पति को एक पथिक द्वारा प्रेम-संदेश भेजने का वर्णन है। इस पर एक संस्कृत अवचूरिका भी उपलब्ध है।

---

53. भारतीय विद्या, वर्ष ३, अंक १, पृ० ६६

54. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० २८

55. आचार्य जिन विजय मुनि द्वारा संपादित 'संदेशरासक' की भूमिका, पृ० १३

प्राचीन समय में गुजरात और राजस्थान जैन संप्रदाय के दो मुख्य केन्द्र थे। इन प्रान्तों के जैन साधु व जैन मतानुयायी अन्य लोग हजारों की संख्या में प्रतिवर्ष इधर-उधर आया-जाया करते थे। उनके इस आवागमन का प्रभाव राजस्थान के साहित्य पर भी पड़ा और राजस्थान में रासो लिखने की परिपाटी चल पड़ी जिसके फलस्वरूप पृथ्वीराज रासो, खुमाण-रासो इत्यादि कई रासो ग्रंथ यहां लिखे गये जिनका हिंदी साहित्य में अत्यन्त आदरणीय स्थान है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि रासो लिखने की परंपरा राजस्थान को जैन विद्वानों के द्वारा अपभ्रंश-गुजराती से प्राप्त हुई है। परन्तु जैन विद्वानों के रचे रास अथवा रासो ग्रंथों और राजस्थानी कवियों के पिंगल भाषा के रासो ग्रंथों में आकार-प्रकार, विषय-वस्तु, वर्णन-शैली इत्यादि की दृष्टि से बहुत भिन्नता है। दोहा, चौपाई, छप्पय, वस्तु, घत्ता, ठवणि आदि दो-चार साधारण कोटि के छंदों में रचे जैन पंडितों के ये ग्रंथ बहुत छोटे-छोटे हैं और इनके द्वारा वर्ण्य विषय का बहुत सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है। लेकिन राजस्थानी कवियों के रासो ग्रंथ अपेक्षाकृत बड़े हैं जिनमें पृथ्वीराज रासो तो एक पूरा महाकाव्य है। ये ग्रंथ भिन्न-भिन्न युगों एवं स्थानों में रचे गये हैं पर इन सबके लिखने का ढंग लगभग समान ही है। इनके प्रारंभ में मंगलाचरण और मुख्य-मुख्य देवी-देवताओं तथा गुरु की स्तुति की गई है। तदंतर राज-वंशावली प्रारंभ होती है जिसमें सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से लेकर ग्रंथ-नायक तक के राजाओं के नाम गिनाये गये हैं। बीच में कहीं-कहीं बड़े-बड़े राजाओं का वर्णन कुछ अधिक विस्तार से भी कर दिया गया है। मुख्य कथा चरित्र-नायक के जन्म-दिन से प्रारंभ होती है जिसमें उसके अनेक युद्धों, उसकी शूर-वीरता, उसके आतंक-पराक्रम, उसके बाहुबल और सैन्यबल का अत्यन्त वीरदर्पपूर्ण वर्णन हुआ है। प्रायः ग्रंथ-नायक की किसी बहुत बड़ी विजय अथवा उसकी मृत्यु के साथ ग्रंथ की समाप्ति हो जाती है।

इन ग्रंथों में वीर रस की प्रधानता है पर प्रसंगानुसार शृंगार, करुण आदि अन्य रसों की भी भव्य व्यंजना हुई है। इनमें छन्दों की विविधता भी पूरी-पूरी पाई जाती है। विशेषकर इनकी भाषा इतनी सजीव और सबल है कि पढ़कर भुजाएँ फड़कने लगती हैं।

रासो ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के चरित्र काव्य भी राजस्थान में लिखे गये हैं। जैसे राजविलास, सुजानचरित्र, वंशभास्कर आदि। इन ग्रंथों में साहित्यिक सौन्दर्य कुछ कम और ऐतिहासिक तत्त्व कुछ अधिक देखने

में आता है। क्योंकि ये ग्रंथ अधिकतर इतिहास को दृष्टि में रखकर बनाये गये हैं।

(ख) पौराणिक काव्य—ऐतिहासिक काव्यों के अतिरिक्त व्रजभाषा वाङ्मय को राजस्थान के कवियों की एक दूसरी बहुत बड़ी देन है, पुराण विषयक काव्य और महाभारत काव्य जिनमें प्राचीन भारतीय संस्कृति का पूर्ण वैभव व्यक्त हुआ है। इन काव्यों की कथा-वस्तु श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, वराहपुराण वायुपुराण, ब्रह्मपुराण, हरिवंश, महाभारत आदि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों से ली गई है। अतएव विषय-सामग्री की दृष्टि से इनमें विशेष नवीनता तथा मौलिकता दृष्टिगत नहीं होती। परन्तु भाषा-सौन्दर्य, प्रबंध-पटुता, वर्णन-चमत्कार आदि काव्योचित गुणों का इनमें बहुत सुन्दर संयोग हुआ है और इस दृष्टि से इनका भारी महत्त्व है। अवतार-चरित्र, वाराणसीविलास, वीरविनोद प्रभृति रचनाएँ इसी श्रेणी की हैं। कुछ लोगों का कथन है कि व्रजभाषा जितनी मुक्तक काव्य के लिए उपयुक्त है उतनी प्रबन्ध काव्य के लिए नहीं है। उनकी यह धारणा कितनी भ्रामक है, यह इन ग्रंथों से स्पष्ट है।

(ग) भक्ति काव्य—भक्ति काव्य को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है—राम-भक्ति काव्य, कृष्ण-भक्ति काव्य, और निर्गुण-भक्ति काव्य।

रामकाव्य की परम्परा संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि के समय से चली आती है पर भाषा साहित्य में इसका प्रचार स्वामी रामानन्द के समय से हुआ है। रामानन्द का जन्म-काल सं० १३५६ माना गया है।[56] ये श्री संप्रदाय के प्रवर्तक रामानुजाचार्य की चौथी या पाँचवीं शिष्य-परम्परा में हुए थे[57] और स्मार्त वैष्णव थे। इन्होंने विष्णु के अवतार श्री राम की भक्ति पर जोर दिया और उसका प्रचार किया। इनके अनुयायी बहुत हो गये जिनका एक सम्प्रदाय बन गया। संत कबीर इनके शिष्य थे।[58] गोस्वामी तुलसीदास इनके मतानुयायी थे।[59]

स्वामी रामानन्द अच्छे साहित्यकार थे। परन्तु राजस्थान के पिंगल साहित्य पर इनका कोई सीधा प्रभाव पड़ा हो ऐसा सूचित नहीं होता। इस दृष्टि से

---

56. डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल; हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ० ४१
57. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ० ६
58. पंडित रामचंद्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६५।
59. डा० श्यामसुन्दरदास; हिंदी साहित्य (पंचम संस्करण) पृ० १६१।

गोस्वामी तुलसीदास का प्रभाव अधिक गहरा रहा जैसा कि अवतारचरित्र (नरहरिदास), रामगुणसागर (प्रतापकुँवरि) इत्यादि रामभक्ति संबन्धी सुप्रसिद्ध पिंगल ग्रंथों के अवलोकन से विदित होता है। ये ग्रंथ मूलतः तुलसी कृत रामायण के आधार पर लिखे गये हैं। इनके अतिरिक्त रामभक्ति विषयक अनेक दूसरे छोटे-छोटे ग्रंथ एवं फुटकर पद्य जो राजस्थान में मिलते हैं; वे भी तुलसीदास के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं हैं।

कृष्ण-भक्ति काव्य का प्रारंभ राजस्थान में मुख्यतः पुष्टि संप्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य (सं० १५३५–८७) के कारण हुआ। वल्लभाचार्य भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे और भजन में अधिक रुचि थे। वे कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर उनकी भक्ति का उपदेश देते थे। उन्होंने भारतवर्ष के अनेक भागों में भ्रमण कर अपने सिद्धांतों का प्रचार किया और उनका संप्रदाय स्वामी रामानंद के सम्प्रदाय से भी अधिक व्यापक हुआ। सं० १५४९ में वल्लभाचार्य ब्रज गये और वहां श्रीनाथजी का मंदिर स्थापित किया।[60] वल्लभाचार्य के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके सुपुत्र गोपीनाथ ने अपने पिता के कार्य को हाथ में लिया और उसे बड़ी चतुराई से संभाला। परन्तु आठ वर्ष बाद इनकी भी मृत्यु हो गई। इसलिये वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथ ने आचार्य पद को ग्रहण किया। विट्ठलनाथ बड़े गुणाढ्य और व्यक्तित्वसम्पन्न पुरुष थे। ये ललित कलाओं के बड़े प्रेमी और पोषक थे। विशेषकर काव्य-कला को इनसे बहुत प्रोत्साहन मिला। इन्होंने ब्रजभाषा के आठ सर्वोत्तम कृष्णभक्त कवियों को चुनकर "अष्टछाप" की स्थापना की जिसमें सूरदास, कुंभनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, नंददास और चतुर्भुजदास सम्मिलित थे। इन प्रेमोन्मत्त भक्त कवियों ने कृष्णभक्ति की एक विशाल सरिता ब्रजमंडल में बहा दी जिसकी एक धारा इस रेतीले राजस्थान में भी पहुँची जो अभी तक लहरा रही है।

राजस्थान के पिंगल भाषा के कवियों में कृष्णदास पैहारी और मीरांबाई अष्टछाप वाले कवियों के समकालीन थे। इनके उपरांत तो यहां नागरीदास, हितवृन्दावनदास, ब्रजनिधि इत्यादि कई उत्तमोत्तम कृष्णोपासक कवि हुए जिनके ग्रंथ ब्रजभाषा साहित्य की अमूल्य संपत्ति और भारतीय साहित्य के गौरव की वस्तु माने जाते हैं।

राजस्थान का निर्गुण-भक्ति काव्य दादू पन्थ, चरणदासी पंथ, राम-

60. डा० दीनदयाल गुप्त; अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ७१।

स्नेही पंथ आदि के अनुयायी संत-महात्माओं की "वाणियों" के रूप में मिलता है। कुछ थोड़ा-सा अन्य कवियों का रचा हुआ भी है पर वह विशेष महत्त्व का नहीं है। यह समस्त साहित्य 'संत-साहित्य' कहलाता है। इस पर कबीरपंथी साहित्य का प्रभाव यथेष्ट पाया जाता है। क्या भाषा, क्या वर्णन-शैली, क्या विषय-वस्तु सभी पर कबीर-साहित्य की छाप है। इसमें निराकार ईश्वर गुरुदेव, सत्संग, दया, प्रेम, क्षमा, शील, संतोष, इत्यादि की महिमा गाई है। कहीं-कहीं रहस्यवाद की झलक भी है जो सूफियों के प्रभाव का फल है। इसमें शान्त रस का प्राधान्य है और मुख्य छंद दोहा प्रयुक्त हुआ है। इस साहित्य का वह अंश जिसमें संत-महात्माओं के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला गया है विशेष रूप से बहुत उपयोगी है।

(घ) रीति साहित्य—पिंगल साहित्य का एक बहुत बड़ा अंश रीति साहित्य के रूप में मिलता है जो बहुत उल्लासपूर्ण एवं शृंगार रस से ओत-प्रोत है। रीति साहित्य के प्रथम कवि जान थे जो जाति के मुसलमान थे। इनके रचे रसमंजरी, रसकोष, भावशतक आदि ग्रंथों का पता है। इनके बाद इस विषय के इतने ग्रंथ लिखे गये हैं कि देखकर अचंभा होता है। इनमें महाराजा जसवन्तसिंह कृत 'भाषाभूषण', कुलपति मिश्र कृत 'रसरहस्य', सोमनाथ कृत 'रसपीयूषनिधि', दलपतिराय और वंसीधर कृत 'अलंकाररत्नाकर', रावराजा बुधसिंह कृत 'नेहतरंग', और कविराजा मुरारिदान कृत 'जसवंत जसोभूषण' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(ङ) नीति-काव्य—पिंगल भाषा के कवियों का नीति, ज्ञान तथा उपदेश विषयक साहित्य भी राजस्थान में यथेष्ट मात्रा में पाया जाता है। इस विषय के प्रमुख कवि वृन्द हैं जिनकी 'सतसई' हिंदी साहित्य की एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। इसमें नीति एवं लोक-व्यवहार संबन्धी बातों का बहुत सरस एवं चमत्कारपूर्ण विश्लेषण हुआ है। इनके उपरांत उमेदराम, प्रतापसिंह, बालाबक्श प्रभृति अन्य कवियों की रचनाओं में भी नीति संबन्धी सूक्तियों का अच्छा सौन्दर्य दिखाई पड़ता है।

(च) फुटकर—इनके अतिरिक्त संगीत, कोष, शकुन, वैद्यक, वृष्टि-विज्ञान, रमल, रत्न-परीक्षा, स्तोत्र, कथा आदि अन्य फुटकर विषयों पर रचे ग्रंथ भी मिलते हैं।

भूमिका के तौर पर ऊपर राजस्थान और राजस्थान के साहित्य से संबंधित कुछ आवश्यक बातों का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। अगले

पृष्ठों में यहां के पिंगल साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया जाता है जो कालक्रमानुसार निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त होता है :—

प्रारंभ काल	सं० १५५० से १७०० तक
मध्य काल	सं० १७०० से १९०० तक
आधुनिक काल	सं० १९०० से अब तक

दूसरा अध्याय

प्रारंभ काल (सं० १५५०–१७००)

चौदहवीं शताब्दी में व्रजभाषा अपभ्रंश से पृथक् एक भिन्न भाषा के रूप में प्रकट होने लग गई थी यह बात पहले कही जा चुकी है। परन्तु किसी भाषा के साहित्य में व्यवहृत होने के योग्य बनने में कुछ समय लगता है। अतः कुछ काल तक व्रजभाषा बोलचाल की भाषा रही होगी और फिर इसका साहित्य में व्यवहार होना आरंभ हुआ होगा। व्रजभाषा की जो साहित्यिक सामग्री अभी तक उपलब्ध हुई है उसके परीक्षण से ज्ञात होता है कि साहित्य-रचना के योग्य बनने में व्रजभाषा को लगभग २००–२५० वर्ष का समय लगा था। इस अनुमान के आधार पर व्रजभाषा में साहित्य-रचना का श्रीगणेश सं० १५५० के आसपास माना जा सकता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में "इलाहाबाद के निकट मुख्य केन्द्र अरैल (अडेल) के अतिरिक्त जिस समय श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य को व्रज जाकर गोकुल तथा गोवर्धन को अपना द्वितीय केन्द्र बनाने की प्रेरणा हुई उसी तिथि से व्रज की प्रादेशिक बोली के भाग्य पलटे। सं० १५५६ वैसाख सुदी ३ आदित्यवार को गोवर्धन में श्रीनाथजी के विशाल मंदिर की नींव रखी गई थी। यही तिथि साहित्यिक व्रजभाषा के शिलान्यास की तिथि भी मानी जा सकती है"।[1] डा० साहब का यह मत यथार्थ है और बिना पक्षपात एवं भावुकता के शुद्ध वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर स्थापित किया गया है।

डा० ग्रियर्सन और उनके मतानुयायी कुछ विद्वानों ने खुंमाण रासौ, बीसलदेव रासौ, पृथ्वीराज रासौ और विजयपाल रासौ को हिंदी के आदि काल की अर्थात् सं० १५५० के पूर्व की रचनाएँ माना है और इस मान्यता के आधार पर उन्होंने अपने रचे हिंदी साहित्य के इतिहासों में 'वीरगाथा काल' की स्थापना की है। परन्तु उनकी यह स्थापना अनुचित है और निराधार भी। हुआ यह है कि इन ग्रंथों के चरित्रनायकों के अस्तित्व-काल को इन ग्रंथों का रचना-काल मान लिया गया है जो स्पष्ट भूल है। वास्तव में ये ग्रंथ इतने प्राचीन नहीं हैं। खुंमाण रासौ और बीसलदेव रासौ राजस्थानी भाषा के ग्रंथ हैं। अतः उनके विषय में यहां कुछ कहना अप्रासंगिक होगा। परन्तु पृथ्वीराज रासौ और विजयपाल रासौ व्रजभाषा अथवा पिंगल भाषा की रचनाएँ हैं जिनका विवेचन आवश्यक है।

---

1. व्रजभाषा व्याकरण, पृ० ११

पृथ्वीराज रासो–कहा जाता है कि आज-कल 'पृथ्वीराज रासो' नाम से जो ग्रंथ प्रचलित है उसका रचयिता चंद वरदाई नाम का कोई भाट था जिसने ईसा की वारहवीं शताब्दी में उसे बनाया था[2]। परन्तु इस विषय में इतिहासवेत्ताओं और साहित्यकारों में मतभेद है जो गत ६५ वर्षों से चला आ रहा है और अभी भी पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ है। हां, इतना अवश्य है कि यह मतभेद अब उतना गहरा नहीं रहा जितना प्रारंभ में था। इसका मुख्य कारण यह है कि रासो संबन्धी विवाद में इतिहासकारों को अब कोई रुचि नहीं रही। वे इस विषय में अपना अंतिम निर्णय दे चुके है और वह यह है कि 'पृथ्वीराज रासो एक अनैतिहासिक ग्रंथ है जो उसके चरित्र नायक महाराज पृथ्वीराज चौहाण के समय से बहुत पीछे बनाया गया है।[3]

इतिहासकारों की इस राय को साहित्यज्ञों ने भी प्रायः मान लिया है। परन्तु फिर भी कुछ ऐसे व्यक्ति शेष हैं जो इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। उनके इस दुराग्रह के दो कारण प्रतीत होते हैं—(१) उनकी भावुकता और (२) ऐतिहासिक तथ्यों से उनकी अनभिज्ञता।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनमें जातीय पक्षपात अथवा व्यक्तिगत स्वार्थ कार्य कर रहा है; और सच तो यह है कि इन्हीं लोगों ने रासो संबन्धी विवाद को उलझाया है और आज भी उसे अधिकाधिक उलझाने की चेष्टा में हैं। परन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं है, न इनके विचारों का कोई विशेष मूल्य है। क्योंकि अब लोग इनके वास्तविक मंतव्यों को ताड़ गये हैं।

पृथ्वीराज रासो का परिचय आधुनिक जगत् को पहले पहल संवत् १८८६ (सन् १८२९ ई०) में मिला। जब इतिहासकार कर्नल जेम्स टाड के 'एनल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑव राजस्थान' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में

---

2. कर्नल टॉड; दि एनल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑव राजस्थान (प्रथम संस्करण), पृ० २५४। ग्रियर्सन; दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान पृ० ३। मोहनलाल-विष्णुलाल पंड्या; पृथ्वीराज रासो की प्रथम संरक्षा, पृ० १। मिश्रबंधु; हिंदीनवरत्न (तृतीय संस्करण); पृ० ५७६–६०७।

3. कविराजा श्यामलदास; पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता, पृ० ८७। मुंशी देवीप्रसाद; नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग ५; सं० १९०१; पृ० १७०। पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा; कोशोत्सव स्मारक संग्रह; पृ० २९-६६।

उन्होंने रासो की बड़े ऊँचे शब्दों में प्रशंसा की और उसे इतिहास का एक अमूल्य ग्रंथ बतलाया:—

"चंद का यह ग्रंथ अपने समय का एक विश्वसुलीन इतिहास है। इसके ६४ सर्गों में पृथ्वीराज के पराक्रम संबन्धी एक लाख छंद हैं जिनमें राजस्थान के प्रत्येक प्रतिष्ठित घराने के पूर्वपुरुषों का कुछ न कुछ लेखा मिलता है। इसलिये राजपूत नाम का कुछ भी अभिमान रखनेवाली जातियाँ इसे अपने संग्रहालयों में रखती हैं और इसके द्वारा अपने उन वीर पुरखाओं का पता लगाती हैं जिन्होंने किर्मान के दर्रों में, जब कि युद्ध के बादल हिमालय से हिंदोस्तान तक के मैदानों में गड़गड़ा रहे थे, युद्ध-तरंगों का जल-पान किया था। पृथ्वीराज के युद्धों, उनकी संधियों, उनके वशवर्ती अनेक शक्ति-शाली राजाओं, उनके निवास-स्थानों तथा वंशावलियों ने चंद के इस काव्य को इतिहास एवं भूतत्त्व का एक अमूल्य ज्ञापन (Memorandum) बना दिया है तथा देव-गाथाओं, रीति-व्यवहारों व मनुष्य के मन के इतिहासों का भी वह एक कोषागार है[4]।

इतना ही नहीं, रासो की कविता से टॉड साहब इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इसके तीन हजार छंदों का अंग्रेजी अनुवाद भी कर डाला[5]।

किन्तु एक भारी भूल उनसे यह हुई कि उन्होंने रासो को पृथ्वीराज के समय की रचना समझ लिया और उसके अनेक अंशों को ऐतिहासिक तथ्य-प्रमाणों के रूप में अपने ग्रंथ में स्थान दिया। इससे उनके ग्रंथ में और उसके आधार पर लिखे गये सैकड़ों दूसरे ग्रंथों में इतिहास सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ आ गईं जिनका निराकरण अभी तक भी पूरी तरह नहीं हो पाया है। परन्तु इसमें टॉड साहब का विशेष दोष न था। उन दिनों भारतवर्ष में ऐतिहासिक शोध-कार्य का श्रीगणेश हुआ ही था और प्राचीन शिलालेख, मुद्राएँ, ताम्र-पत्र, हस्तलिखित ग्रंथ इत्यादि साधन इतनी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध न थे जितनी प्रचुर मात्रा में आजकल मिलते हैं जिनकी सहायता से वे रासो की घटनाओं, तिथियों आदि की ठीक-ठीक जाँच करते और उनकी वास्त-विकता का पता लगाते।

परन्तु टॉड साहब के लेख से एक बहुत बड़ा लाभ यह हुआ कि देश-

4. दि एनल्स ऐंड एंटिक्विटीज़ आव राजस्थान (प्रथम संस्करण), पृ० २५४।
5. वही; पृ० २५४।

विदेश के विद्वानों का ध्यान रासो की ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने इसका अध्ययन करना प्रारंभ किया।।

इन अध्ययन-कर्त्ताओं में 'इस्त्वार द ला लितरात्यूर इंदुई ए इंदुस्तानी' (संवत् १८९६=सन् १८३९ ई०) के रचयिता फ्रांसीसी विद्वान गार्सां दतासी का नाम शीर्षस्थानीय है। अपने इस ग्रंथ में तासी ने चंद को पृथ्वीराज का समकालीन और उसका समय ईसा की १२ वीं शताब्दी बतलाया है जिसका आधार कर्नल टॉड का उपरोक्त लेख ही प्रतीत होता है। क्योंकि बात इन्होंने भी वही कही है जो कर्नल टॉड ने लिखी है। केवल शब्दों का थोड़ा-सा अन्तर है। अनुमान होता है, तासी ने पृथ्वीराज रासो की दो-एक हस्तलिखित प्रतियां भी देखी थीं जिनका उल्लेख उन्होंने अपने इस ग्रंथ में चंद के वर्णन के साथ किया है। इन प्रतियों में एक प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन के पुस्तकालय की और दूसरी मैकेंजी के संग्रह की थी। तासी ने इस ग्रंथ में रावर्ट लिज नामक एक रूसी विद्वान का भी उल्लेख किया है जिन्होंने रूसी भाषा में रासो के एक खंड का अनुवाद किया था जो सन् १८३६ में सेंट पिटर्सबर्ग में प्रकाशित किया जाने को था परन्तु अनुवादक की असामयिक मृत्यु हो जाने से प्रकाशित नहीं किया जा सका।[6]

तासी के पश्चात् जिन पाश्चात्य विद्वानों ने रासो पर काम किया उनमें एफ० एस० ग्राउस, जॉन बीम्स और रूडोल्फ होर्नली के नाम उल्लेख योग्य हैं। इन्होंने रासो की कई हस्तलिखित प्रतियां ढूंढ़ निकालीं और उसके कुछ खंडों का सम्पादन किया तथा उनका अंग्रेजी अनुवाद छपवाया। साथ ही रासो की भाषा आदि पर कुछ फुटकर लेख भी लिखे जो एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, के जर्नल में प्रकाशित हुए।[7] ये लेख सर्वथा निर्दोष न होते हुए भी बड़े महत्त्व के हैं और इन विद्वानों के गंभीर अध्ययन तथा अथक परिश्रम के परिचायक हैं। कहना न होगा कि ये तीनों पाश्चात्य विद्वान कर्नल टाड के मतानुगामी थे और चंद को हिंदी भाषा का आदि कवि तथा रासो का रचनाकाल १२ वीं शताब्दी मानते थे[8] और यही मानकर इन्होंने रासो पर इतना कठोर परिश्रम किया था।

---

6. ग्रियर्सन; दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान, पृ० ४।

7. सेंटिनरी रिव्यू आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, सन् १७८४–१८८३, परिशिष्ट सी०, पृ० १०५।

8. वही; पृ० १६७।

जिस समय ये विद्वान एशियाटिक सोसाइटी के तत्वावधान में रासौ संवन्धी उक्त कार्य कर रहे थे लगभग उसी समय उदयपुर के कविराजा श्यामलदास मेवाड़ का वृहत् इतिहास 'वीरविनोद' लिख रहे थे । इस प्रसंग में उनको पृथ्वीराज रासौ के अध्ययन का अवसर मिला और इतिहास विषयक जो त्रुटियां उनके देखने में आईं उन पर हिंदी में एक लेख लिखकर उसे 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित करवाया। (सं० १९४२) इसी का अंग्रेजी अनुवाद बाद में एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित हुआ[9] ।

इस लेख में श्यामलदास ने रासौ की कुछ घटनाओं, तिथियों आदि को इतिहास की कसौटी पर कसा और उसके संवन्ध में निम्नलिखित बातें वतलाईं :—

(१) पृथ्वीराज रासौ पृथ्वीराज अथवा चंद के समय से वहुत पीछे वना है[10] ।

(२) इसका रचयिता वेदला या कोठारिया के चौहाणों का आश्रित कोई भाट था जिसने अपनी जाति का वड़प्पन दिखलाने के लिये इसे रचा था[11] ।

(३) यह ग्रंथ इतिहास की दृष्टि से दोषपूर्ण और निरर्थक है[12] ।

(४) इसका निर्माण सं० १६४० और सं० १६७० के वीच में हुआ है[13] ।

इससे पृथ्वीराज रासौ के संवन्ध में नई चर्चा खड़ी हो गई । उन दिनों मथुरा-निवासी मोहनलाल-विष्णुलाल पंड्या उदयपुर की 'महद्राजसभा' के सेक्रेटरी थे। उदयपुर के कुछ राजदरबारी राव-भाटों ने पंड्याजी को घेर लिया और रासौ सम्वन्धी अनेक मिथ्या धारणाएँ उनके मस्तिष्क में भर दीं तथा श्यामलदास के विरुद्ध खड़ा किया । पंड्याजी प्राचीन हिंदी साहित्य के सुज्ञाता और अध्ययनशील व्यक्ति थे । परन्तु राजस्थान की भाषा, राजस्थान के इतिहास और राजस्थान की साहित्यिक परम्पराओं से अनभिज्ञ थे । इसलिए राव-भाटों के धोखे में आ गये । उन लोगों ने पृथ्वीराज और चंद की झूठी वंशावलियाँ, नकली पट्टे-परवाने और रासो की वनावटी हस्तलिखित प्रतियाँ पंड्याजी को दीं । इस सामग्री के आधार पर उन्होंने 'पृथ्वीराज रासौ की

9. संख्या १, भाग १, सन् १८८६ ।
10. पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता, पृ० २ ।
11. वही; पृ० ३ ।
12. वही; पृ० ८७ ।
13. वही; पृ० ७५ ।

प्रथम संरक्षा' नामक एक छोटी-सी पुस्तक तैयार की जो सं० १९४४ में प्रकाशित हुई । इस पुस्तक में उन्होंने पृथ्वीराज रासो के कर्त्ता चंद का प्रसिद्ध चौहाण राजा पृथ्वीराज के समय में होना सिद्ध करने की भरसक चेष्टा की जो निष्फल रही। कविराजा श्यामलदास के उल्लिखित आक्षेपों में से एक का भी संतोषजनक उत्तर उनसे न बन सका ।

पृथ्वीराज रासो में सब से अधिक गड़बड़ी संवतों की पाई जाती है। इसका कारण पंड्याजी ने यह बतलाया कि पृथ्वीराज रासो में विक्रम संवत् का नहीं, बल्कि एक संवत् विशेष, अनंद विक्रम संवत्, का प्रयोग हुआ है जिसमें ९०।९१ वर्ष जोड़ देने से विशुद्ध विक्रम संवत् निकल आता है[14] । परन्तु उनकी यह कल्पना भी निराधार सिद्ध हुई[15] ।

अभी तक जॉन बीम्स आदि अंग्रेज विद्वान इस विषय में मौन थे । कविराजा श्यामलदास के लेख से उनके मन में संदेह अवश्य उत्पन्न हो गया था पर वे इस चिंता में थे कि कोई पाश्चात्य विद्वान उनकी बात का समर्थन करे । सौभाग्य से वह अवसर भी शीघ्र ही आ गया और उसका श्रेय प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता जर्मन विद्वान डा० बूलर को मिला । सं० १९३२ में उनको कश्मीर में संस्कृत-ग्रंथों की खोज करते समय 'पृथ्वीराज-विजय' नामक महाकाव्य की भोजपत्र पर लिखी हुई एक अपूर्ण प्राचीन प्रति मिली । इसका अध्ययन करने पर उनको मालूम हुआ कि इसका रचयिता, जयानक कवि, पृथ्वीराज का समकालीन और उनका राजकवि था । इसमें दी हुई पृथ्वीराज की वंशावली तथा उनके जीवन संबन्धी अन्य घटनाओं को उन्होंने पृथ्वीराज रासो के विरुद्ध और शिलालेखों से मिलता-जुलता पाया ।

इस खोज की सूचना डा० बूलर ने एक पत्र द्वारा एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, को दी । पत्र के अंतिम भाग में उन्होंने लिखा कि "मैं समझता हूँ, चंद के रासो का प्रकाशन बन्द कर दिया जाय तो अच्छा होगा । यह ग्रंथ जाली है जैसा कि जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदास ने बहुत काल पहले प्रकट किया था । 'पृथ्वीराजविजय' के अनुसार पृथ्वीराज के बंदीराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम पृथ्वीभट था न कि चंद बरदाई[16] ।"

14. पृथ्वीराज रासो, आदि पर्व (ना० प्र० सभा), पृ० १३९–१४४
15. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १, सं० १९९७, पृ० ३७७–४५४।
16. प्रोसीडिंग्ज आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, संख्या ४ और ५, (अप्रैल–मई), सन् १८९३, पृ० ९४–९५ ।

डा० बूलर के इस पत्र से पाश्चात्य विद्वानों का रहा-सहा संदेह दूर हो गया और एशियाटिक सोसाइटी ने रासो का प्रकाशन बन्द कर दिया।

इस पर मोहनलाल-विष्णुलाल पंड्या और बाबू श्यामसुन्दरदास ने रासो के संपादन का काम अपने हाथ में लिया और उसे नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, की ओर से प्रकाशित करवाया (सं० १९६२)। इससे यह ग्रंथ सर्वसाधारण को सुलभ हो गया और विद्वानों को इसके पक्ष-विपक्ष में सम्मति प्रकट करने का अवसर मिला जिसका उन्होंने भरपूर लाभ उठाया। रासो पर सब से अधिक श्रम स्वर्गीय पंडित गौरीशंकर-हीराचन्द ओझा ने किया। इन्होंने इतिहास, भाषाशास्त्र आदि विभिन्न दृष्टियों से इसकी परीक्षा की और अन्त में इसे सं० १६०० के आसपास का रचा हुआ[17] एक अनैतिहासिक ग्रंथ बताया। उन्हीं के शब्दों में "पृथ्वीराज रासो बिलकुल अनैतिहासिक ग्रंथ है।[18] उसमें चौहाणों, प्रतिहारों, और सोलंकियों की उत्पत्ति के संबन्ध की कथा, चौहाणों की वंशावली[19], पृथ्वीराज की माता,[20] भाई, बहन, पुत्र, राणियों आदि के विषय की कथाएँ तथा बहुत सी घटनाओं के संवत् और प्रायः सभी घटनाएँ तथा सामंतों आदि के नाम अशुद्ध और कल्पित हैं। कुछ सुनी-सुनाई बातों के आधार पर इस काव्य की रचना की गई है।[21] यदि पृथ्वीराज रासो पृथ्वीराज के समय में लिखा जाता तो इतनी बड़ी अशुद्धियों का होना असंभव था।"

जहाँ तक रासो की ऐतिहासिकता का संबन्ध है पंडितजी की उक्त राय मान्य है और देश-विदेश के सभी प्रतिष्ठित विद्वानों ने इसे मान लिया है। अतः इस विषय में यहाँ कुछ कहना केवल पिष्टपेषण होगा। अब झगड़ा सिर्फ इसके निर्माण-काल सम्बन्धी रह गया है और इसी पर यहाँ विचार करना है।

अनुश्रुति है कि चंद बरदाई महाराज पृथ्वीराज चौहाण का राजकवि और सामंत था। परन्तु इसका कोई लिखित प्रमाण अभी तक हस्तगत नहीं हुआ। आचार्य श्री जिन विजय मुनि को चंद नामक किसी कवि के चार फुटकर कवित्त (छप्पय) मिले हैं जो अपभ्रंश भाषा में हैं।[22] जिस प्राचीन प्रति

---

17. कोशोत्सव स्मारक संग्रह; पृ० ६६।
18. वही; ६५।
19. वही; ३९।
20. वही; ४१।
21. वही; ६५।
22. पुरातन प्रबन्ध संग्रह; पृ० ८६, ८८, और ८९।

में ये छप्पय मिले हैं वह सं० १५२८ की लिखी हुई है ।[23] इससे मालूम पड़ता है कि चंद नाम का कोई कवि प्राचीन समय में, कम से कम सं० १५२८ से पहले हुआ अवश्य है । परन्तु वह चंद कब हुआ, कहाँ हुआ, वह किस जाति का था, उसने क्या लिखा, कितना लिखा इत्यादि बातों का कुछ पता नहीं है । अतः उस चंद का अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ से संबन्ध जोड़ना अनुचित है । क्योंकि इसकी भाषा स्पष्ट बतला रही है कि यह विक्रम की १८ वीं शताब्दी से पूर्व की रचना नहीं है । न १८ वीं शताब्दी से पहले के संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी आदि के किसी ग्रंथ में इसका नाम दृष्टिगोचर होता है । यहां तक कि पृथ्वीराजविजय महाकाव्य (सं० १२४६), प्रबन्धचिंतामणि (सं० १३६१), हंमीर महाकाव्य (सं० १४६०), सुर्जनचरित्र (सं० १६३५) इत्यादि ग्रंथों में भी, जिनमें पृथ्वीराज अथवा चौहाण-वंशी अन्य राजाओं का विस्तृत वर्णन है, रासौ का नाम नहीं है ।

रासौ साहित्यिक दृष्टि से एक बहुत उत्तम कोटि का ग्रंथ है । वह कोई ऐसी साधारण रचना नहीं है कि जिसकी उपेक्षा की जा सके । यदि वह १८ वीं शताब्दी के पूर्व रचा गया होता तो उल्लिखित ग्रंथों में से किसी न किसी में इसका नामोल्लेख अवश्य होता ।

पृथ्वीराज रासौ का प्रथम प्रामाणिक उल्लेख 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में मिलता है । इसके तीसरे सर्ग में रावल समरसिंह के वर्णन में इसका रचयिता छोटिंग भट्ट लिखता है कि 'समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई से विवाह किया था और शहाबुद्दीन की लड़ाई में वह मारा गया जिसका वृत्तान्त भाषा के रासौ ग्रंथ में लिखा है ।[24]

---

23. वही; पृ० ३ (प्रास्ताविक वक्तव्य)

24. ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः ।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दतः ॥२४॥
गोरीसाहिवदीनेन गज्जनीशेन संगरम् ।
कुर्वतोऽत्यर्थगर्वस्य महासामंतशोभितः ॥२५॥
दिल्लीश्वरस्य चोहाननाथस्यास्य सहायकृत् ।
स द्वादशसहस्रैः स्ववीराणां सहितो रणे ॥२६॥
हत्वा गोरीगानि दैवात् स्वर्यातः सूर्यबिंबभित् ।
भाषा "रासा" पुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥२७॥

—सर्ग ३

तदंतर दलपति मिश्र कृत जसवंत-उद्योत,[25] कवि जदुनाथ कृत वृत्तविलास[26] कवि वल्लभ कृत कुन्तीप्रसन्नाख्यान,[27] आदि १८ वीं १९ वीं शताब्दी के ग्रंथों में इसका नाम दिखाई देता है। यथा—

संयोगिता कुमारिका, रच्यौ स्वयंवर काजु।
देस विदेसनि तें तहाँ, आयौ राज समाजु॥ ४०१॥
चंद भाट की चाकरी, पृथ्वीराज विचारि।
संग सोरह सामंत ले, गयो गुपत अनुहारि॥ ४०२॥
संयोगिता कुमारिका, वर्‌यौ जहाँ चौहानु।
तहीं पिथौरा कह दयौ, राइ अभै जिय दानु॥ ४०३॥
रासौ पृथ्वीराज कौ, तहाँ बहुत विस्तारु।
मैं वरन्यौ संछेप ही, सकल कथा कौ सारु॥ ४०४॥
—जसवंत-उद्योत

एक लाख रासौ कियो, सहस पंच परिमान।
पृथ्वीराज नृप को सुजसु, जाहर सकल जिहान॥ ५६॥
—वृत्तविलास

---

25. इस ग्रंथ में इसका रचनाकाल सं० १७०५ दिया हुआ है (पाँच अधिक सत्रसई,संवत को परमानु)। परन्तु इसमें महाराजा जसवन्तसिंह के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन भी है जो सं० १७०५ के बाद में हुई थीं। अतः यह संवत् संदिग्ध है। लेकिन इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में सुरक्षित है जो सं० १७४७ की लिखी हुई है। इसलिये यह सं० १७४७ से पहले का रचा हुआ तो है।

26. ये करौली के यदुवंशी राजा गोपालसिंह (गोपालपाल) के आश्रित थे। इनका रचना-काल सं० १८०० है। देखिये कोशोत्सव स्मारक संग्रह में पंडित गौरीशंकर-हीराचन्द ओझा का लेख, पृ० ६४।

27. वल्लभ गुजरात के सुप्रसिद्ध कवि प्रेमानन्द (सं० १६९३–१७९१) के पुत्र थे। कुंतीप्रसन्नाख्यान की रचना उन्होंने सं० १८३८ में की थी। देखिये, श्रीकन्हैयालाल - माणिकलाल मुंशी कृत गुजरात एंड इट्स लिट्रेचर पृ० २००।

भारत समुं प्रमाण, रासा ना तमासा भाळो ।
कर्या भारत वेत्रण, आरत उत्रेखिए ॥
पृथ्वीश प्रशंसा कथी, मानशे नुँ मोधुं तेमां ।
प्रेमानन्द नी कविता, सविता शी पेखिए ॥
ब्राह्मण थी भाट थया, वंशज विधिना आतो ।
कवीश्वर ना पिता थी, चंद मंद देखिए ॥

—कुन्तीप्रसन्नाख्यान

'राजप्रशस्ति महाकाव्य' एक इतिहास-प्रसिद्ध ग्रंथ है । यह ग्रंथ महाराणा राजसिंह के बनवाये हुए 'राजसमंद' नामक तालाव[28] की बाँध पर पच्चीस बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खुदा हुआ है, और भारत भर में सब से बड़ा शिलालेख तथा शिलाओं पर खुदे हुए ग्रंथों में सब से बड़ा है ।[29] इसमें २५ सर्ग हैं और १०१७ श्लोक । यह काव्य कोरा कल्पना-प्रसूत नहीं है । इसमें इतिहास और काव्य दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है ।

इसके लिए सामग्री एकत्र करवाने में महाराणा राजसिंह ने बहुत धन व्यय किया था और बहुत दूर-दूर तक खोज करवाई थी । परिणाम-स्वरूप प्राचीन ग्रंथों आदि के रूप में इतिहास-विषयक प्रचुर सामग्री प्रकाश में आई और 'राजरत्नाकर', 'राजविलास', 'राजप्रकाश' इत्यादि कई ग्रंथ उसी समय नये लिखे गये जिन सब की मूल प्रतियाँ उदयपुर के सरस्वती भंडार में सुरक्षित हैं ।[30] इसी समय चंद का कोई वंशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासो लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है । यदि यह व्यक्ति रासो को अपने नाम से प्रचारित करता तो लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिए अनुपयोगी समझते और उसमें वर्णित बातें उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पड़तीं । अतएव चंद-रचित बतलाकर उसने इस सारे झगड़े का अंत कर दिया । चंद का नाम लोक-प्रचलित था ही । लोगों को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया ।

'राजप्रशस्ति महाकाव्य' का लिखना सं० १७१८ में प्रारंभ हुआ था

---

28. यह तालाब उदयपुर से ४० मील उत्तर-पूर्व में है । यह चार मील लंबा, पौने दो मील चौड़ा और ५५ फीट गहरा है । इसकी बनवाई में १०५४०५,८८ रुपया खर्च हुआ था ।
29. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास; पृ० ५७४ ।
30. ए कैटेलॉग आव मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी आव हिज हाइनेस दि महाराना आव उदयपुर; पृ० १२२, २५४ ।

प्रारंभ हुआ था और समाप्ति उसकी सं० १७३२[31] में हुई थी। अतः इसी के समानान्तर का समय पृथ्वीराज रासौ की रचना का भी समय है। परन्तु यदि कोई यह कल्पना करे कि 'राजप्रशस्ति' का लिखना प्रारम्भ करने से पूर्व उसके लिए सामग्री जुटाने का काम शुरु हो गया होगा, और संभवतः उसी समय रासौ का भी श्रीगणेश हो गया हो तो इस समय को खींच-खांचकर सं० १७०० तक भी ले जाया जा सकता ह। परन्तु इससे आगे ले जाना इतिहास और अनुमान दोनों का गला घोंटना है।

हमारे इस अनुमान की पुष्टि रासौ की प्राचीन लिखित प्रतियों से भी होती है। रासौ की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियां अभी तक प्राप्त हुई हैं वे सव सं० १७०० के वाद की हैं। जिन प्रतियों को सं० १७०० के पूर्व की माना जा रहा है वे यथार्थ में सं० १७०० के पूर्व की नहीं हैं। इस विषय में वड़ा धोखा चल रहा है, और यह धोखा काफी लम्बे अर्से से होता चला आ रहा मालूम पड़ता है। अतः इसके मूलभूत कारणों को भी जान लेना आवश्यक है।

वात यह है कि चंद की वड़ी ख्याति देखकर भारतवर्ष के कुछ भागों में, विशेषकर राजस्थान और गुजरात में, राव-भाटों के कई ऐसे घराने उठ खड़े हुए हैं जो अपने को चंद की वंश-परंपरा में वतलाते हैं। परन्तु इनके पास प्रमाण कुछ नहीं हैं। अतएव ये नकली प्रमाण गढ़ते रहते हैं। इनमें से कुछ ने झूठी वंशावलियां भी वना ली हैं।[32] अपने कथन की पुष्टि में ये लोग पृथ्वीराज रासौ की भी, छोटी-वड़ी, तरह-तरह की, हस्तलिखित प्रतियाँ सामने लाकर रखते हैं जिनमें वहुत प्राचीन संवत् लिखे रहते हैं। इन प्रतियों की पुष्पिकाओं में ये लोग संवत्, माह और तिथि का उल्लेख तो करते हैं पर वार नहीं लिखते। जैसे--

"संमत् १२५० वर्षे आसाड़ सुदी १३।"

"सं० १३४० काती विद ३।"

"सं० १६७५ का माहा वद ५ सुभं लिखतां भाई सोभजी।"

क्योंकि दो-चार शताब्दियों पहले के किसी संवत् के अमुक महीने की तिथि को अमुक वार था इसका ज्योतिष-गणना आदि से पता लगा लेना इनके लिये दुष्कर है। और यदि कहीं अशुद्ध वार लिख दें, जैसा कहीं-कहीं लिखा मिलता

31. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५७०, ५७२ और ५७७।

32. हरप्रसाद शास्त्री; प्रेलिमिनेरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इन सर्च आव मैनुस्क्रिपट्स ऑव वार्डिक क्रोनिकल्स, पृ० ३०।

भी है, तो दूसरों द्वारा जंत्री आदि से मिलान करने पर पोल खुल जाने का भय रहता है ।

इसके अलावा इन बनावटी प्रतियों की पुष्पिकाओं में जो संवत् ये लोग लिखते हैं उसके आसपास के किसी बड़े राजा अथवा जैनाचार्य आदि का नाम भी उनमें जोड़ देते हैं जिनका आधार इनकी बहियाँ अथवा सुनी-सुनाई बातें हुआ करती हैं । अतएव कभी तो इनका अनुमान ठीक बैठता है और कभी गलत हो जाता है ।

कभी-कभी प्रति के अंत में पुष्पिका न देकर ये लोग किसी प्राचीन ऐतिहासिक पुरुष की प्रशंसा आदि का कोई पद्य बनाकर लिख देते हैं जिससे आगे जाकर लोग यह समझें कि वह प्रति उस महापुरुष के लिए अथवा समय में लिपिबद्ध हुई होगी । परन्तु चोरी चोरी ही है । काग़ज़ से, स्याही से, लिखावट से, पुष्पिका में दी हुई अटकलपच्चू बातों से सही बात का पता लग ही जाता है ।

पृथ्वीराज रासो की लगभग ३०-३५ हस्तलिखित प्रतियाँ हमारे देखने में आई हैं । इनमें से कुछ प्रतियों में बहुत प्राचीन संवत् लिखे हुए मिले । पर गहरी परीक्षा करने पर सब अशुद्ध निकले । दो-एक दफा ऐसा भी हुआ कि पहली बार जब प्रति को देखा गया तो उसमें उसका लेखन-काल कुछ और दिया हुआ था और बाद में कुछ और लिखा हुआ मिला ।

कुछ वर्ष पूर्व प्रो० रमाकान्त त्रिपाठी की नागौर-निवासी नानूराम नामक एक भाट से भेंट हुई थी । उसने अपने को चंद का वंशधर बतलाया और रासो की दो प्रतियाँ लाकर त्रिपाठीजी के सामने रखीं जिनमें से एक में उसका लेखन-काल सं० १४५५ दिया हुआ था--

"संवत् १४५५ वरषे शरद ऋतौ आश्विन मासे शुक्ल पक्षे उदयात घटी १६ चतुरथी दिवसे लिखतं । श्री खरतरगच्छाधिराजे पंडित श्रीरूपजी लिखतं चेला श्रीसोभाजी रा । कपासन मध्ये ।[33]

प्रति वर्ष आश्विन का महीना, शुक्ल पक्ष, चतुर्थी इत्यादि होते हैं और इसलिए सं० १४५५ में भी ये सब हुए होंगे इसमें कोई संदेह नहीं । परन्तु जानने योग्य बात यह है कि उक्त संवत् के आश्विन माह के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को वार कौन सा था, जिसका पुष्पिका में कहीं उल्लेख नहीं है । जो लिपिकार पुष्पिका में घड़ी आदि जैसी सूक्ष्म बातों तक का विवरण दे

33. चाँद; नवम्बर १९२९, पृ० १४९ ।

देता है वह वार जैसी बड़ी बात का उल्लेख नहीं करता इससे क्या सूचित होता है। स्पष्ट है कि प्रति कृत्रिम है और इसकी पुष्टि उसकी भाषा से होती है जो किसी दशा में भी १६ वीं शताब्दी से पूर्व की नहीं है :—

एक पहुर में साँवत मारे। लोक हजार पाँच तहँ मारे॥
ये साँवत पृथिराज पियारे। केतेई दल सँकर बुहारे॥
मारे लोक हजार अठारा। उभय हूर इकवीस सिंगारा॥
दोउ घरिय पच्चिसू पूगे। धूमध्यान के चूखट पुग्गे॥
ता पिछ लोक च्यार दस मारे। पिछले पहुर पचास सिंगारे॥
तब दलथंभ चंदेल जुहारे। साँवत पूगे महल मँझारे॥
महलन मध्ये घाव सिवाये। फते फते कर साँमत आये[34]॥

इस प्रकार का छल अब कुछ अन्य लोग भी करने लगे है जो अपनी नई खोज बतलाने के लिए ऐसा कर रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण 'विशाल भारत' में प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासौ की प्राचीनतम प्रति' शीर्षक वह टिप्पणी है जिसमें उसके लेखक ने अपने पास रासौ की सं० १४०३ की लिखी हुई एक प्रति होना बतलाया है।[35] लेखक का यह भी कहना है कि यह रासौ छप्पय छंदों में गुंफित है और अपभ्रंश भाषा में है।[36] उनके अनुसार इस रासौ की हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है :—

"विक्रम सं० १४०३ कातिक शुक्ल पंचम्यां॥ तुगलक फ़िरोजशाहि विजय राज्ये ढिल्यां मध्ये लिपि कृतं वाचक महिम राजेन श्रीमाल कुलोत्पन्न श्रीठक्कुर फेरू पुत्र हेमपाल वाचनार्थ शुभं भूयात।[37]"

इस पुष्पिका में भी वही दोष है जो नानूरामवाली प्रति की पुष्पिका में पाया जाता है। अर्थात् तिथि के साथ वार का उल्लेख इसमें भी नहीं है। इसके अतिरिक्त पुष्पिका में कहा गया है कि यह प्रति सं० १४०३ में फीरोजशाह तुगलक के शासन-समय में दिल्ली में लिखी गई थी। परन्तु सं० १४०३ में

---

34. हरप्रसाद शास्त्री, प्रेलिमिनेरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इन सर्च आव मैनुस्क्रिपट्स आव वार्डिक क्रोनिकल्स, पृ० २७।
35. विशाल भारत, नवम्बर, १६४६, पृ० २३१।
36. वही।
37. वही।

फीरोजशाह दिल्ली का शासक ही नहीं था। उस समय मुहम्मदशाह तुगलक दिल्ली पर राज्य करता था। फीरोज तुगलक सं० १४०८ (सन् १३५१ ई०) में राजसिंहासन पर बैठा था और ३७ वर्ष राज्य करने के पश्चात् सं० १४४५ (सन् १३८८ ई०) में मरा था।[38] अस्तु।

पृथ्वीराज रासो की जितनी हस्तलिखित प्रतियों का पता अब तक लग सका है वे ये हैं :—

(१) 'टॉड कलेक्शन ऑव मैनुस्क्रिप्टस' की बारह प्रतियां।[39]
(२) सरस्वती भंडार, उदयपुर, की सात प्रतियाँ।
(३) अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, की सात प्रतियां।
(४) रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंबई शाखा की तीन प्रतियां।
(५) एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, की तीन प्रतियाँ।
(६) ओरियंटल कॉलेज लाइब्रेरी, लाहौर, की तीन प्रतियां।
(७) भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीटयूट, पूना, की दो प्रतियां।
(८) अभय जैन पुस्तकालय, बीकानेर, की दो प्रतियाँ।
(९) सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर, की दो प्रतियां।
(१०) फार्बस गुजराती सभा की दो प्रतियां।
(११) भोंदर के श्रीमाणिक्यविजयजी की दो प्रतियां।
(१२) वृहत् ज्ञानभंडार, बीकानेर, की एक प्रति।
(१३) नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, की एक प्रति।
(१४) आगरा कॉलेज की एक प्रति।
(१५) बेदला की एक प्रति।
(१६) देवलिया प्रतापगढ़ की एक प्रति।
(१७) कनोड़ की एक प्रति।[40]
(१८) उदयपुर के स्वर्गीय वख्तावरजी राव की एक प्रति।
(१९) [illegible] की एक प्रति।
(२०) स्वर्गीय पूर्णचन्द्र नाहर की एक प्रति।

---

38. वि० ए० स्मिथ; दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आव इण्डिया, पृ० २६२।
39. दि जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी आव ग्रेट ब्रिटेन ऐण्ड आयरलैंड, सन् १९४०, पृ० १२६–१३१।
40. [illegible] १६४५, में देखा था। उस समय [illegible] १६४६ लिखा हुआ था। परन्तु अब उसे बदल [illegible] दिया गया है।

फीरोजशाह दिल्ली का शासक ही नहीं था । उस समय मुहम्मदशाह तुगलक दिल्ली पर राज्य करता था । फीरोज तुगलक सं० १४०८ (सन् १३५१ ई०) में राजसिंहासन पर बैठा था और ३७ वर्ष राज्य करने के पश्चात् सं० १४४५ (सन् १३८८ ई०) में मरा था ।[38] अस्तु ।

पृथ्वीराज रासो की जितनी हस्तलिखित प्रतियों का पता अब तक लग सका है वे ये हैं :—

(१) 'टॉड कलेक्शन ऑव मैनुस्क्रिप्टस' की बारह प्रतियां ।[39]
(२) सरस्वती भंडार, उदयपुर, की सात प्रतियाँ ।
(३) अनूप संस्कृत पुस्तकालय , बीकानेर, की सात प्रतियां ।
(४) रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंबई शाखा की तीन प्रतियां ।
(५) एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, की तीन प्रतियाँ ।
(६) ओरियंटल कॉलेज लाइब्रेरी, लाहौर, की तीन प्रतियां ।
(७) भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीटयूट, पूना, की दो प्रतियां ।
(८) अभय जैन पुस्तकालय, बीकानेर, की दो प्रतियाँ ।
(९) सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर, की दो प्रतियां ।
(१०) फार्बस गुजराती सभा की दो प्रतियां ।
(११) भींडर के श्रीमाणिक्यविजयजी की दो प्रतियां ।
(१२) बृहत् ज्ञानभंडार, बीकानेर, की एक प्रति ।
(१३) नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, की एक प्रति ।
(१४) आगरा कॉलेज की एक प्रति ।
(१५) बेदला की एक प्रति ।
(१६) देवलिया प्रतापगढ़ की एक प्रति ।
(१७) कनोड़ की एक प्रति ।[40]
(१८) उदयपुर के स्वर्गीय [illegible] राव की एक प्रति ।
(१९) बोर्डलियन की एक प्रति ।
(२०) स्वर्गीय पूर्णचन्द्र नाहर की एक प्रति ।

---

38. वि० ए० स्मिथ; दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आव इण्डिया, पृ० २६२ ।
39. दि जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आव ग्रेट ब्रिटेन ऐण्ड आयरलैंड, सन् १९४०, पृ० [illegible] ।
40. [illegible] १६४५, में देखा था । उस समय [illegible] १६४६ लिखा हुआ था । परन्तु अब उसे बदल [illegible] दिया गया है ।

(१)

मिलि पंकज गन उदधि करद कागद कातरनी ।
कोटि कवी का जलह कमल कटिक तैं करनी ॥
इहि निधि संख्या गुनित कहै कक्का कवियानै ।
इह श्रम लेखनहार भैद भेदै सोइ जानै ॥
इन कष्ट ग्रंथ पूरन करय जन वड़ या दुख ना लहय ।
पालियै जतन पुस्तक पवित्र लिखि लेखिक विनती करय ॥

(२)

गुन मनियन रस पोय चन्द कवि कत्रियन दिद्धिय ।
छंद गुनी तें तुट्टि मंद कवि भिन भिन किद्धिय ॥
देस देस विप्परिय मेल गुन पार न पावय ।
उद्दिम करि मेलवत आस विन आलय आवय ॥
चित्रकोट रान अमरेस नृप हित श्रीमुख आयस दयौ ।
गन वीन वीन करुना उदधि लखि रासौ उद्दिम कियौ[44] ॥

इतिहास बतलाता है कि सं० १७६० में मेवाड़ पर महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) का राज्य था,[45] और ज्योतिष-गणना से सूचित होता है कि सं० १७६० को माघ वदि ६ को सोमवार था ।[46] अतः इस प्रति की प्रामाणिकता के संबन्ध में किसी प्रकार के संदेह अथवा मतभेद के लिये स्थान नहीं है ।

(१) नागरीप्रचारिणी सभावाली प्रति को जिस आधार पर सं० १६४२ माना गया है वह आधार उपर्युक्त दोनों छप्पय हैं जिनका ऊटपटांग अर्थ इस प्रकार किया गया है । प्रथम छप्पय के 'मिलि पंकज गन उदधि करद कागद कातरनी' तुक के संबन्ध में कहा गया है कि "यदि पंकज से पंकज नाल (१), गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है, मान लें, तो सं० १६४१ बनता है ।"[47]

---

44. हस्तलिखित प्रति, पत्र नं. ८८६ ।
45. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ११८७–११८८ ।
46. [illegible] पिल्लै; इण्डियन एफेमेरिस, पृ० २०८ (वोल्यूम ६)
47. [illegible] की ओरियंटल कान्फ्रेंस के हिन्दी विभाग के सभापति की [illegible] दिया गया डा० श्यामसुन्दर का भाषण ।

द्वितीय छप्पय के 'चित्रकूट गान अमरेस नृप' से अभिप्राय चित्तौड़ के राणा अमरसिंह प्रथम (सं० १६५३-१६७६) लिया गया है,[48] और इन दोनों मिथ्या धारणाओं के आधार पर रासो का संकलन-काल सं० १६४१ तथा रासो की प्राचीनतम प्रति का लिपिकाल सं० १६४२ ठहराया गया है।

परन्तु सरस्वती भंडार, उदयपुर, की प्रति की उपर्युक्त पुष्पिका से, जिसके ऊपर ये दोनों छप्पय दिये हुए हैं, स्पष्ट है कि 'मिति पंकज गन उदधि' आदि का अर्थ सं० १७६० होता है[49] और 'अमरेस नृप' से अभिप्राय अमरसिंह द्वितीय से है।

इस संबन्ध में अधिक टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। कारण कि अब तो सभावालों ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया है, कि उनकी प्रति सं० १६४२ की लिखी हुई नहीं है। वह सं० १६३२[50] की है।

(२) अब कर्नल टॉड की प्रति को लीजिये। इसमें उसका लिपिकाल सं० १६६२, चैत्र सुदी २, रविवार दिया हुआ है। परन्तु सं० १६६२ की चैत्र सुदी द्वितीया को रविवार था ही नहीं। उस दिन मंगलवार था। अतः यह प्रति भी अप्रामाणिक है।[51]

पंडित गौरीशंकरजी ने रासो का निर्माण-काल सं० १६०० के आस-पास जो निश्चित किया है उसका आधार नागरीप्रचारिणी सभा की उपर्युक्त प्रति है जिसके संबन्ध में उनको कहा गया कि वह सं० १६४२ की लिखी हुई है। अतः यह सोचकर कि जब रासो की हस्तलिखित प्रति सं० १६४२ की प्राप्त है तब रासो का प्रणयन-काल उससे पूर्व का होना ही चाहिये उन्होंने उसे सं० १६०० के आसपास का रचा हुआ बताया। परन्तु न तो रासो की प्राचीनतम प्रति सं० १६४२ की लिखी हुई कहीं है और न रासो सं० १६०० के आसपास रचा गया है। वस्तुतः सं० १७०० के आसपास इस ग्रंथ की रचना हुई है।

---

48. नागरीप्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' की उपसंहारिणी टिप्पणी, पृ० १७८

49. प्राचीन ग्रंथों में 'उदधि' और 'कन्द' (चन्द्र) को क्रमशः ७ और १ की संख्या का सूचक माना गया है। 'अतः "अंकानां वामतो गतिः" नियम के अनुसार 'मिति पंकज गन उदधि कन्द' में १७ की संख्या तो ठीक निकल आती है पर आगे अर्थ स्पष्ट नहीं है।

50. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५३, अंक २, पृ० १२६

कुछ विद्वानों का कथन है कि पृथ्वीराज रासो जिस रूप में आजकल पाया जाता है वह उसका वास्तविक रूप नहीं है। उनके मतानुसार मूल रासौ दूसरा था। इस विषय में उनमें तीन मत पाये जाते है। ये तीनों मत और उनकी समीक्षाएँ नीचे दी जाती है।

पहला मत। पृथ्वीराज रासौ की रचना चंद ने पृथ्वीराज के राजत्व-काल में की थी। परन्तु उस समय यह इतना बड़ा न था। चंद के वंशज अथवा दूसरे लोग बाद में समय-समय पर इसमें प्रक्षिप्त अंश जोड़ते गये जिससे इसका कलेवर बढ़ गया और इतिहास सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी अनेक आ गई है।[52]

यह मत डा० ग्रियर्सन और उनके अनुयायियों का है। अपने मत के समर्थन में इन्होंने कोई ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। केवल अपनी एक अस्पष्ट धारणा को मत के रूप में सामने रख दिया है और रासौ में पाई जानेवाली अनेकानेक ऐतिहासिक त्रुटियों के परिहार के लिये ऐसा किया गया है। रासौ के कुछ अंशों को ये विद्वान प्राचीन और कुछ को प्रक्षिप्त मानते है। परन्तु वे प्राचीन अंश कौन से है और किस आधार पर उनको प्राचीन कहा जा रहा है इस संबन्ध में इन्होंने कुछ नही कहा। इसमें कोई संदेह नही कि रासौ में कहीं-कहीं प्राचीनता का आभास होता है। परन्तु इसका कारण रासौ की प्राचीनता नहीं, प्रत्युत इसका कारण तो चारण-भाटों की वह क्लासिक भाषा-शैली है जिसमें वह रचा गया है। राजस्थान में आज भी कई ऐसे चारण-भाट विद्यमान है जो इस तरह की भाषा-शैली में सैकड़ो छंद लिखकर दे सकते है। सच तो यह है कि वर्तमान रासौ में पाँच पंक्तियाँ भी ऐसी नहीं है जिनकी भाषा को बारहवीं शताब्दी की भाषा कही जा सके। बारहवीं शताब्दी के कई ग्रंथ अद्यावधि मिल चुके है जिनकी भाषा के साथ रासौ की भाषा की तुलना करके हमारे इस कथन की यथार्थता

---

51 एल. डी. पिल्ले; इण्डियन ऐफेमेरिस, पृ० ७२ (वोल्यूम ६)

52. ग्रियर्सन, दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान, पृ० ३। सी० वी० वैद्य; हिस्ट्री आव मेडीवल हिन्दू इण्डिया, वोल्यूम ३, पृष्ठ १८–२५। डा० श्यामसुन्दरदास; हिन्दी साहित्य (पंचम संस्करण), पृ० ९४। पं० रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३७। मथुराप्रसाद शर्मा; पृथ्वीराज रासो, पृ० १ (प्राक्कथन)। राहुल सांकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा, पृ० २८।

की परीक्षा की जा सकती है । सारांश, डा० ग्रियर्सन आदि विद्वानों का यह मत सर्वथा निराधार है ।

दूसरा मत । मूल रासो अपभ्रंश में रचा गया था और यह छप्पय छन्दों में था । वर्तमान रासो उसी का रूपान्तर है ।[53]

इस मत की पुष्टि में दो बातें कही गई हैं—(१) छप्पय छंदों में गुंफित पृथ्वीराज रासो की सं० १४०३ की एक हस्तलिखित प्रति मिली है जो अपभ्रंश में है (२) आचार्य श्री जिन विजय मुनि को चंद के चार फुटकर छप्पय मिले हैं जो अपभ्रंश भाषा में हैं और जिनमें से तीन कुछ विकृत रूप में वर्तमान रासो में भी विद्यमान हैं ।

(१) सं० १४०३ की मानी जानेवाली यह प्रति वही है जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है । वास्तव में इस तरह की कोई प्रति है ही नहीं ।

(२) मुनि जिन विजयजी को मिले चार फुटकर छप्पयों से भी पृथ्वीराज रासो का रचा जाना सिद्ध नहीं होता । हो सकता है कि चंद नामक किसी कवि ने पृथ्वीराज की जीवन-घटनाओं पर कुछ फुटकर छंद ही लिखे हों और यही अधिक संभव भी मालूम पड़ता है । क्योंकि इस तरह के फुटकर छंद अन्य राजाओं के भी भारी संख्या में मिलते हैं और यह राजस्थानी साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है । इस प्रकार की कविता को राजस्थान में 'साख री कविता' कहते हैं ।

एक बात और है । राजस्थान में ऐसी काव्य-परिपाटी रही है, और आज भी है, कि चारण-भाट आदि जातियों के लोग किसी इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति पर जो कोई ग्रंथ लिखते हैं उसमें स्वरचित छंदों के अतिरिक्त अपने पूर्ववर्ती कवियों के छंद भी बीच-बीच में जोड़ते जाते हैं । उदाहरण-स्वरूप

---

53. आचार्य जिन विजय मुनि; पुरातन प्रबन्ध-संग्रह, पृ० ८७ । कांति सागर; विशाल भारत, नवम्बर १९४६, पृ० २३१ । दशरथ शर्मा और मीनाराम रंगा; राजस्थान-भारती, भाग १, अंक५, अप्रैल सन् १९४६, पृ० ९३।

दौलतविजय (सं० १७६७-९०) के खुंमाण रासो[54] को लीजिये। इसमें बापा रावल से लेकर राणा राजसिंह तक के मेवाड़ के राजाओं का वर्णन है। महाराणा प्रताप के वर्णन में दौलतविजय ने स्वरचित छंदों के अलावा बीकानेर के प्रसिद्ध कवि राठौड़ पृथ्वीराज (सं० १६०६-५७) के भी ये दोहे रखे हैं :—

'पातल पाघ प्रमाण, साँची साँगाहर तणी।
रही सदा लग राण, अकबर सूं ऊभी अणी ॥
अकबर घोर अंधार, आथमिया हिंदू अवर।
जागै जागणहार, पोहरै राण प्रतापसी ॥

---

54. कुछ विद्वानों ने इसका रचनाकाल १० वीं शताब्दी विक्रमीय मान रखा है जो एक भ्रम है। वास्तव में यह ग्रंथ मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह के पुत्र महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के शासन-काल में लिखा गया था। इस बात का स्पष्ट उल्लेख इसके रचयिता ने इसके प्रथम खंड के अंतिम दोहे में किया है। वह दोहा इस प्रकार है—

विउ सांगउ अमरेस सुत सीसोदौ सुवियाण।
राणा पाट प्रतपँ रिधू, मन हेला महिराण ॥

महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) ने सं. १७६७ से सं. १७९० तक राज्य किया था। अतएव लगभग यही समय इस ग्रंथ की रचना का भी है।

एक दूसरी भ्रान्ति जो इसके विषय में फैली हुई है वह यह है कि इसे मेवाड़ के राजा खुंमाण के जीवनचरित का ग्रंथ समझा जा रहा है। यह भ्रान्ति कदाचित इस ग्रंथ के नाम के कारण हुई है जो कुछ अस्पष्ट है। मेवाड़ के नरेशों की 'राणा', 'महाराणा', सीसोदा, केलपुरा' 'चित्तौड़ा' आदि कई पदवियाँ हैं जिनमें एक 'खुंमाण' भी है जिसका अर्थ है—खुंमाण के वंशज। अतः इस ग्रंथ के रचयिता ने इसका 'खुंमाण रासो' नाम जो रखा है वह इसलिये नहीं रखा है कि इसमें राजा खुंमाण का वर्णन है, बल्कि खुंमाण के वंशजों का, राणाओं का, वर्णन होने से इसे यह नाम दिया गया है जो उचित भी है। क्योंकि इसमें राजा खुंमाण का ही नहीं, प्रत्युतः बापा रावळ से लेकर राणा राजसिंह (सं० १७०९–३५) तक के मेवाड़ के सभी राजाओं का वर्णन है। महाराणा राजसिंह के बाद के राणाओं—जयसिंह, अमरसिंह (द्वितीय) और संग्रामसिंह (द्वितीय)-का वर्णन भी इसमें था। परंतु इसकी जो हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है उसमें वह नहीं है। क्योंकि यह प्रति अपूर्ण है। इसके अंतिम दो-चार पन्ने खो गये हैं।

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो औझकै, जाण सिराणे साँप ॥[55]

इसका नवीन उदाहरण देखना हो तो बारहठ केसरीसिंह रचित 'प्रताप-चरित्र' का अवलोकन करना चाहिये। यह ग्रंथ सं० १९०० में लिखा गया था, पर इसमें दुरसाजी आदि दो-एक ऐसे कवियों के पद्य उद्धृत हैं जो आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले हुए हैं।[56]

अतएव मुनि जिन विजयजी को मिले अपभ्रंश के तीन छप्पयों को वर्तमान रासौ में देखकर यह निष्कर्ष निकालना कि मूल रासौ अपभ्रंश में रचा गया था, उचित नहीं है।

तीसरा मत। रासौ के चार रूपांतर (Recensions) मिलते हैं। (१) लघुतम (२) लघु (३) मध्यम और (४) वृहत्। वर्तमान रासौ चतुर्थ अथवा वृहत् रूपांतर है।[57]

यह मत अस्पष्ट है। कारण कि इसके प्रवर्तक इन रूपांतरों का ठीक-ठीक समय-निर्णय नहीं कर पाये हैं जो आवश्यक है। कम से कम लघुतम रूपान्तर का समय-निर्धारण तो होना ही चाहिये। तभी शेष रूपांतरों के काल आदि के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा जा सकता है। क्योंकि ये रूपांतर एक ही काल के भी हो सकते हैं और भिन्न-भिन्न कालों के भी। अभी तो स्थिति यह है कि जिस रूपांतर को लघु कहा जा रहा है वह पहले का (सं० १६५७)[58] है और लघुतम उसके बाद का (सं० १६६७)।[59]

दूसरी बात यह है कि जिन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इन रूपांतरों की स्थापना की गई है वही संदिग्ध है। बिना उचित अनुसंधान के उनका लिपिकाल निश्चित कर लिया गया है। उदाहरण के लिए लघुतम रूपांतर की प्रति को लीजिये जिसकी पुष्पिका में तिथि के साथ वार दिया

---

55. भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना की हस्तलिखित प्रति पत्र नं० १३६।

56. प्रतापचरित्र, पृ० २३५, २४५, २४७।

57. राजस्थान भारती अंक १, अप्रैल सन् १९४६, पृ० ३-४।

58. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग २०, अंक ३, सं० १९९६, पृ० २७५

59. राजस्थान भारती, अंक १, अप्रैल सन् १९४६, पृ० ४

हुआ नहीं है ।[60] फिर भी इसे प्रामाणिक मान लिया गया है और केवल इसी एक प्रति के आधार पर लघुतम रूपांतर की स्थापना कर दी गई है । यह नहीं सोचा गया कि यह रूपांतर रासो की किसी बड़ी प्रति का कटा-छँटा रूप भी हो सकता है ।

आगे इसकी विषय-वस्तु को देखिये । इसमें लगभग १३०० छंद हैं जिनसे पृथ्वीराज के जीवन की मुख्यतः चार घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है--पृथ्वीराज का जन्म, उनका संयोगिता से विवाह, उनकी शहाबुद्दीन से लड़ाई और उनकी तथा चंद की ग़ज़नी में आत्महत्या द्वारा मृत्यु ।

पृथ्वीराज का जन्म-काल इसमें भी सं० १११५ दिया हुआ है जो अशुद्ध है —

एकादस सद पंचदह, विक्कम साकु आनंद ।
तिहिं पुर रिपु जय हरण, भयो प्रिथिराज नरिंद ।।[61]

इसी प्रकार पृथ्वीराज का संयोगिता से विवाह होना, पृथ्वीराज और चंद का ग़ज़नी में आत्मघात करना आदि घटनाएँ भी इतिहास-संमत नहीं हैं ।

अतएव लघुतम रूपांतर से इस मत के पृष्ठपोषकों का यदि यह अभिप्राय है कि यह पृथ्वीराज के समय की रचना है तो यह उनकी स्पष्ट भूल है ।

लघु रूपांतर की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ कही जाती हैं जिनमें से अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर की दो प्रतियों का १७ वीं शती में लिखा जाना अनुमानित किया गया है ।[62] परन्तु जैसा कि डा० तेस्सितोरी ने निर्देश किया है ये प्रतियाँ १७ वीं शताब्दी की नहीं, किन्तु १८ वीं शताब्दी की हैं ।[63]

मध्यम और वृहत् रूपांतरों की किसी प्रति को सं० १७०० से पूर्व का नहीं कहा गया है । अतः उनके विषय में यहाँ कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है ।

---

60. सं० १६६७ वर्षे शाके १५३२ प्रवत्तमाने आसाढ़ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी लिखो महाराजाधिराज महाराजा श्रीकल्याणमल्लजी तत्पुत्र राजा श्री भागसी तत्पुत्र राजा श्री श्रीभगवानदासजी पठनार्थं श्रेय कल्याण श्रीशुभं भवतु ।

61. अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर की हस्तलिखित प्रति, पृ० ७

62. राजस्थान भारती, अंक १, अप्रैल सन् १९४६, पृ० ४

63. ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आव बार्डिक ऐंड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स, भाग १, पृ० ७३ और ८३ ।

राजस्थान में ऐसी प्रथा है कि चारण, भाट आदि जातियों के लोग अपने बच्चों को कंठस्थ कराने के लिये अथवा राजा-महाराजाओं को सुनाने के लिये प्रायः किसी बड़े ग्रंथ को काट-छाँटकर छोटा कर लिया करते हैं। चारण करणीदान का 'सूरजप्रकाश' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह साढ़े सात हजार छंदों का एक भारी ग्रंथ है। परन्तु इसे काटकर छोटा बना लिया गया है। इस छोटे रूप का नाम 'बिड़दसिणगार' है। इसमें केवल १२५ छंद हैं। दूसरा उदाहरण कविराजा मुरारिदान कृत 'जसवंत-जसोभूषण' का है। इसका लघु रूप 'जसवंतभूषण' नाम से प्रसिद्ध है।

अतः अनुमान होता है कि उपर्युक्त तीसरे मत के समर्थक जिनको रासो के रूपांतर (Recensions) मान रहे हैं वे वास्तव में रासो के रूपांतर नहीं, प्रत्युत बृहत् अथवा सम्पूर्ण रासो के ही कटे-छंटे रूप हैं जिनको अपनी-अपनी रुचि एवं आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर लोगों ने तैयार कर लिया है।

जो भी हो, पृथ्वीराज रासो से हमारा अभिप्राय यहाँ उस रासो से है जिसमें एक लाख छंद एवं ६९ सर्ग हैं, जो काशी नागरीप्रचारिणी सभा तथा बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित हुआ है और जिसकी कर्नल टॉड, कविराजा श्यामलदास, पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा प्रभृति विद्वानों ने ऊहा-पोह की है। यह सं० १७०० के आसपास बनाया गया है इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

विजयपाल रासो—ब्रजभाषा का एक दूसरा ग्रंथ जो अर्वाचीन होते हुए प्राचीन माना जा रहा है वह है[64] विजयपाल रासो जिसका थोड़ा-सा अंश उपलब्ध हुआ है। इसमें इसके रचयिता नल्लसिंह ने अपने को सिरोहिया शाखा का भाट और विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवंशी नरेश विजयपाल का आश्रित बतलाया है —

> भये भट्ट पृथु यज्ञ तैं, है सिरोहिया अल्ल।
> वृत्तेस्वर जदुवंस के, नल्ल पल्ल दल सल्ल॥

नल्लसिंह यह भी लिखता है कि उसके आश्रयदाता महाराज विजयपाल

---

64. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु विनोद (चतुर्थ संस्करण) भाग प्रथम, पृ० १५०। डा० रामकुमार वर्मा; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय संस्करण); पृ० २५२।

ने उसे हिंडौन नामक एक नगर, सात सौ गाँव और हाथी, घोड़े, ऊँट रत्नादि पुरस्कार में दिये थे :—

वीसा सौ गजराज, वाजि सोलह सौ माते।
दिये सातसौ ग्राम, सहर हिंडौन सुदाते॥
मुतर दिये द्वै सहस, रकम गिलमैं भरि अंवर।
कंचन रत्न जड़ाव, बहुत दीने जु अडंवर॥
कुल पूजित राव सिरोहिया, यादवपति निज सम कियव।
नृप विजयपाल जू विजयगढ़, साह ये जू सम्मपियव॥[65]

विजयपाल रासौ में महाराज विजयपाल के राज्यारोहण एवं उनकी दिग्विजय का वर्णन है :—

वैठनैं पाट विजयपाल वीर, अल्लीलखांन जीत्यौ गहीर।
इक लक्ष मीर दहवट्ट कीन, रो राखि रिद्धि सव खोसि लीन॥
साहावदीन गजनी हंकारी, तत्तारखांन को मान मारि।
तेगन अमोरि तूरान तोरि, ईरान पेसकस लीन मोरि॥
वरछीनि मारि वङ्कस उजारि, कंधार कोट सव दियो पारि॥
काविली किलङ्गी रोह जीति, राखिय नरेन्द्र हिंदवान रीति॥
वल्की भुखार सव जेर कीन, खुरसान खोसि हवसान लीन॥
आरवी रूम लटियाल कूटि, फिरंगाँन देस दुइ वार लूटि॥
चीनी स पेसकस अवर देस, राखियो धरम जादव नरेस॥
पाँचाल देस वयराट मारि, अजमेर सोम को गर्व गारि॥
मंडोवर परिहार डंडि, जोइया पारस खगनि खंडि॥
तौंवर अनंग दिल्ली सुमानि, थापियो थान सगपन्न जानि॥
ढूंढाहर हय खुरनि गाहि, पज्जूनि करत नित सेव चाहि॥
मेवात मुरस्थल मद्दि लीन, उतराध पंथ सव जेर कीन॥
इहि तेज तपन विजयपाल राज, जाहरां तेग जादव समाज[66]॥

इस दिग्विजय का समय नल्लसिंह ने सं० १०९३ वतलाया है।[67] ग्यारहवीं

---

65. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० २३
66. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० २५
67. वही; पृ० २८

शताब्दी में करौली में विजयपाल नाम के एक प्रतापी राजा हुए हैं जिनका करौली के अतिरिक्त उसके निकटवर्ती अलवर, भरतपुर, धौलपुर, आदि अन्य राज्यों के कुछ भागों पर भी अधिकार था।[68] परन्तु गजनी, ईरान, काबुल, दिल्ली, अजमेर, ढूंढ़ाड़ इत्यादि पर विजयपाल का एक-छत्र राज्य होने की जो बात नल्लसिंह ने कही है वह इतिहास-विरुद्ध और अतिरंजना है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सोमेश्वर, शहाबुद्दीन प्रभृति जिन ऐतिहासिक व्यक्तियों का नामोल्लेख नल्लसिंह ने ऊपर के पद्य में किया है वे विजयपाल के समकालीन ही नहीं थे। सोमेश्वर की मृत्यु सं० १२३६[69] में और शहाबुद्दीन की सं० १२६३[70] में हुई थी। अतः इतिहास के अनुसार विजयपाल के समय में और सोमेश्वर-शहाबुद्दीन के समय में क्रमशः १४३। १७० वर्षों का अन्तर है। यदि विजयपाल रासो का रचयिता नल्लसिंह महाराज विजयपाल का समकालजीवी होता तो इस प्रकार की भूलों का होना असंभव था।

विजयपाल रासो की भाषा भी ग्यारहवीं शताब्दी की भाषा नहीं है। उस समय इस तरह की भाषा का चलन भारतवर्ष में कहीं था ही नहीं। इसकी भाषा और शैली दोनों पर बूंदी के सुप्रसिद्ध चारण कवि सूरजमल के 'वंशभास्कर' (सं० १८९७) का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

वास्तव में यह ग्रंथ सं० १९०० में अथवा इससे भी कुछ बाद में रचा गया है। पर प्राचीन बताने के लिये इसके रचयिता ने नल्लसिंह का कल्पित परिचय इसमें जोड़ दिया है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

उपरोक्त विवेचन से साफ़ है कि हिंदी साहित्य के विद्वान व्रजभाषा के जिन ग्रंथों को सं० १५५० से पूर्व का मान रहे हैं वे यथार्थ में सं० १५५० के पूर्व के नहीं हैं। वस्तुतः व्रजभाषा में साहित्य-सृजन का प्रारंभ सं० १५५० के बाद से हुआ है और राजस्थान के व्रजभाषा के कवियों में पहला नाम भक्त शिरोमणि मीराँबाई का है।

(१) मीराँबाई—इनकी जीवनी इतिहास की एक उलझी हुई पहेली है। राजस्थान की ख्यातों आदि में कहीं इनका वृतान्त नहीं मिलता। हिंदी

---

68. दि रूलिंग प्रिंसेज, चीफ्स ऐंड लीडिंग पर्सनेजेज़ इन राजपूताना ऐंड अजमेर (छठा संस्करण), पृ० ११५।

69. कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० ४६

70. वही; पृ० ६०

के कुछ प्राचीन ग्रंथों व फुटकर छंदों में इनके विषय के कुछ उल्लेख देखने में आते हैं। पर वे इतने अपूर्ण और इतिहास की दृष्टि से इतने भ्रष्ट हैं कि उनके आधार पर कोई निश्चित मत स्थिर नहीं किया जा सकता। स्वयं मीराँबाई के पदों से इस विषय में विशेष सहायता नहीं मिलती। क्योंकि अभी तक यह निश्चय नहीं हो पाया है कि इनके रचे मानेजाने वाले पदों में कौन से पद असली और कौनसे प्रक्षिप्त हैं।

इतिहासकारों के अनुसार मीराँबाई मेड़ते के राठोड़ राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की इकलौती पुत्री थीं।[71] इनका जन्म सं० १५५५ के लगभग कुड़की नामक गाँव में हुआ था।[72] बाल्यावस्था ही में इनकी माता का देहान्त हो गया जिससे राव दूदाजी ने इन्हें अपने पास मेड़ते में बुला लिया और वहीं इनका पालन-पोषण हुआ।

इनका विवाह मेवाड़ के महाराणा साँगा (सं० १५६६-८४) के ज्येष्ठ कुँअर भोजराज के साथ सं० १५७३ में हुआ था। परन्तु विवाह के थोड़े ही समय बाद भोजराज का देहावसान हो गया और मीराँबाई विधवा हो गईं। मुंशी देवीप्रसाद के मतानुसार यह दुखःद घटना सं० १५७३ और सं० १५८८ के बीच में हुई थी।[73] पंडित गौरीशंकर-हीराचंद ओझा ने इसका समय सं० १५७५ और सं० १५८० के बीच में स्थिर किया है।[74]

भोजराज की मृत्यु से मीराँबाई का मन संसार से उचट गया और वह सत्संग तथा भजन-कीर्तन में अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगीं। परन्तु ससुरालवालों ने उनके इस तरह के कार्यों को अपनी वंश-मर्यादा के विरुद्ध समझा और उनमें बाधाएँ डालने लगे। इसलिए मीराँबाई चित्तौड़ से अपने पीहर मेड़ते चली गईं। इनका देहान्त सं० १६०३ में हुआ था।[75]

---

71. कविराजा श्यामलदास; वीरविनोद प्रथम प्रकरण, पृ० १०२। मुंशी देवीप्रसाद; मीरांबाई का जीवनचरित्र, पृ० ६। ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३५९। हरविलास सारड़ा; महाराणा सांगा, पृ० ९६।
72. हरविलास सारड़ा; महाराणा सांगा, पृ० ९६। ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३५९।
73. मीरांबाई का जीवनचरित्र; पृ० ७
74. उदयपुर राज्य का इतिहास; पृ० ३५९
75. मुंशी देवीप्रसाद; मीरांबाई का जीवनचरित्र, पृ० २७। ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३६०।

इससे आगे मीराँबाई के संबन्ध में जो अनेक कथाएँ लोगों में प्रचलित हैं और हिंदी, गुजराती, बँगला, मराठी, अंग्रेजी आदि के मुद्रित ग्रंथों में दृष्टि-गोचर होती हैं उनका कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं है। परन्तु उन पर भी विचार करना आवश्यक है। क्योंकि दोहराते-दोहराते ये कथाएँ अब एक तरह से इतिहास का अंग बन गई हैं।

राजस्थान में यह दंत-कथा प्रचलित है कि मीराँबाई मेवाड़ के महाराणा कुंभाजी (सं० १४९०-१५२५) की राणी थीं। कर्नल टॉड ने भी यही लिखा है[76] जिसका अनुसरण ठा० शिवसिंह[77], ग्रियर्सन[78] आदि कई प्रतिष्ठित विद्वानों ने किया है। मीराँबाई के नाम से प्रचलित कुछ पद भी ऐसे देखने में आते हैं जिनमें कुंभाजी का नाम आया है।[79] परन्तु इतिहास से इसकी पुष्टि नहीं होती। महाराणा कुंभाजी के ६० से अधिक शिलालेख मिले हैं।[80] इनमें कहीं मीराँबाई का नामोल्लेख नहीं है। न बाद के शिलालेखों में पाया जाता है। महाराणा कुंभाजी के कई राणियाँ थीं जिनमें से कुंभलदेवी और अपूर्व देवी के नाम क्रमशः चित्तौड़गढ़ के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति[81] (सं० १५१७) और गीतगोविंद की कुंभाजी-रचित 'रसिक प्रिया' टीका[82] में दिये हुए हैं। शेष के नाम भाटों की ख्यातों में मिलते हैं। परन्तु इनमें मीराँबाई का नाम नहीं है। यदि मीराँबाई जैसी प्रसिद्ध महिला कुम्भाजी की राणी होती तो उनका नाम अवश्य इनमें दिया जाता।

---

76. दि एनल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज आव राजस्थान पृ. २८९।
77. शिवसिंह-सरोज, पृ. १०२ (कवियों का जीवनचरित्र)
78. ग्रियर्सन; दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान, पृ० १२
79. "राणा कुंभाजी ओ जी, जीव रा संघाती जोया नाँय मिलेजी ॥"
80. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३१८
81. वेणीव्याजवलद्भुजंगललनालावण्यलीलालया
    सौंदर्यामृत दीर्घिका परिलसन्नालीक नेत्रद्वया।
    कुंभारंभकुचद्वयोपरिचलन्नामुक्तमुक्ता च या
    यस्यानंगकुतूहलक पदवी कुम्भल्लदेवी प्रिया ॥

    —श्लोक १८१

82. महाराज्ञी श्री अपूर्वदेवी हृदयाधिनाथेन महाराजाधिराज महाराज श्री कुम्भकर्ण महीमहेन्द्रेण .... ॥
    पृ० १७४ (नि. सा. प्रे, बंबई का संस्करण)

मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह के शासन-समय (सं० १८३४-८५) में कर्नल टॉड उदयपुर में आये और रहे थे और इतिहास विषयक बहुत-सी सामग्री महाराणा के द्वारा उनको प्राप्त हुई थी। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मीरांबाई के सम्बन्ध में टॉड साहब ने महाराणा से कोई पूछ-ताछ नहीं की। यदि वे पूछ-ताछ करते तो उनको सही बात का पता अवश्य लगता। क्योंकि महाराणा भीमसिंह को मीरांबाई का बहुत कुछ वृत्तान्त मालूम था जैसा कि रामदान लालस कृत 'भीमप्रकाश' नामक ग्रंथ से विदित होता है। यह ग्रंथ महाराणा भीमसिंह के अनुरोध से सं० १८५६ में लिखा गया था और महाराणा को सुनाया गया था। इसमें एक स्थान पर जहाँ महाराणा सांगा के पुत्रों की नामावली दी गई है वहाँ भोजराज-मीरांबाई का स्पष्ट उल्लेख है :—

> भोजराज जेठो अभंग, कुँवरपदे व्रत कीध।
> मेड़तणी मीराँ महळ, प्रेमी भगत प्रसीध ॥[83]

किसी भी इतिहासकार के लिए यह एक बहुत बड़ा संकेत है। परन्तु कर्नल टॉड को इसका लाभ नहीं मिला। महाराणा कुंभा एक प्रतिभाशाली विद्वान और साहित्यकार थे। ऐसे सुयोग्य राजा की राणी भी विदुषी होनी चाहिये यह अनुमान लगाकर उन्होंने मीरांबाई का संबन्ध कुँभाजी से जोड़ दिया और उन्हें उनकी राणी लिख दिया।

वास्तविक बात यह है कि महाराणा कुंभाजी की राणी होना तो दूर रहा मीरांबाई उनकी समकालीन ही नहीं थीं। कुंभाजी का देहांत सं० १५२५[84] में और मीरांबाई का जन्म सं० १५५५ में हुआ था।[85] अर्थात् महाराणा कुंभाजी की मृत्यु के ३० वर्ष बाद मीरांबाई पैदा हुई थीं।

इसी तरह की कुछ दंतकथाएँ और भी प्रचलित हैं। जैसे (१) मुगल सम्राट अकबर अपने प्रसिद्ध गवैये तानसेन के साथ मीरांबाई के दर्शन करने को आया था (२) अपने परिवारवालों से दुखी होकर मीरांबाई ने गोस्वामी तुलसीदास को एक पत्र लिखा था। परन्तु इनमें काल-दोष स्पष्ट है। मीरां-

---

83. सेठ सूरजमल-नागरमल पुस्तकालय कलकत्ता की हस्तलिखित प्रति, पृ० ३।

84. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३२२

85. वही; पृ० ३५८

बाई की मृत्यु के समय अकबर (जन्म सं० १५६९) केवल चार वर्ष का बालक था और गद्दी पर ही नहीं बैठा था। गोस्वामी तुलसीदास को पत्र लिखनेवाली दंतकथा का आधार 'विनयपत्रिका' का एक पद है। परन्तु 'विनयपत्रिका' की रचना गोस्वामीजी ने सं० १६५३ में की थी[86] जब मीराँबाई को मरे ५० वर्ष हो गये थे।

कहा जाता है कि मीराँबाई का साधु-संतों में बैठना-उठना और उनके साथ भजन-कीर्त्तन करना इनके देवर राणा विक्रमादित्य (सं० १५८८–९३) को पसंद नहीं आया और उन्होंने विष-प्रयोग द्वारा मीराँबाई को मार डालने की चेष्टा की जो असफल रही। भक्तमाल आदि ग्रंथों में इस बात का उल्लेख है और स्वयं मीराँबाई ने अपने पदों में स्थान-स्थान पर इस दुष्कर्म का वर्णन किया है :—

"जहर का प्याला भेजिया रे दीजो मीराँ हाथ।"
"राणाजी भेज्यो विष का प्याला सो अमृत कर दीज्यो जी।"
"विप को प्यालो राणाजी मेल्यो द्यो मेड़तणी नै प्याय।"
"राणा विप को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई।"
"मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हठ कर पी गई जहर।"
"राणाजी तैं जहर दियो मैं जाणी।"

मुंशी देवीप्रसाद,[87] डा० ओझा[88] आदि इतिहासकारों ने भी इस घटना को सही माना है। अतः यह सर्वथा निराधार नहीं है, यद्यपि अतिशयोक्ति पूर्ण अवश्य है।

हिंदुओं के घरों में विधवा स्त्रियों की और विशेषकर बालविधवाओं की कैसी दुर्दशा होती है और उनके साथ कैसा दुर्व्यवहार किया जाता है यह बात किसी से छिपी हुई है नहीं है। अतः संभव है कि विधवा होने के नाते मीराँबाई को भी कुछ कष्ट-यातनाएँ भोगनी पड़ी हों अथवा विष-प्रयोग द्वारा मार डालने की चेष्टा हुई हो। परन्तु तीन बार विष पीकर भी मीराँबाई के जीवित रह जाने की जो बात कही जाती है उसमें कोई तथ्य नहीं है। जान पड़ता है, राणा ने मीराँबाई को जहर देने का इरादा किया था

---

86. डा० माताप्रसाद गुप्त; तुलसीदास (द्वितीय संस्करण) पृ० २५४
87. मीराँबाई का जीवनचरित्र; पृ० ११-१२
88. उदयपुर राज्य का इतिहास; पृ० ३६०

पर कार्य रूप में परिणत होने के पूर्व ही उनके इस इरादे का भंडा-फोड़ हो गया और जहर नहीं दिया जा सका जिससे मीराँबाई बच गईं।

मीराँबाई के कोई गुरु थे अथवा नहीं और थे तो कौन थे, यह एक विवाद ग्रस्त विषय है। जनश्रुति के अनुसार संत रैदास इनके गुरु थे। मीराँबाई के नाम से प्रचलित कुछ पदों में भी इस बात का संकेत है:—

मीराँ ने गोविंद मिल्या जी गुरू मिलिया रैदास।"
"गुरु म्हारै रैदास सरनन चित सोई।"
"रैदास संत मिले मोहि सतगुरु दीन्ह सुरत सहदानी।"
"गुरु रैदास मिले मोहि पूरे धुर से कलम भिड़ी।"
"गुरु मिलिया रैदासजी दीन्ही ज्ञान की गुटकी।"

चित्तौड़ के क़िले पर कुंभस्वामी (कुंभश्याम) का एक भव्य मंदिर है जिसको लोग 'मीराँबाई का मंदिर' कहते हैं। इसी के पास आठ खंभों की एक छोटी-सी छतरी है जो मीराँबाई के गुरु की छतरी मानी जाती है और 'रैदास की छतरी' के नाम से प्रसिद्ध है।

नाभादास कृत भक्तमाल के अनुसार संत रैदास स्वामी रामानंद के शिष्य थे। रामानन्द का जन्म सं० १३५६ में हुआ था।[89] रैदास अपने गुरु रामानन्द से आयु में छोटे ही रहे होंगे। परन्तु यदि इन दोनों की आयु बराबर मान ली जाय और यह भी मान लिया जाय, जैसा कुछ लोगों ने माना है, कि रैदास १२० वर्ष की अवस्था में स्वर्गवासी हुये थे[90] तो भी उनका और मीराँबाई का समसामयिक होना सिद्ध नहीं होता। इससे उनका निधन काल सं० १४७६ के आसपास ठहरता है जो मीराँबाई के जन्म सं० १५५५ से ७९ वर्ष पहले का है। अतः मीराँबाई को रैदास की शिष्या मानना अनुचित है।

मीराँबाई एक राज-घराने की महिला थीं। इनके ससुर राणा साँगा बड़े प्रतापी राजा थे जिनका लगभग सारे राजस्थान पर प्रभुत्व था।[91] ऐसे महान् राजा के घराने से अपना सम्पर्क बतलाकर अपने पंथ को लोकप्रिय बनाने के लिये रैदासी-पंथियों ने स्वरचित पदों में रैदास का नाम जोड़कर उनको

89. डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल; हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ० ४१
90. डा० रामकुमार वर्मा; हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ० ३२२।
91. कर्नल टाड, दि एनल्स एंड एंटिक्विटीज आव राजस्थान (प्रथम संस्करण), पृ० ३००।

मीराँ के नाम से प्रचलित कर दिया प्रतीत होता है। इसी तरह की चेष्टा वल्लभ-संप्रदायवालों ने भी की है, जैसा कि '८४ वैष्णवों की वार्ता'[92] और '२५२ वैष्णवों की वार्ता'[93] नामक ग्रंथों से विदित होता है। पर इन वातों पर वही लोग विश्वास कर सकते हैं जिनको मेवाड़ की राज-परम्पराओं और मर्यादाओं का ज्ञान नहीं है।

श्री ब्रजरत्नदास ने रघुनाथदास[94] को और श्रीवियोगी हरि ने जीव गोस्वामी को[95] मीराँबाई का गुरु माना है। परन्तु ये केवल अनुमान मात्र है। इनके पीछे कोई तर्क अथवा प्रमाण नहीं है। इसलिए इन पर विचार करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

संत कबीर, दादू इत्यादि के समान मीराँबाई किसी पंथ की प्रवर्त्तक नहीं थीं। न उनका किसी सम्प्रदाय विशेष से कोई संबन्ध था। वह एक सीधी-सादी सद्‌गृहस्थ भक्त महिला थीं जो भगवान् का भजन-कीर्त्तन कर अपने वैधव्य के दिन व्यतीत करती थीं और भगवान को ही अपना सर्वस्व समझती थीं। अतएव किसी व्यक्ति विशेष को इन्होंने अपना गुरू बनाया हो ऐसा अनुमान नहीं होता।

मीराँबाई केवल भक्त ही न थीं, कवि भी थीं। इनके रचे पाँच ग्रंथ कहे जाते हैं—(१) गीतगोविंद की टीका,[96] (२) नरसीजी रो माहेरो,[97] (३) सत्यभामाजी नुं रुसणुं,[98] (४) राग सोरट,[99] और (५) राग गोविंद।[100]

(१) गीतगोविंद की टीका। यह ग्रंथ भ्रम से मीराँबाई के नाम से विख्यात हो गया है। वास्तव में यह मीराँबाई का लिखा हुआ नहीं है, महा-

---

92. वार्ता नं० ४१, नं० ५४ और नं० ६२।

93. वार्ता नं ५५ और नं० ४७।

94. मीराँ-माधुरी; पृ० ७६ (भूमिका)

95. वही; पृ० ७६

96. मुंशी देवीप्रसाद; राजपूताना में हिंदी पुस्तकों की खोज, पृ० ५

97. वही; पृ० ६

98. केशवराम-काशीराम शास्त्री; कविचरित, पृ० १८७

99. मुंशी देवीप्रसाद; राजपूताना में हिंदी पुस्तकों की खोज, पृ० १७

100. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३६०।

राणा कुंभाजी का रचा हुआ है। इस बात का चित्तौड़गढ़ के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में स्पष्ट उल्लेख है। अतः[101] इस सम्बन्ध में किसी प्रकार के संदेह अथवा मतभेद की गुंजाइश नहीं है।

(२) नरसीजी रो माहेरो। इस ग्रंथ को मीरांबाई का बनाने की भूल पहले-पहल मुंशी देवीप्रसाद ने की थी जिसकी पुनरावृत्ति अभी तक हो रही है। इसकी तीन-चार हस्तलिखित प्रतियों का पता है। इनमें कहीं मीरां-रचित होने का संकेत नहीं है। ग्रंथ में दो एक स्थलों पर 'मीरां उवाच' लिखा हुआ है और कदाचित् इसी लिये इसे मीरांबाई की रचना मान लिया गया है। परन्तु ग्रंथ प्रश्नोत्तर व संवाद के रूप में लिखा होने से ऐसा हुआ है। इसमें इतर स्थानों पर 'नरसी उवाच', 'रामानन्द उवाच', 'सीता उवाच' 'श्रीरंगो उवाच' इत्यादि भी लिखा मिलता है। यह व्रजभाषा की एक बहुत सामान्य कोटि की रचना है। इसकी भाषा बहुत निर्जीव एवं कविता नीरस है और मीरांबाई की भाषा-कविता से सर्वथा भिन्न है। किसी दूसरे कवि की कृति है। रचना इस ढंग की है :—

कहै त्रिया सुन हो मम बानी। देखि जाय नृग की रजधानी॥
जती सती देखिय भू केरा। नमैं पाय जग लियौ बसेरा॥
हंस वंस सब फेर बुलावा। करि दृढ़ मति नृपती गृह धावा॥
सत अरु साथ जुत्रिया समेता। आये नृप आराम निकेता।
मंत्री देखि मलिन मन मांहीं। हंस धान घर कबहुं न खाहीं॥
नृप को जाइ दंडवत कीना। देखे नृप सब सचिव मलीना॥
पूछी नृप सब कारन काहा। हंस भक्ष गृह नहिं नरनाहा॥
सत अरु साथ हंस चलि आये। त्रिया सहित सोभित अधिकाये॥[102]

(३) सतभामाजी नुं रूसणुं। यह इक्कीस चरणों का एक छोटा-सा लोक गीत है। 'बृहत् काव्यदोहन' में प्रकाशित हो चुका है। इसकी भाषा गुजराती है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के सरस्वती भंडार में भी है जो सं० १८३३ की लिखी हुई है। इसके अंतिम चरण में 'मीरां' शब्द आया है:—

---

101. येनाकारि मुरारि संगतिरसप्रस्यंदिनी नन्दिनी
वृत्तिव्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविंदके।
श्रीकर्णाटकमेदपाटसुमहाराष्ट्रादिके योदय-
द्वाणीगुंफमयं चतुष्टयमयं सन्नाटकानां व्यधात्॥

102. सरस्वती भंडार, उदयपुर, की हस्तलिखित प्रति, पृ० ८

रूसणुं गाऊँ रे रूड़ी रीत सुं रे' लोल
सतभामा ना मोआ छे वाल्हा मन जो ।
मीरां ना स्वामी मंदिर पधारिया रे लोल
सतभामा नुं जीवन करयूं धन धन जो ॥ २१ ॥[103]

'मीरां ना स्वामी' से अभिप्राय यहाँ श्रीकृष्ण से है। संस्कृतादि के ग्रंथों में श्रीकृष्ण के लिये जिस प्रकार 'राधारमण' 'गोपीवल्लभ' 'राधास्वामी' इत्यादि शब्द प्रयुक्त हुए है उसी प्रकार यहाँ 'मीरां ना स्वामी' का प्रयोग श्रीकृष्ण के लिये हुआ है। अतएव मीरां शब्द को देखकर इसे मीरांबाई की रचना मान लेना अनुचित है। कारण, इसकी भाषा मीरां-कालीन भाषा नहीं है। वह उन्नीसवीं शताब्दी की गुजराती है।

उदयपुर के सरस्वती भंडार की जिस गुटकाकार प्रति में यह रचना मिलती है उसी में 'राधाजी नुं रूसणुं' नाम की एक दूसरी रचना भी है। उसमें उसके रचयिता का नाम 'वल्लभ' दिया हुआ है :—

वल्लभ वैष्णव जन नो दास के हरिचरणे मले रे लोल ।[104]

इस ग्रंथ की भाषा-शैली उपरोक्त 'सतभामाजी नुं रूसणुं' की भाषा-शैली से पूर्णतः मिलती है। इसलिए अनुमान होता है कि 'सतभामाजी नुं रूसणुं' का कर्त्ता भी वल्लभ ही है।

(४) राग सोरठ। यह स्वतंत्र रचना नहीं है। राग सोरठ में गाने योग्य मीरांबाई के पाँच-सात पदों का संग्रह मात्र है।

(५) राग गोविंद। यह भी मीरांबाई के कुछ फुटकर पदों का संग्रह है जिसे 'राग गोविंद' नाम दे दिया गया है।

मीरांबाई ने केवल फुटकर पद लिखे हैं जिनके छोटे-बड़े लगभग तीस संग्रह हिंदी, गुजराती, बंगला आदि भाषाओं में प्रकाशित हुए हैं। परन्तु इनमें सभी पद मीरांबाई के रचे हुए नहीं हैं। मीरां के भक्तों तथा मुद्रक-प्रकाशकों ने कुछ पद नये बनाकर और कुछ कबीर, सूर, तुलसी, दादू, नानक आदि के इनमें मिला दिये ह। दुर्भाग्य से मीरांबाई के पदों की कोई प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति अभी तक प्राप्त नहीं हुई है जिसके आधार पर यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सके कि अधुना प्रचलित पदों में इतने पद मीरांबाई के हैं और इतने नहीं है। बंगीय हिंदी परिषद्, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित

103. हस्तलिखित प्रति, पृ० २१५
104. वही! पृ० २२८

'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' में उसके एक संपादक महोदय ने एक प्राचीन प्रति का उल्लेख किया है जिसे उन्होंने सं० १६४६ की लिखी हुई बतलाया है।[105] परन्तु इसका कोई प्रमाण उन्होंने नहीं दिया। भूल-भूलैयाँ की तरह एक विचित्र परिस्थिति में इस प्रति के मिलने का वर्णन किया गया है जो मन में संदेह उत्पन्न करता है। इस प्रति में कुल ६६ पद हैं। इनमें से एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

म्हारो मण साँवरो णाम रट्याँ री।
साँवरो णाम जपां जग प्राणी कोट्यां पाप कट्यां री।
जणम जणम री खता पुराणी णमां स्याम मट्याँ री॥
कणक कटोराँ इम्रत भर्याँ पीवताँ कूण नट्या री।
मीराँ रे प्रभु हरि अविणासी तण मण स्याम नट्यारी॥[106]

इस पद की भाषा न तो मीराँबाई के समय की राजस्थानी भाषा है, न ब्रजभाषा। राजस्थानी भाषा में प्रायः संस्कृत शब्दों के 'न' को 'ण' में बदल दिया जाता है। परन्तु कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनमें इस तरह का परिवर्तन नहीं होता। उपरोक्त पद में आये हुए मन, जनम, कनक, तन इत्यादि शब्द इसी श्रेणी के हैं। इसके अतिरिक्त शब्द के आदि का 'न' तो राजस्थानी में कभी 'ण' में बदलता ही नहीं। परन्तु इस पद में 'नाम' 'नमा' आदि को 'णाम' 'णमा' आदि कर दिया गया है। व्याकरण संबन्धी त्रुटियाँ भी इस पद में अनेक हैं। मालूम पड़ता है, राजस्थानी भाषा से अनभिज्ञ किसी व्यक्ति ने यह सारा जाल रचा है। यदि मीराँबाई ने इस तरह की कर्णकटु और भद्दी भाषा में कविता की होती तो वह कदापि इतनी लोकप्रिय नहीं हो पाती। यह प्रति सं० १६४६ की हो नहीं सकती। अतः इसकी भाषा को मीराँबाई की मूल भाषा मानना भारी भूल है।

मीराँबाई के पद अधिकतर हिंदी-गुजराती के भक्त कवियों के पदों के साथ संगृहीत मिलते हैं। इस समय इनके नाम से लगभग पौने पाँच सौ पद भारतवर्ष में प्रचलित हैं। परन्तु इनमें कई पद प्रक्षिप्त हैं। गुजराती भाषा के पद तो सभी संदिग्ध हैं। क्योंकि मीराँबाई का द्वारका में प्राणान्त होने की जो बात कही जाती है[107] और जिसके आधार पर

---

105. मीराँ-स्मृति-ग्रंथ, पदावली परिचय, पृ० घ

106. वही; पृ० १६

107. ग्रियर्सन; दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान, पृ० १२। मुंशी देवीप्रसाद मीराँबाई का जीवनचरित्र, पृ० २७।

मीरांबाई को गुजराती पदों का रचयिता माना गया है वह लोगों की केवल कपोल-कल्पना है । उसके लिये कोई सुदृढ़ ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है । शेष पदों में भी प्रक्षिप्त पदों की संख्या बहुत है । परन्तु मीरांबाई के प्रत्येक पद पर उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप लगी हुई है और इसलिये उनके वास्तविक पदों को पहचान लेना असंभव नहीं है, यद्यपि कुछ कठिन अवश्य है । अनुमानतः मीरां के पदों की संख्या २२५।२५० है।

मीरांबाई ने ब्रजभाषा और राजस्थानी दोनों में कविता की है। इनके कुछ पद ब्रजभाषा में और कुछ राजस्थानी में हैं। इनकी भाषा सरल और भावोपयोगी है । इनके शब्द-व्यवहार में बड़ी कोमलता और स्वाभाविकता है । वाह्याडंवर और शाब्दिक चतुराई के फेर में न पड़कर इन्होंने सीधी बात को सीधे ढंग से कहा है जो मस्तिष्क से पहले हृदय को स्पर्श करती है ।

मीरां प्रेम और भक्ति की दीवानी थी । आध्यात्मिक आकुलता और भक्त-हृदय का अटल विश्वास इनकी कविता में अपूर्व रूप से झंकृत है । साहित्यिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो इनकी कविता कोई बहुत ऊंची नहीं है । परन्तु सरल, स्वाभाविक तथा भक्तिभाव पूर्ण होने से एक भक्त-हृदय को मुग्ध करने में वह फिर भी अप्रतिम है । कृष्ण-भक्ति में कवि चूड़ामणि भक्तवर सूरदास की तुलना किसी दूसरे से नहीं हो सकती । सूर सचमुच हिंदी साहित्याकाश के 'सूर' हैं। उनके 'सूरसागर' में प्रेम-रस की एक बाढ़-सी आ गई है और गोपियों के मुंह से जो पद उन्होंने कहलवाये हैं उनमें उन्होंने नारी-हृदय का ऐसा मधुर, मनोवैज्ञानिक एवं कलात्मक विश्लेषण किया है कि देखकर चकित ही रह जाना पड़ता है । संख्या भी सूर के पदों की कम नहीं । परन्तु इतना सब होते हुए भी मीरां के पदों में जो रस है, मीठा-सा दर्द है, वह उनमें भी नहीं आ पाया है ।

मीरां की भक्ति दंपति-भाव की थी । अतः इनकी कविता में भक्ति और शृंगार का सुन्दर संयोग हुआ है । परन्तु इनका शृंगार बहुत मर्यादित है । उसमें न तो विद्यापति की सी अश्लीलता है, न सूर की सी उच्छृंखलता और न विहारी की सी मादकता । उसमें पवित्रता है और साथ ही चिरंतन प्रेम की अनोखी झांकी भी है । इसी लिये निष्ठुर काल के थपेड़े भी उसके सौंदर्य को, उसकी कांति एवं प्रभाव को, मंद अथवा मलिन नहीं कर सके हैं।

(२) कृष्णदास पैहारी—ये जयपुर के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान गलता के महन्त

और जाति के दाहिमा ब्राह्मण[108] थे। ये स्वामी रामानन्द जी के शिष्य अनन्तानंद के चेले थे।[109] केवल दूध पर जीवन-निर्वाह करने से इसलिये पैहारी कहलाये। ये आमेर के महाराज पृथ्वीराज की रानी बालाबाई के गुरु थे।[110] महाराज पृथ्वीराज ने सं० १५५९ से सं० १५८४ तक राज किया था।[111] अतः लगभग यही समय कृष्णदास का भी समझना चाहिये।

कुछ विद्वानों ने भ्रमवश अष्टछाप के कृष्णदास अधिकारी और इन कृष्णदास पैहारी को एक व्यक्ति मान रखा है।[112] परन्तु वास्तव में ये दो भिन्न व्यक्ति थे जैसा कि नाभादास कृत भक्तमाल[113], ८४ वैष्णवन की वार्ता[114] इत्यादि ग्रंथों से विदित होता है।

पैहारीजी एक योगसिद्ध महात्मा एवं तेजस्वी ब्रह्मचारी थे। इनके योग-चमत्कार की अनेक कथाएँ लोगों में प्रचलित हैं। इनका समावेश प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका में भी हुआ है।[115] परन्तु इनका ऐतिहासिक मूल्य नगण्य है। कहा जाता है कि इन्होंने महाराज पृथ्वीराज के गुरु कापालिक संप्रदाय के योगी चतुरनाथ को शास्त्रार्थ में पराजित किया था जिसके फल-स्वरूप इनको गलता की गद्दी प्राप्त हुई थी।[116]

कृष्णदास पैहारी संस्कृत एवं भाषा के अच्छे पंडित और प्रतिभावान कवि थे। ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। इनके नाम से तीन ग्रंथ प्रचलित हैं—ब्रह्मगीता, प्रेमसत्त्वनिरूप और जुगलमानचरित[117]। इनमें प्रथम दो ग्रंथ निश्चित रूप से इन्हीं के हैं क्योंकि उनमें कृष्णदास के गुरु

---

108. नाभादास; भक्तमाल, छप्पय ३९।

109. वही; छप्पय ३८।

110. हितैषी; दिसम्बर-जनवरी सन् १९४१-४२ में प्रकाशित स्वर्गीय पुरोहित हरनारायणजी का 'जयपुर के कवि-कोविद' शीर्षक लेख, पृ० ५४१।

111. हनूमान शर्मा; जयपुर का इतिहास, पृ० ३६ और ४१।

112. ग्रियर्सन; दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान, पृ० २१। डा० रामकुमार वर्मा; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय संस्करण) पृ० ६७७।

113. छप्पय नं० ३८, ३९ और ८१।

114. ८४ वैष्णवन की वार्ता में कृष्णदास की वार्ता, प्रसग ६-९।

115. श्री वेङ्कटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई, से प्रकाशित संस्करण, पृ० ७१।

116. हनूमान शर्मा; जयपुर का इतिहास, पृ० ३७।

117. हितैषी; दिसम्बर-जनवरी सन् १९४१-४२, पृ० १५६।

आदि का नाम दिया हुआ है और उनका वर्ण्य विषय भी रामानंदी संप्रदाय के सिद्धांतों से मेल खाता है। परन्तु तीसरा ग्रंथ 'जुगलमानचरित' संदिग्ध है। इसमें राधाकृष्ण की प्रेम-लीला का वर्णन है। कृष्णदास पैहारी रामानंदी संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों में से थे और उस समय पैदा हुए थे जब कि वल्लभ सम्प्रदाय और रामानन्दी संप्रदाय के आचार्य–अनुयायी लोगों में अपना-अपना प्रभाव बढ़ानें की एक होड़-सी लगी हुई थी। ऐसी स्थिति में रामोपासक कृष्णदास पैहारी ने कृष्ण-लीला संबन्धी यह ग्रंथ रचा हो ऐसा विश्वास नहीं होता। यह सर्वथा असंभव तो नहीं है पर कुछ अस्वाभाविक अवश्य है। अतः संभव है कि यह ग्रंथ अष्टछाप के कृष्णदास अधिकारी अथवा कृष्णदास नाम के किसी दूसरे कृष्ण-भक्त कवि का रचा हुआ हो। परन्तु इस विषय में दृढ़तापूर्वक कुछ कहना कठिन है।

कृष्णदास की रचना मधुर और कोमल है। परन्तु उसमें काव्य-तत्व की अपेक्षा बुद्धि-तत्त्व अधिक पाया जाता है। इसलिये वह मन की अपेक्षा मस्तिष्क को अधिक स्पर्श करती है। इनके कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं। इन पर भी इनके तत्वज्ञान की गहरी छाप लगी हुई है।

(३) कील्हजी–ये कृष्णदास पैहारी के शिष्य थे[118]। इनके पिता का नाम सुमेरदेव था जो गुजरात के सूबेदार थे।[119] ये बड़े भगवद्‌भक्त और सांख्य योग आदि के सुज्ञाता थे। इनको 'भगवान श्रीरामचन्द्र का बड़ा इष्ट था और दिन-रात रामनाम की रट लगाया करते थे। ये भीष्म पितामह के समान मृत्युंजय थे पर सरल एवं निरभिमान इतने थे कि अपने मिलनेवालों से पहले झुककर प्रणाम करते थे। प्रियादास ने लिखा है कि अंत समय में इन्होंने सब संत समाज को एकत्र किया और सब का सम्मान आदि कर उनके सामने ब्रह्माण्ड से प्राण त्याग शरीर छोड़ा।[120]

कील्हजी का रचा हुआ कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिलता। थोड़े से फुटकर पद मिलते हैं जिनसे इनकी अखंड भगवद्‌भक्ति और सहृदयता का अच्छा परिचय मिलता है। इनकी भाषा ढूंढाड़ी से प्रभावित व्रजभाषा है। इनके पद सद्भावोत्पादक एवं विचार-सौंदर्य से ओत-प्रोत है और मानव हृदय में आध्यात्मिक स्फूर्ति का संचार करते है।

---

118. नाभादास; भक्तमाल, छप्पय ४०।

119. वही; छप्पय ४१।

120. श्री वेंकटेश्वर यंत्रालय से प्रकाशित संस्करण, पृ० ७१–७२।

(४) अग्रदास—ये कृष्णदास पैहारी के शिष्य और कील्हजी के गुरु-भाई थे। कील्हजी की भांति ये भी भगवान श्रीरामचन्द्र के परम भक्त और सरल प्रकृति के जीव थे। गुरुभक्ति इनमें इतनी थी कि अपने गुरु कृष्णदास के निवास-स्थान, उद्यान आदि की सफाई स्वयं अपने हाथों से करते थे यद्यपि इस कार्य के लिये नौकर-चाकर नियत थे।[121] स्वर्गीय पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अग्रदास का सं० १६३२ तक जीवित रहना बतलाया है[122] जिसका कोई प्रमाण उन्होंने नहीं दिया। परन्तु प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका से विदित होता है कि ये और भी आगे तक विद्यमान थे। अपनी इस टीका में प्रियादास ने आमेर के महाराजा मानसिंह और अग्रदास की भेंट का वर्णन किया है।[123] महाराजा मानसिंह ने सं० १६४६ से सं० १६७५ तक राज्य किया था। यदि उनके शासन-काल के प्रथम वर्ष में ही यह भेंट हुई हो तो भी सं० १६४६ तक अग्रदास का विद्यमान होना स्पष्ट है। सत्य तो यह है कि अग्रदास सं० १६३२ तक ही नहीं, वरन् सं० १६४६ के पश्चात् भी लगभग १५ वर्ष तक विद्यमान थे। उनकी रचनाओं से भी इस बात का समर्थन होता है। इनके 'विश्वब्रह्मज्ञान' और 'रागावली' ग्रंथों में उनका रचनाकाल दिया हुआ है जो क्रमशः सं० १६४७ और सं० १६६० में लिखे गये थे[124]। अतः सं० १६३२ तक अग्रदास का जीवित रहना जो बतलाया जाता है वह निर्मूल है। वास्तव में ये सं० १६६० तक विद्यमान थे।

अग्रदास ने छोटे-बड़े कुल मिलाकर नौ ग्रंथ बनाये जिनके नाम निम्न हैं :—

(१) श्रीरामभजन-मंजरी (२) कुंडलिया (३) हितोपदेश भाषा (४) उपासना बावनी (५) ध्यानमंजरी (६) पद (७) विश्वब्रह्मज्ञान (८) रागावली और (९) रामचरित के पद।

अग्रदास रामोपासक भक्त थे। इन्होंने रामभक्ति पर विशेष लिखा है। इनकी भाषा सीधी-सादी चलती ब्रजभाषा है जिसमें राजस्थानी के शब्द मुहावरों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। इनकी कविता मधुर, भावमयी और

---

121. नाभादास; भक्तमाल, छप्पय ४२।

122. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १२६।

123. श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित संस्करण, पृ० ७२-७३।

124. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु-विनोद, प्रथम भाग पृ० ३२२।

मौलिकतापूर्ण है। उसमें प्रवाह है, कान्ति है,
भी है।

(७) नाभादास—ये अग्रदास के शिष्य थे
नारायणदास था। इनकी जाति के संबन्ध में मत
क्षत्रिय और कोई डोम बतलाते हैं। भक्तमाल के टी
हनुमानवंशी लिखा है :—

"हनुमान वंश ही में जनम प्रसि
भयो दृगहीन सो नवीन वान

'हनुमान' का अर्थ स्वर्गीय श्रीराधाकृष्णदास
अर्थ के आधार पर उन्होंने नाभादास की जाति
अनुसरण हिंदी के अन्य कई विद्वानों ने किया है
हैं कि "मारवाड़ी भाषा में 'डोम' शब्द का अर्थ 'ह
टीकाकारों ने इन्हें हनुमानवंशी लिखा है।[126]"
किस आधार पर लिख दी। राजस्थान में 'डोम' का
में नहीं आया, न मारवाड़ी भाषा के किसी कोष
देखने में आता है।

राजस्थान-काठियावाड़ में क्षत्रियों के कुछ ऐसे
को वानरवंशी कहते हैं। अतएव बहुत संभव
किसी वानरवंशी क्षत्रिय परिवार में हुआ हो जिस
दासने हनुमानवंशी शब्द का प्रयोग किया है।

नाभादास जन्मांध थे। बचपन में इनके पि
था। जब ये पांच वर्ष के थे तब देश में घोर दुर्भि
इनका भरण-पोषण न हुआ और वह इन्हें वन
कील्हजी और अग्रदासजी घूमते-घामते उधर जा
देखकर उनके मन में दया आ गई और उठाकर
में ले गये। इन संतों की कृपा से नाभादास की
तभी से ये उनके शिष्य बन गये और उनके साथ

हिंदी साहित्य के विद्वानों ने नाभादास का रचना काल सं० १६४२ – १७०० निश्चित किया है जो उचित प्रतीत होता है। इस विषय में जयपुर के स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायणजी ने पर्याप्त गवेषणा की थी। उन्होंने इनका रचना-काल सं० १६४०-६० स्थिर किया है। परन्तु यह कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है।[128]

नाभादास उत्तम कोटि के कवि और भक्त थे। इनके रचे चार ग्रंथों का पता है—भक्तमाल, रामचरित्र के पद और दो अष्टयाम, एक ब्रजभाषा गद्य में और दूसरा पद्य में।

इन ग्रंथों में 'भक्तमाल' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह लोकप्रिय भी बहुत है इसका निर्माण इन्होंने अपने गुरु अग्रदास की आज्ञा से किया था :—

> गुरु अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तनि को यश गाउ।
> भवसागर के तरन को, नाहिन और उपाउ ॥[129]

इसमें ३१६ छंद हैं जिनमें लगभग २०० वैष्णव भक्तों की महिमा गाई गई है। ग्रंथ इतिहास और साहित्य दोनों दृष्टियों से परम उपयोगी और प्रशंसनीय है। इस पर छः टीकाएँ भी हुई हैं[130] जिनमें प्रियादास की 'भक्ति-रसबोधिनी' टीका बहुत प्रसिद्ध है।

भक्तमाल की भाषा ब्रजभाषा है जो बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं ललित है। इसकी रचना पद्धति सरस और चित्ताकर्षक है। वैष्णव भक्तों के विभिन्न शब्द-चित्र जो इसमें अंकित किये गये हैं वे बहुत सुन्दर तथा स्वाभाविक हैं और उनमें किसी प्रकार की अवास्तविकता एवं अतिरंजना नहीं आ पाई है।

(६) जल्ह—इनका विशेष वृत्त ज्ञात नहीं है। इनके 'बुद्धिरासो' ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति का पता हाल ही में लगा है जो सं० १७०४ की

---

128. हितैषी; दिसंबर-जनवरी सन् १९४१-४२, पृ० १४१

129. भक्तमाल; छंद ४।

130. भक्तिरसबोधिनी टीका (प्रियादास), भक्तकल्पद्रुम टीका (प्रतापसिंह), भक्तविनोद (कवि मियाँसिंह), भक्तिसुधास्वाद तिलक (श्री सीतारामशरण भगवानदास रूपकला), रामरसिकावली (रघुराजसिंह) और भक्तदामगुणचित्रनी टीका (बालकराम)।

लिखी हुई ।[131] इसकी भाषा-रचना से ये जैसलमेर अथवा है बीकानेर की तरफ के कोई जैन कवि मालूम पड़ते हैं। जल्ह नाम के एक कवि जैनियों में हुए भी हैं[132] जिनके रचे हुए कुछ फुटकर पद्य मिलते हैं। उनका रचना-काल सं० १६२५ है। उनकी भाषा-शैली और बुद्धिरासौ के कर्त्ता जल्ह की भाषा-शैली पर्याप्त सादृश्य है। इसलिये अनुमान होता है कि ये दोनों कवि एक ही हैं। यदि यह अनुमान ठीक हो तो जल्ह का रचना-काल सं० १६२५ के लगभग ठहरता है।

बुद्धिरासौ एक छोटा सा प्रेमाख्यान है। इसकी कथावस्तु काल्पनिक है।[133] इसमें चम्पावती नगरी के राजकुमार और जलधितरंगिनी नामक एक रूपवती स्त्री की प्रेम-कथा का वर्णन है। राजकुमार अपनी राजधानी से आकर कुछ दिनों के लिये जलधि तरंगिनी के साथ समुद्र के पास किसी निर्जन स्थान में ठहरता है और जिस समय वहाँ से रवाना होता है जलधि-तरंगिनी से एक माह के भीतर वापस लौटने की प्रतिज्ञा करता है। अवधि के ऊपर कई मास बीत जाने पर भी जब राजकुमार नहीं आता है तब विरहोत्तापित जलधितरंगिनी दुनियाँ से विरक्त हो जाती है और अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषणों को अपने शरीर से उतार फेंकती है। इस पर उसकी माँ उसके सामने दुनियाँ के विलास-वैभव तथा देवदुर्लभ मानव देह का बखान करने लगती है। इतने में राजकुमार भी आ पहुँचता है। दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है और हास-विलासपूर्वक अपना समय व्यतीत करते हैं।

बुद्धिरासौ की छंद संख्या १४० है। इसका कथानक मार्मिक है। परन्तु काव्य-कला की अपेक्षा भाषाशास्त्र की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्व विशेष है। अनेक कारणों से मीरां, सूर इत्यादि हमारे ब्रजभाषा के कवियों की रचनाओं का मूल रूप विकृत हो गया है और उनका आदि स्वरूप कैसा था यह जानना आज हमारे लिये दुसाध्य है। परन्तु बुद्धिरासौ इस दोष से मुक्त है। उसमें उसका प्रकृत रूप बहुत कुछ सुरक्षित है।

---

131. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (प्रथम भाग); पृ० ७६।

132. अगरचंद नाहटा और भँवरलाल नाहटा; ऐतिहासिक जैन-काव्य-संग्रह, पृ० १३८।

133 इति प्रतिवाद सुवेस रस, वर्ण कियौ कवि जल्ह ॥
चंपावति नयरी सुथल, कही मनोहर गल्ह ॥
हस्तलिखित प्रति, पद्य १४०

बुद्धिरासो की भाषा-रचना प्रांजल, प्रवृद्ध एवं प्रवाहपूर्ण है। उस पर हलका-सा रंग अपभ्रंश का भी लगा हुआ है। उदाहरण—

चंदमुखी मुख चंद कीयं। चखि कज्जल अंबर हार लीयं ॥
घन घंटनि छिद्र नितंब भरै। मयमत्त सुधा मनमछ्छ करै ॥
अनि अथि तम्बोल अमोल्ल मुखं। अहि लीक सु अछ्छर कोन सुखं ॥
कुच ढंकति कंचु कसी कसिये। जुग भीर जुरे मनमछ्छ भये ॥
घन जंघनि कंचन रंभ वनी। पहिरंति पटंबर अंग तनी ॥
चख भू अनि वंक निसंच खरै। विष बांन कटाछिन प्रान हरै ॥
कर कंकन अंकन जायि नहीं। ग्रिहि जानु गुहे भुजपाल बहीं ॥
वर हंस विराजन हंस वनी। तप छंडि जोगेन्द्र गह् सुनी ॥
चरनावलि वेस विसाल अंगे। कदली दल जानि कसुंभ रंगे ॥
बनि ठाढिय अंगनि आयि खरी। रथ खंचि रह्यौ रवि एक घरी ॥[134]

(७) पृथ्वीराज—ये बीकानेर-नरेश राव कल्याणमल के बेटे और राव जैतसी के पोते थे। इनका जन्म सं० १६०६ में हुआ था। इतिहास-प्रसिद्ध महाराजा रायसिंह इनके बड़े भाई थे। कर्नल टॉड ने इनके विषय में लिखा है कि 'पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामंतों में एक श्रेष्ठ वीर थे और पश्चिमीय ट्रूबेडार राजकुमारों की भांति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकते थे तथा स्वयं तलवार लेकर लड़ भी सकते थे। इतना ही नहीं, राजपूताने के कवि-समुदाय ने एक स्वर से गुणज्ञता का सेहरा भी इन्हीं वीर राठौड़ के सिर बांधा था।'[135]

ये मुग़ल सम्राट् अकबर के बड़े कृपापात्र थे और प्रायः शाही दरबार में रहा करते थे। मूता नैणसी की ख्यात से पता लगता है कि बादशाह ने इन्हें गागरौन का किला दिया था जो बहुत समय तक इनकी जागीर में रहा।[136]

134. हस्तलिखित प्रति, पृ० ४०४-४०५

135. कर्नल टाड; दि एनल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ आव राजस्थान (प्रथम संस्करण) पृ० ३४३

136. "तठा पछे वळे एक वारए पृथ्वीराज कल्याणमलोत बीकानेरीया पातसाहजी गढ़ गागरूण दी थी। तद पिण वेढ हुई। तिकारा पृथ्वीराजजी जीती। खीची हारिया।" (उदयपुर के सरस्वती भंडार की हस्तलिखित प्रति, पत्र सं० ६७)

इन्होंने दो विवाह किये थे। इनकी पहली स्त्री का नाम लालांदे था। यह जैसलमेर के रावल् हरराज की पुत्री थी। इसका देहान्त हो जाने पर इन्होंने इसी की बहिन चाँपादे से अपना दूसरा विवाह किया। इन दो स्त्रियों से पृथ्वीराज के कितनी संतति हुई इसका ठीक-ठीक पता इतिहास-ग्रंथों से नहीं लगता। परन्तु इनके संतति हुई थी यह निश्चित है। इनके वंशज पृथ्वीराजोत बीका कहलाते हैं जो बीकानेर राज्यान्तर्गत ददेवा के पट्टेदार हैं।[137] पृथ्वीराज का देहावसान सं० १६५७ में हुआ था। उस समय इनकी आयु ५१ वर्ष की थी।

उच्च कोटि के योद्धा एवं कवि होने के अतिरिक्त पृथ्वीराज भगवद्भक्त भी पूरे थे। भक्तवर नाभादास ने भी अपने 'भक्तमाल' में इनका बखान किया है।[138] ये पिंगल और डिंगल दोनों में कविता करते थे। इनका लिखा 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' डिंगल भाषा का एक अद्वितीय ग्रंथ है। मिश्रबन्धु-विनोद में इनके 'प्रेमदीपिका' नामक एक ब्रजभाषा के ग्रंथ का उल्लेख भी हुआ है जिसमें से थोड़ा-सा अंश भी उद्धृत किया गया है।[139] परन्तु यह पृथ्वीराज की प्रामाणिक रचना नहीं है। राजस्थान के इतिहास-ग्रंथों में कहीं इसका नाम दृष्टिगत नहीं होता, न बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में यह ग्रंथ पाया जाता है जहाँ पृथ्वीराज के सभी ग्रंथ सुरक्षित हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि मिश्रबन्धुओं ने भ्रमवश किसी दूसरे कवि की रचना को पृथ्वीराज की मान लिया है।

पृथ्वीराज ने ब्रजभाषा में केवल फुटकर कविता लिखी है जिसमें वीर रस का प्राधान्य है। यह कविता अपने युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती है और इसमें बहुत बल एवं तेज पाया जाता है जो ब्रजभाषा के बहुत कम कवियों की रचनाओं में देखने को मिलता है।

(८) परशुरामदेव—ये निम्बार्क-सम्प्रदाय के आचार्य श्रीहरिव्यास देवजी के शिष्य थे। इनका 'विप्रमती' नामक एक ग्रंथ मिला है जो सं० १६७७ में लिखा गया था।[140] इससे इनका रचना-काल सं० १६७७ के आसपास निश्चित होता है। ये जाति के आदिगौड़ ब्राह्मण थे। इनके जन्म-

137. ओझा; बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खंड, पृ० १६१

138. छप्पय २४०

139. भाग पहला (चतुर्थ संस्करण), पृ० २८३।

140. उदयपुरस्थ श्रीस्वामी प्रयागदासजी महाराज के स्थल की 'परशुराम सागर' की हस्तलिखित प्रति, पृ० १७४

स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं है। निम्बार्क-सम्प्रदाय के लोग जयपुर राज्य के खंडेला ग्राम को इनकी जन्मभूमि बतलाते हैं। परन्तु नाभादास कृत भक्तमाल में इनका जो वर्णन मिलता है उससे कुछ ऐसी ध्वनि निकलती है कि ये जंगलदेश अर्थात् बीकानेर के रहनेवाले थे :—

ज्यौं चंदन कौ पवन, नींब पुनि चंदन करई।
बहुत काल तम निबिड़ उदय दीपक ज्यौं हरई॥
श्रीभट पुनि हरिव्यास संत मारग अनुसरई।
कथा कीरतन नेम रसनि हरि गुण उच्चरई॥
गोविंद भक्ति गद रोग गति तिलकदाम सद वैद हद।
जंगली देश के लोग सब परसुराम किय पारपद॥ [141]

परशुरामदेवजी बहुत ज्ञानी और प्रभावशाली महात्मा थे। हरिव्यास देवजी के और भी कई शिष्य थे जिनमें से कुछ आयु में परशुरामजी से बड़े भी थे। पर उनमें प्रतिष्ठा इनकी सब से अधिक थी और छोटे-बड़े सभी इनके चरणों में मस्तक नमाते थे :—

आचारज हरिव्यास के, सिष्य सपूत अनंत।
तिनमें मुखिया परसुराँ, गादीवंत महंत॥
कंठमाल हरिव्यास की, पुनि सर्वेस्वर ईस।
सो राजत श्रीमत्प्रभू, परसुराम के सीस॥
सिष्य सकल हरिव्यास के, और प्रसिष्य अनंत।
पग्सुराम पद-पादुका, सब ही आन नमंत॥ [142]

—हरिव्यासछब्बीसी

परशुरामदेव-विरचित 'परशुरामसागर' अभी तक अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुरस्थ श्री स्वामी प्रयागदासजी महाराज के भवन में विद्यमान है। यह सं० १८३७ में लिपिबद्ध हुई थी। इसमें इनके निम्नलिखित २३ ग्रंथ संगृहीत हैं :—

(१) साखी का जोड़ा (२) छंद का जोड़ा (३) सवैया दस अवतार का (४) रघुनाथचरित्र (५) श्रीकृष्णचरित्र (६) सिंगार सुदामाचरित्र (७) द्रौपदी का जोड़ा (८) छप्पय गज-ग्राह का (९) प्रहलादचरित्र (१०) अमरबोध लीला (११) नामनिधि लीला (१२) सांच निषेध लीला (१३) नाथ लीला (१४) निज रूप लीला (१५) श्रीहरि लीला (१६) श्री निर्वाण लीला (१७) समझणी लीला (१८) तिथि लीला (१९) वार लीला

141. छप्पय सं० २३५

142. स्वामी प्रयागदासजी के भवन की हस्तलिखित प्रति, पत्र ३

(२०)नक्षत्र लीला (२१)श्री बावनी लीला (२२)विप्रमती और (२३)पद ।

परशुरामदेवजी की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा नहीं है । वह सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा है जिसमें राजस्थानी का भी पर्याप्त पुट लगा हुआ है । ये सगुणोपासक भक्त थे । अतएव इन्होंने सगुण भक्ति पर विशेष लिखा है । परन्तु इनकी निर्गुण भक्ति सम्बन्धिनी कविताएँ भी मात्रा में कम नहीं है । शैली इनकी प्रथाबद्ध है । भावों में भी नवीनता बहुत थोड़ी है । अधिकतर कबीर, सूर इत्यादि के भावों को अपनाया गया है । परन्तु कहीं-कहीं मौलिक सूक्तियाँ भी है जो बड़ी सरस और प्राणवान हैं ।

(६) तत्ववेता—ये भी निम्बार्क-सम्प्रदाय के आचार्यों में से थे और श्री परशुरामदेवजी के शिष्य थे । इनका आविर्भाव काल सं० १६८० के लगभग है । इनके वास्तविक नाम का पता नहीं है । 'तत्ववेत्ता' इनका उपनाम था जो तत्वज्ञान संबन्धी इनके गहन ज्ञान को देखकर गुरु ने रख दिया था । ये जोधपुर राज्य के जैतारण गाँव में पैदा हुए थे और जाति के गुर्जरगौड़ ब्राह्मण थे । इनकी गद्दी अभी तक जैतारण में चल रही है । वहीं इनका समाधि-स्थान भी है ।

ये ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे । इनकी 'वाणी' जैतारण के गोपाल मंदिर में विद्यमान है । उसमें ज्ञान-उपदेश की बातों का प्राधान्य है । फिर भी रचना मनोहारिणी है । इनका 'कवित्त' नामक एक और ग्रंथ उपलब्ध हुआ है ।[143] इसमें ६८ कवित्त (छप्पय) है जिनमें राम, कृष्ण, नारद आदि भारत के प्राचीन महापुरुषों की महिमा गायी गई है । ग्रंथ नाभादास कृत भक्तमाल की शैली पर लिखा गया है । रचना सुन्दर है । भाषा इस ढंग की है :—

उग्रसेन वलहीन कृष्णजी राजा कीनौ ।
राजपाट गज्यंद छत्र सिंघासन दीनौ ॥
स्वामी सेवक होय चत्रभुज चौर ढलावै ।
पीतांवर स्यौं छाँड़ि पाय पनही पहरावै ॥
दालिद हरन दयाल विपुल वैभौ विस्तारा ।
करुणासागर कृष्ण किसोर कीनौ स कुंवारा ॥
ततवेता तिहुं लोक में भगतवछल जस गाइयै ।
मनसा वाचा कर्मणा मन वंछित फल पाइयें ॥[144]

---

143. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, पृ० ३६ ।
144. हस्तलिखित प्रति, पत्र ४०

द्वितीय अध्याय का परिशिष्ट

(१०) देवा, उदयपुर। नि० का० सं० १६३२; र० फुटकर; वि० ये कूट-काव्य लिखते थे।

(११) लालांदे, बीकानेर। नि० का० सं० १६४०; र० फुटकर; वि० राठौड़ पृथ्वीराज की पहली स्त्री।

(१२) चांपादे, बीकानेर, नि० का० सं० १६५०; र० फुटकर; वि० राठौड़ पृथ्वीराज की दूसरी स्त्री।

(१३) राड़धड़ीजी, सिरोही। नि० का० सं० १६५० के लगभग; र० फुटकर; वि० यह सिरोही-नरेश की राणी थी।

(१४) मानसिंह, जयपुर। नि० का० सं० १६४६-७५; र० फुटकर; वि० ये जयपुर के महाराजा थे।

(१५) हरनाथ, जयपुर। नि० का० सं० १६६०; र० फुटकर; वि० महाराजा मानसिंह के समकालीन।

(१६) लीलाधर, जोधपुर। नि० का० सं० १६७७; र० फुटकर; वि० महाराजा गजसिंह के आश्रित।

(१७) चतुर्भुजसहाय, उदयपुर। नि० का० सं० १६७७; र० फुटकर; वि० ये जाति के राव थे।

(१८) परसाद, उदयपुर। नि० का० सं० १६८०; र० फुटकर; वि० महाराणा कर्णसिंह के आश्रित।

(१९) जसवंतसिंह, प्रतापगढ़। नि० का० सं० १६८५-९०; र० फुटकर; वि० ये प्रतापगढ़ के राजा थे।

तृतीय अध्याय

मध्यकाल (सं० १७००–१९००)

लगभग सं० १७०० से व्रजभाषा साहित्य का मध्यकाल आरंभ होता है जो सं० १९०० तक चलता है। आदि काल में भक्ति-काव्य की प्रधानता थी पर इस काल में भक्ति-काव्य के साथ साथ रीति-काव्य और चरित्र-काव्य का भी निर्माण हुआ। विशेषकर रीति-काव्य तो इतना अधिक रचा गया कि उसे देखकर कुछ विद्वानों ने इस काल का नाम ही 'रीति काल' रख दिया है। यह नाम उपयुक्त है और सार्थक भी। क्योंकि इससे इस काल की प्रमुख काव्य धारा का बहुत कुछ अनुमान हो जाता है।

रीति के मुख्य अंग तीन हैं—अलंकार, रस और ध्वनि। व्रजभाषा का अलंकार विषय अधिकतर जयदेव के 'चन्द्रालोक' और अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानंद' के आधार पर निर्मित हुआ है। इसी प्रकार रस तथा ध्वनि विषयक विवेचन के लिये 'काव्यप्रकाश' 'साहित्यदर्पण' 'रसमंजरी' इत्यादि संस्कृत-ग्रंथों से सहायता ली गई है। अतः विषय-मौलिकता की दृष्टि से व्रजभाषा का यह रीति-साहित्य विशेष महत्त्व का नहीं है। परन्तु विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से इसका भारी महत्त्व है। क्योंकि मूल विषय सामग्री दूसरों की होते हुए भी व्रजभाषा के कवियों ने उसे ऐसी उत्तमता से सजाया है कि वह सर्वथा नवीन-सी प्रतीत होती है। इतना ही नहीं, नायिका-भेद-वर्णन में तो ये कवि संस्कृत कवियों से भी कुछ आगे निकल गये हैं।

राजस्थान में लिखे गये इस काल के रीति-काव्यों के नाम नीचे दिये जाते हैं :—

लेखक	ग्रंथ	रचना-काल
१. जान	रसकोश	सं० १६७६
	कविवल्लभ	सं० १७०४
	रसमंजरी	सं० १७०६
	रसतरंगिनी	सं० १७११
२. केहरी	रसिकविलास	सं० १७१०
३. जगन्नाथ	रतिभूषण	सं० १७१४
४. सूरदत्त	रसिकहुलास	सं० १७१६

लेखक	ग्रंथ	रचना-काल
५. जसवंतसिंह	भावाभूषण	सं० १७१७
६. उदयचंद	अनूपरसाल	सं० १७२८
७. नंदराम	अलसमेदनी	सं० १७२८*
८. मान	संयोगद्वात्रिंशिका	सं० १७३१
९. सतीदास व्यास	रसिक-आराम	सं० १७३३
१०. रूपजी	रसरूप	सं० १७३९
११. कुलपति मिश्र	रस-रहस्य	सं० १७४३
१२. वृन्द	भावपंचाशिका	सं० १७४३
	शृंगारशिक्षा	सं० १७४८
१३. अभयराम	अनूपशृंगार	सं० १७५४
१४. लोकनाथ चौबे	रसतरंग	सं० १७६०
१५. सूरत मिश्र	अलंकारमाला	सं० १७६६
	रसरत्नमाला	सं० १७६८
	काव्यसिद्धान्त	सं० १७८५
१६ तिलोकराम	रसप्रकास	सं० १७६७
१७. अजीतसिंह	भावविरही	सं० १७७०*
१८. बुधसिंह	नेहतरंग	सं० १७८४
१९. श्री कृष्णभट्ट	शृंगाररसमाधुरी	सं० १७९९
	अलंकार-कलानिधि	सं० १७९१
२०. सोमनाथ	रसपीयूषनिधि	सं० १७९४
२१. दलपतिराय-वंसीधर	अलंकार-रत्नाकर	सं० १७९८
२२. पीयल	जुगल-विलास	सं० १८०० (?)
२३. शिवसहायदास	लोकोक्तिरस-कौमुदी	सं० १८०९
२४. दौलतराय	रसप्रबोध	सं० १८२०
२५. हरिचरणदास	कविवल्लभ	सं० १८३९
२६. रामकर्ण	अलंकार-समुच्चय	सं० १८५५
२७. उत्तमचंद भंडारी	अलंकार—आशय	सं० १८६०
२८. गणपति भारती	नवरस	सं० १८६०

* ये संवत् अनुमानित हैं।

लेखक	ग्रंथ	रचना-काल
	अलंकारसुधानिधि	——
२६. उमेदराम	वाणी-भूषण	सं० १८६१
३०. पद्माकर	जगतविनोद	सं० १८६७
	पद्माभरण	सं० १८६७
३१. कृष्णलाल	कृष्णविनोद	सं० १८७२
	रसभूषण	सं० १८७४
३२. गणेश	रसचन्द्रोदय	सं० १८७५
३३. मंडन भट्ट	रसरत्नाकर	सं० १८७७
	नवरसरत्नाकर	
	रस-समुद्र	
३४. हरि	रसमंजरी	सं० १८८३
३५. ग्रजेन्द्र	रसानंद	सं० १८६०
३६. उदयचंद	रसशृंगार	सं० १८६०
	रसनिवास	सं० १८६२
३७. चतुरदान	चतुर-रसाल	सं० १८६०
३८. चतुर्भुज मिश्र	अलंकार-आभा	सं० १८६६

इस काल के चरित्र-काव्यों में पृथ्वीराज रासो मुख्य है जिसका विस्तृत विवेचन गत अध्याय में किया जा चुका है। इसके अनन्तर जितने भी चरित्र-काव्य यहां रचे गये हैं प्रायः उन सभी पर पृथ्वीराज रासो की रचना-शैली का न्यूनाधिक प्रभाव पाया जाता है। कुछ में तो थोड़े-बहुत अंतर के साथ छंद के छंद पृथ्वीराज रासो से उठाकर रख दिये गये हैं। विशेषकर सेना, युद्धादि के वर्णन में ऐसा बहुत हुआ है। पृथ्वीराज रासो व इस काल के अन्य कुछ बहुत प्रसिद्ध चरित्र-काव्यों के नाम ये हैं—

रचयिता	ग्रंथ	रचना-काल
१. चंद	पृथ्वीराज रासो	सं० १७००*
२. हरिदास	अमरबत्तीसी	,, १७०१
३. दलपति मिश्र	जसवंत-उद्योत	,, १७०५ (?)

* ये संवत् अनुमानित हैं।

रचयिता	ग्रंथ	रचना-काल
४. राम कवि	जयसिंहचरित्र	सं० १७१०*
५. डूंगरसी	शत्रुसाल रासौ	सं० १७१०*
६. जान	कायमरासौ	सं० १७११
७. कुंभकर्ण	रतन रासौ	सं० १७३२
८. मानजी	राजविलास	सं० १७३४
९. दयालदास	राणा रासौ	सं० १७३७–५५
१०. हरिनाभ	केसरीसिंह-समर	सं० १७५४
११. वृन्द	वचनिका	सं० १७६२
	सत्यस्वरूप	सं० १७६४
१२. जोधराज	हमीर रासौ	सं० १७८५
१३. नंदराम	जगविलास	सं० १८०२
१४. सूदन	सुजानचरित्र	सं० १८२५*

यहां पर यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि उपरोक्त साहित्य-रीति-काव्य और चरित्र-काव्य---इस काल में रचा अवश्य गया है और यह इस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का द्योतक भी है, पर यह इस युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करनेवाला साहित्य नहीं है। क्योंकि यह जनसाधारण का साहित्य नहीं है, न यह जनसाधारण की दृष्टि से लिखा गया है। यह केवल शृंगारी कवियों तथा उनके आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की भाव-भावनाओं को व्यक्त करता है जिनके मनोरंजनार्थ इसकी रचना हुई है। रीति-काव्यों की सृष्टि उनकी मानसिक काम-वासना की तृप्ति के लिये की गई है और चरित्र-काव्यों की उनकी यश-लिप्सा की शान्ति के लिये और इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये रीति-काव्यों में बहुधा राधा-कृष्ण की भक्ति को बहाना बनाया गया है और चरित्रकाव्यों में इतिहास को। परन्तु दोनों के मूल में मनोवृत्ति वही एक काम कर रही है। और वह है राजा-महाराजाओं की संतुष्टि।

आगे इस काल के कवियों का विवरण दिया जाता है जिसमें सर्वप्रथम मुसलमान कवि जान सामने आते हैं।

(२०) जान कवि---जयपुर राज्य के सुप्रसिद्ध करद संस्थान सीकर के इलाके में परगना फतहपुर है। वहां वर्तमान शेखावत राजवंश से पहले कायम-

* ये संवत् अनुमानित हैं।

खानी नवावों का शासन था। कायमखानी वंश का मूल पुरुष चौहाण करमसी था जिसको फिरोजशाह तुगलक के पदाधिकारी और हिसार के सेनापति सैयद नासिर ने सं० १४४० में मुसलमान वनाया और उसका नाम, वदलकर कायमखां रखा। वही कायमखां कायमखानी वंश का मूल पुरुष हुआ और उसके वंशधर कायमखानी (क्यामखांनी) कहलाने लगे।[1]

सैयद नासिर की मृत्यु के उपरांत कायमखाँ उसकी जगह नियुक्त हुआ और हिसार उसको जागीर में मिला। कायमखाँ वड़ा वीर और महत्वाकांक्षी पुरुष था। उसने अपना प्रभाव इतना वढ़ा लिया कि वादशाह खिजरखाँ उससे डरने लगा और भयभीत होकर उसने उसे दिल्ली के किले पर से जमुना में गिरवा दिया और उसके पुत्र मुहम्मदखाँ तथा ताजखाँ को हिसार से निकाल वाहर किया। दोनों भाई कुछ वर्षों तक जैसलमेर और नागौर में रहे। वाद में वापस हिसार पहुँच गये और दोनों के लिये पृथक्-पृथक् दो रियासतें—झूंझणू और फतहपुर—कायम हुईं। मुहम्मदखाँ के पुत्र नवाव शमसखाँ ने झूंझणू वसाया और ताजखाँ के पुत्र नवाव फतहखाँ ने फतहपुर।

फतहखाँ फतहपुर का पहला नवाव था। इससे आठवीं पीढ़ी में न्यामतखाँ हुए जो कविता में अपना नाम जान लिखा करते थे। वंश-वृक्ष इस प्रकार है :—

फतहखाँ
|
जलालखाँ
|
दौलतखाँ
|
नाहरखाँ
|
फदनखाँ
|
ताजखाँ
|
अलफखाँ
|
न्यामतखाँ (जान कवि)

जान कवि के जन्म और मृत्यु संवत् का ठीक-ठीक पता नहीं है। परन्तु अपने ग्रंथों में इन्होंने उनका लेखन-समय दिया है जिससे इनका रचना-काल सं० १६७१-१७२१ निश्चित होता है।

ये संस्कृत, अरवी, फारसी, पिंगल आदि कई भाषाओं के अच्छे जानकार और आशु कवि थे। इन्होंने कुल ७५ ग्रंथ वनाये जिनके नाम ये हैं:—

(१) मदनविनोद (२) ज्ञानदीप (३) रसमंजरी (४) अलफखाँ की

1. मुहणोत नैणसी की ख्यात, पृ० १९६

पेड़ी (५) कायमरासौ (६) पुहुपवरखा (७) कंवलावती कथा (८) वरवा ग्रंथ (९) छबिसागर (१०) कलावती कथा (११) छीता की कथा (१२) रूपमंजरी (१३) मोहनी (१४) चन्द्रसेन राजा सीलनिधान की कथा (१५) अरदेसर पातिसाह की कथा (१६) कामरानी या पीतमदास की कथा (१७) पाहन परिच्छा (१८) शृंगारशतक (१९) भावशतक (२०) विरहशतक (२१) बलूकिया विरही की कथा (२२) तमीम अनसारी की कथा (२३) कथा कलंदर की (२४) कथा निर्मल की (२५) सतवंती की कथा (२६) शीलवंती की कथा (२७) कुलवंती की कथा (२८) खिजरखाँ साहिजादा व देवल देवी (२९) कनकावती की कथा (३०) कौतूहली की कथा (३१) कथा सुभटराय की (३२) वुधिसागर (३३) कामलता कथा (३४) चेतननामा (३५) सिख ग्रंथ (३६) सुधासिख ग्रंथ (३७) वुधिदायक (३८) बुधिदीप (३९) घूंघटनामा (४०) दरसनामा (४१) अलकनामा (४२) दरसननामा (४३) बारहमासा (४४) सतनामा (४५) वर्ननामा (४६) वांदीनामा (४७) बाजनामा (४८) कबूतरनामा (४९) गूढ़ ग्रंथ (५०) देसावली (५१) रसकोष (५२) उत्तम सब्द (५३) सिख्यासागर (५४) वैद्यक सिख शतपद (५५) शृंगारतिलक (५६) प्रेमसागर (५७) वियोगसागर (५८) षट्ऋतु पवंगम छंद (५९) रसतरंगिनी (६०) रतनमंजरी (६१) नल-दयमयंती (६२) पैमुनामा (६३) मानविनोद (६४) बिरही को मनोरथ (६५) जफ़रनामा (६६) पदनामा (६७) भावकल्लोल (६८) कंदर्पकल्लोल (६९) नाममाला अनेकार्थी (७०) रतनावती (७१) सुधासागर (७२) श्वाससंग्रह (७३) लैला-मजनू (७४) कविवल्लभ और (७५) वैदकमति ।

जैसा कि उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है जान कवि ने प्रेमाख्यान अधिक लिखे हैं। अतएव इनकी रचना में शृंगार रस का प्राधान्य है। बहुत ऊँची काव्य-प्रतिभा इनमें दिखाई नहीं देती। परन्तु वर्णन की स्वाभाविकता तथा सजीवता और कथा-प्रवाह की धारावाहिकता द्वारा पाठक का ध्यान इधर-उधर न भटकने देने की जो कला-क्षमता एक कुशल कहानीकार में होनी चाहिये वह इनमें पूरी-पूरी विद्यमान थी और इस दृष्टि से इनके प्रेमाख्यानों की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है।

इसके अतिरिक्त इनकी भाषा भी देखने योग्य है। वह व्यवस्थित है और विषयानुकूल भी। सरल तो वह इतनी है कि उसे समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। साधारण पढ़ा-लिखा पाठक भी उसे आसानी से समझ लेता है। उदाहरण,—

पेड़ी (५) कायमरासौ (६) पुहुपवरखा (७) कंवलावती कथा (८) वरवा ग्रंथ (६) छबिसागर (१०) कलावती कथा (११) छीता की कथा (१२) रूपमंजरी (१३) मोहनी (१४) चन्द्रसेन राजा सीलनिधान की कथा (१५) अरदेसर पातिसाह की कथा (१६) कामरानी या पीतमदास की कथा (१७) पाहन परिच्छा (१८) शृंगारशतक (१९) भावशतक (२०) विरहशतक (२१) वलूकिया विरही की कथा (२२) तमीम अनसारी की कथा (२३) कथा कलंदर की (२४) कथा निर्मल की (२५) सतवंती की कथा (२६) शीलवंती की कथा (२७) कुलवंती की कथा (२८) खिजरखाँ साहिजादा व देवल देवी (२९) कनकावती की कथा (३०) कौतूहली की कथा (३१) कथा सुभटराय की (३२) वुधिसागर (३३) कामलता कथा (३४) चेतननामा (३५) सिख ग्रंथ (३६) सुधासिख ग्रंथ (३७) बुधिदायक (३८) बुधिदीप (३९) घूंघटनामा (४०) दरसनामा (४१) अलकनामा (४२) दरसननामा (४३) बारहमासा (४४) सतनामा (४५) वर्ननामा (४६) बाँदीनामा (४७) बाजनामा (४८) कबूतरनामा (४९) गूढ़ ग्रंथ (५०) देसावली (५१) रसकोष (५२) उत्तम सब्द (५३) सिख्यासागर (५४) वैद्यक सिख शतपद (५५) शृंगारतिलक (५६) प्रेमसागर (५७) वियोगसागर (५८) षट्ऋतु पवंगम छंद (५९) रसतरंगिनी (६०) रतनमंजरी (६१) नल-दयमयंती (६२) पैमुनामा (६३) मानविनोद (६४) बिरही को मनोरथ (६५) जफ़रनामा (६६) पदनामा (६७) भावकल्लोल (६८) कंदर्पकल्लोल (६९) नाममाला अनेकार्थी (७०) रतनावती (७१) सुधासागर (७२) श्वाससंग्रह (७३) लैला-मजनू (७४) कविवल्लभ और (७५) वैदकमति ।

जैसा कि उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है जान कवि ने प्रेमाख्यान अधिक लिखे हैं। अतएव इनकी रचना में शृंगार रस का प्राधान्य है। बहुत ऊँची काव्य-प्रतिभा इनमें दिखाई नहीं देती। परन्तु वर्णन की स्वाभाविकता तथा सजीवता और कथा-प्रवाह की धारावाहिकता द्वारा पाठक का ध्यान इधर-उधर न भटकने देने की जो कला-क्षमता एक कुशल कहानीकार में होनी चाहिये वह इनमें पूरी-पूरी विद्यमान थी और इस दृष्टि से इनके प्रेमाख्यानों की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है।

इसके अतिरिक्त इनकी भाषा भी देखने योग्य है। वह व्यवस्थित है और विषयानुकूल भी। सरल तो वह इतनी है कि उसे समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। साधारण पढ़ा-लिखा पाठक भी उसे आसानी से समझ लेता है। उदाहरण—

इनके एक और ग्रंथ का पता हाल ही में लगा है। इसका नाम 'इच्छा विवेक' है।[8] यह भी वेदान्त का ग्रंथ है।

(२२) विहारी--कविवर विहारीलाल धौम्य गोत्री सोती घरवारी माथुर चौबे थे और ग्वालियर में पैदा हुए थे। 'विहारी-विहार' के अनुसार इनका जन्म सं० १६५२ में हुआ था[9]--

संवत जुग सर रस सहित, भूमि रीति जिन लीन्ह।
कातिक सुदि बुध अष्टमी, जन्म हमहि विधि दीन्ह।।

इनकी बाल्यावस्था बुंदेलखण्ड में व्यतीत हुई थी और तरुणावस्था में ये अपनी ससुराल मथुरा में रहे थे। ये आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह (सं० १६६८-१७२४) के आश्रित थे। इनका देहान्त सं० १७२१ के लगभग हुआ था।[10]

विहारीलाल के पिता का नाम अज्ञात है। इनकी 'सतसई' में एक स्थान पर 'केशवराय' शब्द आया है--

जनम लियो द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आय।
मेरे हरो कलेस सब, केशव केसवराय।।

इसके आधार पर हिंदी के कुछ साहित्यान्वेषकों ने हिंदी के सुविख्यात ग्रंथ 'रामचन्द्रिका' के कर्ता महाकवि केशवदास को इनका पिता माना है। इसमें संदेह नहीं कि केशवदास ने अपनी कुछ रचनाओं में अपना नाम 'केशव दास' और 'केशवराय' दोनों लिखा है। जैसे--

(१) (क) बाँधिबे के नाउ ताल बाँधियत केसौदास,
मारिबे के नाउ तौ दलिद्र मारियत हैं।
—विज्ञानगीता[11]

(ख) काम क्रोध लोभ मोह दंभादिक केसौराइ
पाखंड अखंड झूठ जीतिवे के रुचि जाहि
पाप के प्रताप ताकें केसौराइ भोग जोग
सोध्यौं चाहैं आधि व्याधि भावना असेस दाहि।।

8. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, पृ० १२
9. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ८, अंक २, पृ० १२९-१३०
10. वही; पृ० १५३।
11. स. भं. उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र ३

सौंप्यो चाहै इन्द्रजित भाँति भाँति माया मन
सोपि कैं अनेक भाँति देख्यो चाहैं एकनाहि ।
सौंप्यो चाहै ग्यान हरि देन रच्यो चाहैं जेह
सोई तो सुनावै सुनै ज्ञान गीगिताहि ॥

—विज्ञानगीता[12]

(२) (क) सूर चन्द मिति पै ललन सम जन सीस
छितिन पै देन धेम नन्द को नन्नु है।
जितन वक्ति वह वनित लक्ति यन
मूलनि के मुन नाम फलित नन्नु है ॥
जाहि ही पदारथ को जोग केसौदास जिहि
दीनै पदारथ समूह को नन्नु है।
साहिन को साहि जहाँगीर साहि आहि पंच
भून को प्रभूत भवभूत को तन्नु है ॥

—जहाँगीरजसचंद्रिका[13]

(ख) जहाँगीर जू जगतपति, दै सिगरो सुख साजु ।
केसवराइ जहान में, किये राय तें राजु ॥

—जहाँगीरजसचंद्रिका[14]

परन्तु ये 'केसवदास' अथवा 'केसवराय' बिहारी के पिता थे ऐसा मानने के लिये कोई दृढ़ आधार नहीं है। बिहारीलाल जाति के माथुर चौबे थे यह निर्विवाद है। और केशवदास जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे, जैसा कि वे स्वयं लिख रहे हैं—

(३) सनाढ्य जाति गुनाढ्य है, जगसिद्ध शुद्ध सुभाव ।
सुकृष्णदत्त प्रसिद्ध हैं महि, मिश्र पंडितराव ॥
गणेश सो सुत पाइयो, बुध काशीनाथ अगाध ।
अशेष शास्त्र विचारि कै, जिन जानियो मत साध ॥

12. वही; पत्र २
13. ग. भं. उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र २१२
14. वही; पत्र २२१

उपज्यो तेहि कुल मंदमति, शठ कवि केशवदास ।
रामचंद्र की चंद्रिका, भाषा करी प्रकास ॥
—रामचंद्रिका[15]

(२) तहाँ प्रकास सौ निवास मिश्र कृष्णदत्त कौ।
असेस पंडिता गुनी सुदासु विप्र भक्त कौ ॥
सुकासिनाथ तस्य पुत्र विग्य कासिनाथसौ
सनाढ्य कुंभकार वंसु अंसु वेदव्यासकौ

* * *

तिनकै केसवराय सुतु, भाषा कवि मतिमंदु ।
करी ग्यानगीता प्रगट, श्रीपरमानंदु कंदु ॥
—विज्ञानगीता[16]

ऐसी स्थिति में केशव-बिहारी का पिता-पुत्र का संबन्ध स्थापित करना असंगत है ।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि 'सतसई' के उक्त दोहे में बिहारीलाल ने 'केशवराय' नाम का जो प्रयोग किया है वह उनके पिता का नाम नहीं बल्कि उनके गुरु का नाम है । यह अनुमान ठीक मालूम पड़ता है । कवि-परिपाटी के अनुसार बिहारी ने भी अपने आराध्य केशव की वंदना के पश्चात् अपने गुरु केशवराय की वंदना की है । परंतु ये केशवराय 'रामचंद्रिका' के रचयिता महाकवि केशवदास थे अथवा कोई अन्य व्यक्ति इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है । दोनों ही संभावनाएँ हैं । महाकवि केशवदास की मृत्यु सं० १६७४ के आसपास हुई थी । उस समय बिहारीलाल २२ वर्ष के थे । अतएव बहुत संभव है कि कुछ काल तक केशवदास बिहारीलाल के काव्य-गुरु रहे हों । दूसरी संभावना यह है कि केशवराय महाकवि केशवदास से भिन्न कोई दूसरे ही व्यक्ति हों जिन्होंने बिहारी को विद्याभ्यास कराया हो । परन्तु इस विषय में अधिक कुछ कहने के लिये प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री की आवश्यकता है जो प्राप्त नहीं है ।[17]

15. पहला प्रकाश, पद्य ४–५
16. स. सं. उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १
17. पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र का अनुमान है कि बिहारी के उपर्युक्त दोहे में 'केसव केसवराय' पद जो आया है वह पूरा का पूरा पद किसी एक व्यक्ति का नाम है और संभवतः वही बिहारी के पिता रहे हों । देखिये 'बिहारी की वाग्विभूति', पृ० ९–१० (उद्धृत) ।

अपने जीवनकाल में विहारी ने केवल एक ही ग्रंथ 'विहारी-सतसई' बनाया जो हिंदी-साहित्य-भंडार का अनमोल रत्न और हिन्दी भाषा-भाषियों के गौरव की वस्तु माना जाता है। यह आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह की आज्ञा से लिखा गया था :--

हुकुम पाइ जयसाहि को, हरि राधिका प्रसाद।
करी विहारी सतसई, भरी अनेक सवाद॥

इसका रचना-काल सं० १७०४ के लगभग है।[18] यह हिंदी की एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी से हो सकता है कि इस पर पचास से अधिक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं और अभी भी यह क्रम जारी है।[19] ये टीकाएँ संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी, गद्य, पद्य सभी में हैं। डा० अमरनाथ झा ने इसके ३०० दोहों का अंग्रेजी अनुवाद भी किया है।

किंतु खेद है कि ऐसे अद्वितीय ग्रंथ का वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया हुआ कोई प्रामाणिक संस्करण अभी तक नहीं निकला। जितने भी संस्करण अब तक प्रकाशित हुए हैं उनमें स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का 'विहारी-रत्नाकर' सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यह संस्करण वास्तव में बहुत उत्तम कोटि का है और इसके पाठ-निर्णय, पाठ-संशोधन इत्यादि पर यथेष्ट श्रम किया गया है जो रत्नाकरजी जैसे विद्वान, ब्रजभाषा-पटु और काव्य-मर्मज्ञ हो का काम है। परन्तु इसमें भी दो-एक दोष आ गये हैं। एक तो यह कि इसकी भाषा को रत्नाकरजी ने इतना मांज दिया है कि वह विहारी की भाषा न रहकर एक तरह से रत्नाकरजी की भाषा हो गई है। अतएव भाषा-शास्त्र की दृष्टि से यह संस्करण विशेष उपयोगी नहीं है।

दूसरे, जिन पाँच हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'विहारी-रत्नाकर' का संपादन किया गया है वे न बहुत प्राचीन हैं, न प्रामाणिक। सबसे प्राचीन प्रति जो रत्नाकरजी को मिली वह सं० १७७२ की थी[20]। जिन

18. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ८, अंक२२, पृ० १५१
19. स्वर्गीय रत्नाकरजी ने नागरीप्रचारिणी-पत्रिका में 'विहारी-सतसई' की ५० टीकाओं का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त श्रीकृष्ण भट्ट, उमेदराम तथा परमानंद नामक तीन ओर कवियों की टीकाओं का पता लगा है। इनमें से प्रथम दो कवियों की टीकाएँ हिंदी में और तीसरे की संस्कृत में है।
20. विहारी–रत्नाकर, पृ० २३ (भूमिका)

दो प्रतियों को उन्होंने सं० १७७२ के पूर्व की बतलाया है वे संदिग्ध हैं।[21] क्योंकि उनका लेखन-काल कुछ सुनी-सुनाई बातों तथा अनुमान के आधार पर स्थिर किया गया है। परन्तु 'बिहारी-सतसई' की कुछ ऐसी प्रतियाँ हमारे देखने में आई हैं जो काफी पुरानी होने के साथ साथ विश्वास योग्य भी हैं। एक प्रति बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में वर्तमान है जो अब तक की प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन है। इसका लेखन-काल सं० १७२४ है।[22] दूसरी प्रति उदयपुर के सरस्वती भंडार में है। यह सं० १७४३ में लिपिबद्ध हुई थी।[23] ऐसी महत्त्वपूर्ण प्रतियों का उपयोग न हो सकने के कारण रत्नाकरजी का संस्करण पूर्ण और प्रामाणिक होने से वंचित रह गया है। और तो और, बिहारी के सभी दोहे ही उसमें संकलित नहीं हो पाये हैं। उदाहरण के लिए बिहारी के पाँच दोहे हम नीचे उद्धृत करते हैं। ये उदयपुरवाली उल्लिखित प्रति में पाये जाते हैं पर 'बिहारी-रत्नाकर' में नहीं आये हैं :—

अनब्याही हौंसे मरै, ब्याही लेहिँ उसास।
गौने की मौने रही, देखि राम मृदु हास॥

यह छिन सत-नगु राखि कै, जगत बड़ौ जसु लेहु।
जरी बीपम जुर ज्याइयै, आइ सु दरसन देहु॥

हरि मुँह फेरि कि हेरि इत, हित चिति समुझो नारि।
डीठि परस उठि पीठि कै, पुलकै कहै पुकारि॥

चारौं वलि तो दृगनि पर, अलि खंजन मृग मीन।
आधी दीठि चितौंनि जिहि, कियै लाल आधीन॥

जो जिय जैहै जाउ, काम न मेरे है कछू।
इतीक लौं ठहराउ, पिय हिय सुख दुख की सुनहु॥

उपर्युक्त दो प्रतियों के अतिरिक्त 'बिहारी-सतसई' की सैकड़ों प्रतियाँ और भी राजस्थान में इधर-उधर देखने को मिलती हैं। यहाँ के राजकीय

---

21. वही; पृ० २०–२३

22. "संवत् १७२४ विर्षे कृष्ण पषे ११। गुरुवार। बीकानेर मध्ये। श्री पं० श्री श्रीआणंदजी सिष। खेमराज। लिखतं वाचनार्थं। श्री। शुभं भवतु।"

23. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, पृ० ७३।

दो प्रतियों को उन्होंने सं० १७७२ के पूर्व की वतलाया है वे संदिग्ध हैं।[21] क्योंकि उनका लेखन-काल कुछ सुनी-सुनाई वातों तथा अनुमान के आधार पर स्थिर किया गया है । परन्तु 'विहारी-सतसई' की कुछ ऐसी प्रतियाँ हमारे देखने में आई हैं जो काफी पुरानी होने के साथ साथ विश्वास योग्य भी हैं । एक प्रति वीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में वर्तमान है जो अब तक की प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन है । इसका लेखन-काल सं० १७२४ है ।[22] दूसरी प्रति उदयपुर के सरस्वती भंडार में है । यह सं० १७४३ में लिपिवद्ध हुई थी ।[23] ऐसी महत्त्वपूर्ण प्रतियों का उपयोग न हो सकने के कारण रत्नाकरजी का संस्करण पूर्ण और प्रामाणिक होने से वंचित रह गया है । और तो और, विहारी के सभी दोहे ही उसमें संकलित नहीं हो पाये हैं । उदाहरण के लिए विहारी के पाँच दोहे हम नीचे उद्धृत करते हैं । ये उदयपुरवाली उल्लिखित प्रति में पाये जाते हैं पर 'विहारी-रत्नाकर' में नहीं आये हैं :—

अनव्याही हौंसे मरै, व्याही लेहिँ उसास ।
गौने की मौने रही, देखि राम मृदु हास ॥
यह छिन सत-नगु राखि कै, जगत वड़ौ जसु लेहु ।
जरी वीपम जुर ज्याइयै, आइ सु दरसन देहु ॥
हरि मुँह फेरि कि हेरि इत, हित चिति समुझो नारि ।
डीठि परस उठि पीठि कै, पुलकै कहै पुकारि ॥
चारौं वलि तो दृगनि पर, अलि खंजन मृग मीन ।
आधी दीठि चितौंनि जिहि, किये लाल आधीन ॥
जो जिय जैहै जाउ, काम न मेरे है कछू ।
इतीक लौं ठहराउ, पिय हिय सुख दुख की सुनहु ॥

उपर्युक्त दो प्रतियों के अतिरिक्त 'विहारी-सतसई' की सैकड़ों प्रतियाँ और भी राजस्थान में इधर-उधर देखने को मिलती हैं । यहाँ के राजकीय

21. वही; पृ० २०–२३

22. "संवत् १७२४ वर्षे कृष्ण पषे ११ । गुरुवार। वीकानेर मध्ये। श्री पं० श्री श्रीआणंदजी सिष। खेमराज। लिखतं वाचनार्थं । श्री। शुभं भवतु ।"

23. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, पृ० ७३ ।

मय गेह,

देह ।

—बिहारी-सतसई

पुस्तकालयों, जैन-भांडारों आदि में कदाचित ही कोई ऐसा देखने में आये जहां इसकी दो-चार प्रतियां सुरक्षित न हों। इन प्रतियों में कुछ चित्रित[24] तथा कुछ सादी हैं और कुछ पर्याप्त प्रामाणिक भी हैं। इन सबको एकत्र कर इनके आधार पर 'बिहारी-सतसई' का एक नवीन संस्करण निकालने की बड़ी आवश्यकता है जैसा कि भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, ने महाभारत का और भारतीय विद्याभवन, बम्बई, ने भर्तृहरि-शतक का निकाला है। यह कार्य व्यय-साध्य और कठिन अवश्य है पर उतना ही आवश्यक भी है।

बिहारीलाल ने कुल दोहे कितने लिखे थे इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता। 'बिहारी-सतसई' की जो अनेकानेक हस्तलिखित प्रतियां देखने में आती हैं उनमें ७०१ से लेकर ७५३ तक दोहे मिलते हैं। उक्त बीकानेर वाली प्रति में ७२६ और उदयपुरवाली प्रति में ७२१ दोहे हैं। चन्द्रमणि उपनाम कोविद कवि, जैन टीकाकार मानसिंह और प्रेम कवि ने 'बिहारी-सतसई' के दोहों की संख्या क्रमशः ७००,[25] ७१३[26] और ७५०[27] बतलाई है। स्वर्गीय रत्नाकरजी ने इनमें से मानसिंह की संख्या को ठीक माना है जिसका कारण उन्होंने यह बताया है कि यह टीका सं० १७३४ से पूर्व अर्थात् बिहारी के जीवन-काल में रची गई थी।[28] इसी आधार पर उन्होंने अपने 'बिहारी-रत्नाकर' में ७१३ दोहे रखे हैं। परन्तु यहां उनसे भूल हुई है। इस भूल का कारण यह है कि उन्होंने 'राजविलास' के कर्त्ता मानसिंह और 'बिहारी-सतसई की टीका' के रचयिता मानसिंह इन दोनों को एक व्यक्ति मान लिया है और 'राजविलास' का जो रचनाकाल (सं० १७३४) है लगभग वही 'बिहारी-सतसई' की टीका का भी स्थिर किया है। परन्तु असल में ये दो भिन्न व्यक्ति हैं जैसा कि मिश्रबन्धु-विनोद से पाया जाता है।[29] इनका रचनाकाल क्रमशः सं० १७३४ और सं० १७७० है। इस विषय में अधिक विस्तारपूर्वक यथास्थान आगे लिखा जायगा। अतएव मान-

24. ए कैटेलॉग ऑव मैनुस्क्रिपट्स इन दि लाइब्रेरी ऑव हिज हाईनेस दि महाराना ऑव उदयपुर, पृ० २३८
25. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ६, अंक १, पृ० ७१
26. वही; पृ० ६६
27. वही; पृ० ८५
28. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ६, अंक १, पृ० १०१–१०३
29. वही; पृ० ४६२ और ४७२

सिंह की जिस टीका को रत्नाकरजी ने बिहारी के जीवन-काल की लिखी
तथा प्रामाणिक कहा है वह बिहारी की मृत्यु से लगभग पचास वर्ष बाद
लिखी हुई है और उतनी प्रामाणिक नहीं है जितना कि उसे माना गया है

अतः जहाँ तक दोहों की संख्या का प्रश्न है हमारी संमति में बी-
नेरवाली उल्लिखित प्रति को आदर्श मानना उचित होगा । क्योंकि
प्रति बिहारीलाल की मृत्यु से केवल तीन-चार वर्ष बाद की लिखी
है और अब तक की प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन तथा प्रामाणिक है । य
इस आधार को स्वीकार किया जाय तो फिर बिहारी के दोहों की सं
७३० के लगभग निश्चित होती है ।

बिहारीलाल जन्मसिद्ध कवि थे । ब्रजभाषा पर इनका अगाध
अधिकार था । इन दोनों गुणों का पूर्णोत्कर्ष इनकी सतसई में देखने को मि
है । इनकी भाषा बहुत प्रौढ़ और वाक्य-रचना बहुत गठी हुई है । उ
एक भी शब्द कहीं भरती का नहीं पाया जाता । प्रत्येक शब्द वि
विशेष अभिप्राय से व्यवहृत हुआ है और अपने स्थान पर ठीक बैठा है
इनकी भाषा में अर्बी, फारसी, आदि विदेशी भाषाओं तथा पूर्वी, बुंदेल
और खड़ी बोली के शब्द एवं प्रयोग भी मिलते हैं । कहीं-कहीं राजस्था
का भी रंग दिखाई देता है । जैसे—

"पटु पाँखै भखु काँकरै, सपर परेई संग" ।[30]
"मरुधरं पाय मतीरहीं, मारू कहत पयोधि" ।[31]
"नहिँ जानतु इहिँ पुर बसै धोबी ओड़ कुँभार" ।[32]
"गाहिली गरबु न कीजियै, समै-सुहागहिं पाय" ।[33]
"थाकी जतन अनेक करि, नैंक न छाड़ति गैल" ।[34]
"तौ ग्वैंड़ो घर की भयौ, पैंड़ौ कोस हजार" ।[35]

बिहारी की कविता में श्रृंगार रस का प्राधान्य है और उसमें दो गु
की मुख्यता है । वे दो गुण हैं, भाव की गंभीरता और वर्णन की संक्षिप्तत
दोहा जैसे छोटे छंद में जो विपुल भाव इन्होंने भरा है वह वास्तव में अद्
है । इन्हीं दो विशेषताओं को लक्ष्य में रखकर किसी कवि ने यह दोहा कहा है

30. बिहारी-रत्नाकर, पृ २५६
31. वही; पृ० १५१
32. वही; पृ० १८०
33. वही; पृ० १३१
34. वही; पृ० ५६
35. वही; पृ० ६४

सिंह की जिस टीका को रत्नाकरजी ने बिहारी के जीवन-काल की लिखी हुई तथा प्रामाणिक कहा है वह बिहारी की मृत्यु से लगभग पचास वर्ष बाद लिखी हुई है और उतनी प्रामाणिक नहीं है जितना कि उसे माना गया है।

अतः जहां तक दोहों की संख्या का प्रश्न है हमारी संमति में जो-नेरवाली उल्लिखित प्रति को आदर्श मानना उचित होगा । क्योंकि प्रति बिहारीलाल की मृत्यु से केवल तीन-चार वर्ष बाद की लिखी है और अब तक की प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन तथा प्रामाणिक है । इस आधार को स्वीकार किया जाय तो फिर बिहारी के दोहों की संख्या ७३० के लगभग निश्चित होती है ।

बिहारीलाल जन्मसिद्ध कवि थे । ब्रजभाषा पर इनका अगाध अधिकार था । इन दोनों गुणों का पूर्णोत्कर्ष इनकी सतसई में देखने को मिलता है । इनकी भाषा बहुत प्रौढ़ और वाक्य-रचना बहुत गठी हुई है । उसमें एक भी शब्द कहीं भरती का नहीं पाया जाता । प्रत्येक शब्द किसी विशेष अभिप्राय से व्यवहृत हुआ है और अपने स्थान पर ठीक बैठा है । इनकी भाषा में अर्बी, फारसी, आदि विदेशी भाषाओं तथा पूर्वी, बुंदेलखंडी और खड़ी बोली के शब्द एवं प्रयोग भी मिलते हैं । कहीं-कहीं राजस्थानी का भी रंग दिखाई देता है । जैसे—

"पटु पाँखै भखु काँकरै, सपर परेई संग" ।[30]
"मरुधरै पाय मतीरहीं, मारू कहत पयोधि" ।[31]
"नहिँ जानतु इहिँ पुर बसैं धोबी ओड़ कुँभार" ।[32]
"गाहिली गरबु न कीजियै, समै-सुहागहिँ पाय" ।[33]
"थाकी जतन अनेक करि, नैंक न छाड़ति गैल" ।[34]
"तौ ग्वैंड़ो घर की भयौ, पैंड़ो कोस हजार" ।[35]

बिहारी की कविता में शृंगार रस का प्राधान्य है और उसमें दो गुणों की मुख्यता है । वे दो गुण हैं, भाव की गंभीरता और वर्णन की संक्षिप्तता। दोहा जैसे छोटे छंद में जो विपुल भाव इन्होंने भरा है वह वास्तव में अद्भुत है । इन्हीं दो विशेषताओं को लक्ष्य में रखकर किसी कवि ने यह दोहा कहा है

---

30. बिहारी-रत्नाकर, पृ २५६
31. वही; पृ० १५१
32. वही; पृ० १८०
33. वही; पृ० १३१
34. वही; पृ० ५६
35. वही; पृ० ६४

इसके विपरीत बिहारीलाल नारी-हृदय को टटोलकर बाहर निकाल लाते हैं और सारी बात को बड़े हृदयग्राही ढंग से प्रस्तुत करते हैं जिसमें व्यंग्य है, व्यंजना है और है मार्मिक भाव। निःसंदेह अंग्रेज कवि के प्रश्न संख्या में अधिक हैं पर सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न को तो वे भूल ही गये हैं जिसका उल्लेख बिहारी ने अपने दोहे के अन्तिम चरण में किया है—'अली चलो क्यों बात।' हे सखी! मेरी बात चली कैसे? मेरा प्रसंग आया क्यों? सच पूछिये तो यही कवि-हृदय की मार्मिक अनुभूति है। काव्य-कौशल की अंतिम सीमा है।

बिहारी ने प्रेमभरी चेष्टाओं एवं प्रेमोन्माद के भी अनेक चित्र अंकित किए हैं जो एक से एक बढ़कर सुन्दर हैं और ऐसे हैं कि उनके जोड़ के हिंदी-साहित्य में अन्य नहीं मिलते—

> छला छबीले लाल कौ, नवल नेह लहि नारि।
> चूँवति चाहति लाइ उर, पहिरति धरति उतारि॥
> उड़ति गुड़ी लखि ललन की, अँगना अँगना माँह।
> बौरी लौं दौरी फिरति, छुवति छबीली छाँह॥
> भेटत बनै न भावतौ, चितु तरसतु अति प्यार।
> धरति लगाइ लगाइ उर, भूषन बसन हथ्यार॥
> कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेटि।
> लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि॥

बिहारी की कविता का भाव-पक्ष जितना पुष्ट है उतना ही पुष्ट उसका कला-पक्ष भी है। काव्य-रीति का कोई ऐसा अंग नहीं जिसकी विशेषताएँ बिहारी की कविता में न मिलें। कहीं-कहीं तो एक ही दोहे में रस की मधुर व्यंजना, अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग और शब्दों का मधुर विन्यास साथ-साथ देखने को मिलता है—

> जुरे दुहुनु के दृग झमकि, रुके न झीनें चीर।
> हलुकी फौज हरौल ज्यौं, परै गोल पर भीर॥
> लाज-लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिँ।
> ए मुँहजोर तुरंग ज्यौं, ऐंचत हूँ चलि जाहिँ॥

बिहारी-सतसई के अतिरिक्त बिहारी के रचे कुछ फुटकर कवित्त भी मिले हैं जो ब्रजभाषा में हैं।[37] परन्तु इनमें चमत्कार विशेष नहीं है।

37. राजस्थानी भाषा और साहित्य. पृ० १५०–१५१

(२३) डूँगरसी—ये बूंदी-निवासी जाति के राव थे। इनका रचना-काल अनुमानतः सं० १७१० है। ये बूंदी के रावराजा शत्रुसाल के आश्रित थे जिन्होंने इनको नैणवा नामक एक गाँव जागीर में दिया था।[38] वह गाँव अभी तक इनके वंशवालों के अधिकार में है। इन्होंने 'शत्रुसाल रासौ' नामक एक ग्रंथ बनाया जिसकी एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ता के 'सूरजमल-नागरमल पुस्तकालय' में उपलब्ध है। यह फुलस्कैप साइज के ११८ पृष्ठों का एक बड़ा ग्रंथ है। इसमें बूंदी के रावराजा शत्रुसाल (छत्रसाल) का जीवन-चरित्र वर्णित है जिनकी वीरता-वदान्यता का बखान कवि भूषण[39], मतिराम तथा लाल[40] ने भी अपने ग्रंथों में किया है।

रावराजा शत्रसाल गोपीनाथ के पुत्र और रत्नसिंह के पौत्र थे। ये सं० १६८८ में बूंदी के राजसिंहासन पर बैठे थे।[41] उस समय इनकी आयु २५ वर्ष के लगभग थी। ये मुग़ल साम्राज्य के प्रधान स्तंभों में से थे और शाहजहाँ के समय में एक स्वतन्त्र सूबे के अधिकारी थे। दक्षिण के सूबे में शाहज़ादे औरंगज़ेब के अधिकार में जितने युद्ध हुए उनमें इन्होंने असाधारण वीरता प्रदर्शित कर दौलताबाद, बीदर आदि पर बादशाह का अधिकार करा दिया था। जिस समय धौलपुर में चंबल नदी के किनारे दिल्ली के राजसिंहासन के लिये औरंगज़ेब की दारा से लड़ाई हुई इन्होंने दारा की सेना को निर्बल और औरंगज़ेब का प्रपंच सबल देखकर भी शाहजहाँ की आज्ञा से दारा का साथ दिया था। केवल साथ ही नहीं दिया, बल्कि दारा जब रणक्षेत्र से

---

38. डूंगर कियो है डूंगरयौ, माँगत राव सत्ते।
हाथी दियो रंग बावळी, नैणा गाँव पट्टे॥

—प्राचीन पद्य

39. "हाथी तें उतरि हाड़ा जूझो लोह लंगर दै, एती लाज का में जेती लाज छत्रसाल में। तन तरवारिन में मन परमेश्वर में, प्रान स्वामि कारज में माथो हरमाल में॥"

—छत्रसाल दशक

40. "गोपीनाथ नंद चित चाही बकसीसन सौं, जाचक धनेस कीन्हें सकल जहान में। ज्ञान में दिवान शत्रुसाल सुरगुरु साहिबी में सुरपति सुरतरु बरदान में॥"

—ललितललाम

41. "दारा सार बाजत रन छाज्यौ, जवन पातसाही को भाज्यौ।
हाड़ा सार धार में पैठ्यौ, सूरज भेदि बिमाननि बैठ्यौ॥"

—छत्रप्रकाश

भाग गया तब इन्होंने उसकी सेना का संचालन किया और लड़ते-लड़ते प्राण दे दिये ।

शत्रुसाल केवल रणवीर ही न थे, दानवीर भी थे । इन्होंने अपने हाथ से अतुल धन-संपत्ति ब्राह्मणों एवं चारण-भाटों को दान में दी थी ।

डूंगरसी ने अपने 'शत्रुसाल रासो' में इन्हीं बातों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है ।

इसमें दूहा, साटक, कवित्त (छप्पय), भुजंगी, मोतीदाम इत्यादि कुल मिलाकर पाँचसौ से कुछ ऊपर छंद हैं । इसकी वर्णन-शैली सजीव और कविता सशक्त है और उससे डूंगरसी की जन्मसिद्ध काव्य-प्रतिभा का पता लगता है । ग्रंथ वर्णनात्मक है और इसमें वीर रस का प्राधान्य है । परन्तु इसमें शृंगार आदि दो-एक अन्य रसों का भी प्रसंगानुसार अच्छा निरूपण हुआ है ।

(२४) केहरी—इनका पूरा और प्रामाणिक इतिवृत्त नहीं मिलता । अपनी रचना 'रसिकविलास" में इन्होंने राजा शत्रुसाल का बखान किया है—

सकल देह में केहरी, जैसे मनु परवान ।
त्यों भूपनि मनि जानिये, सत्रसालु अति जान ॥
सत्रसालु ज्यों केहरी, भूपनि को सिरताजु ।
त्यों बरनत सब रसिक जन, है सिगारु रसराजु ॥[42]

इससे जान पड़ता है कि ये शत्रुसाल नामक किसी राजा क आश्रित अथवा समकालीन थे । लेकिन ये शत्रुसाल कौन थे और कहाँ के थे इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता । परन्तु अनुमान ऐसा होता है कि ये बूंदी-नरेश राव शत्रुसाल थे । इस अनुमान की पुष्टि दलपत मिश्र कृत 'जसवंत-उद्योत' से भी होती ह जिसमें इन्होंने शत्रुसाल नाम के आगे 'रावु' पदवी लगाई है और उनके द्वारा कवि केहरी का निहाल होना बताया है—

आलमपनाह साहिजहाँ नरनाह दिजु,
सुंदरनि निवाज्यौ मही महा कविराइ कैं ।
विदित बूंदेला इंद्रजीत कौं बढ़ायौ कैसौ-
दास सु सिरै गायौ गुनि गनना गनाइ कैं ॥

---

42. अ० सं० पु० बीकानेर की प्रति, पत्र १२६–१२७

रावु सत्रसाल सौं निहाल भयौ सुकवि,
केहरी कनौजिया कविंदु पद पाइ कैं ।
गरीबनिवाज महाराजा जसराज त्यौं,
तिहारे वाट पर्‌यौ दलपति कवि आइ कैं ।।[43]

'राव' पदवी उन दिनों बूंदी के राजाओं की थी । अतएव केहरी और दलपत ने अपनी रचनाओं में जिन शत्रुसाल का नामोल्लेख किया है वे बूंदी के राव शत्रुसाल मालूम पड़ते है जिनका शासन-काल सं० १६८८-सं० १७१० है ।

कवि केहरी का उपरोक्त 'रसिकविलास' नायक-नायिका-भेद का एक बड़ा ग्रंथ है । इसकी एक ही प्रति अभी तक मिली है जो बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में है । इसमें सात प्रभाव (अध्याय) है । इसका छठा प्रभाव विशेषकर बड़े महत्त्व का है जिसमें शृंगार रस के विविध अंगों का विशद और मनोवैज्ञानिक ढंग से विवेचन किया है । रचना का नमूना देखिये--

भौंन के कौंन मे भीतर भावनु लोग जगैं पर के बहरावै ।
क्यौंत बनै न निकासन कौ खिनु ही खिनु बाहिर भीतर आवै ।।
केहरि ज्यौं ज्यौं उज्यारौ चहै तिनु लेकर जोति जिठानी जगावै ।
बैंनी बनाइ कैं सौहे ह्वै आइ कै त्यौ त्यौं निया हो दिया अचरावै ।।

(२५) वृन्द कवि--इनके व्यक्तिगत जीवन और इनकी कृतियों आदि के विषय में हिंदी-संसार प्रायः अंधकार में है । हिंदी-साहित्य के इतिहासकार इनको केवल एक सूक्तिकार मानते है[44] और 'वृन्द-सतसई' के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाओं से प्रायः अपरिचित है । परन्तु वृन्द ने और भी ग्रंथ लिखे है जो काव्य और इतिहास की दृष्टि से बहुत उत्तम कोटि के है और उनके आधार पर इनको भी हिंदी भाषा के प्रथम पंक्ति के कवियों में रखा जा सकता है । ये ग्रंथ किशनगढ़ में इनके वंशजों के पास विद्यमान है जहाँ 'वृन्दरत्नावली' आदि कुछ ग्रंथ अन्य कवियों के भी पाये जाते हैं जिनसे वृन्द के जीवन-चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है ।

वृन्द का वास्तविक नाम वृन्दावनदास था । ये जाति के सेवक अथवा

43. जसवंत-उद्योत, पद्य ७१७

44. पंडित रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० २८५

भोजक थे । इनके पूर्वज बीकानेर के रहनेवाले थे[45]। परन्तु किसी कारण विशेष से इनके पिता रूपजी जोधपुर राज्यान्तर्गत मेड़ते में जा बसे थे जहां सं० १७०० में इनका जन्म हुआ था[46]। इनकी माता का नाम कौशल्या और पत्नी का नवरंगदे था । ये जब दश वर्ष के थे तब इनके पिता ने इनको विद्योपार्जन के लिये काशी भेज दिया । वहां ताराजी नामक एक पंडित के पास रहकर इन्होंने साहित्य, दर्शन इत्यादि विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त किया और कविता करना भी सीखा । काशी से लौटकर जब ये अपने जन्मस्थान मेड़ते आये तब वहां पर इनका बड़ा सम्मान हुआ और जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) ने कुछ भूमि पुण्यार्थ देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई । कालान्तर में महाराजा जसवंतसिंह ने इनका परिचय मुगल सम्राट औरंगजेब के कृपापात्र वजीर नवाब मुहम्मद खां से भी करा दिया जिससे आगे जाकर इनका शाही दरबार में प्रवेश हो गया।

कहते हैं कि पहले पहल जिस समय नवाब मुहम्मद खां वृन्द को शाही दरबार में ले गया उस समय इनकी परीक्षा लेने के हेतु बादशाह औरंगजेब ने इन्हें एक समस्या दी और उसकी पूर्त्ति करने को कहा । वह समस्या थी, 'पयोनिधि पैरयो चाहै मिसरी की पुतरी' ।

बादशाह औरंगजेब का झुकाव ईश-भक्ति की ओर विशेष सुना जाता था । इसलिए वृन्द ने तुरन्त ईश-महिमा विषयक यह कविता रचकर सुनाई---

पूरन परम परब्रह्म को भरोसो धारि
सुर मुनि साख जिन डोलैं इत उतरी ।
थिरचर जीवन की जीवन की वृत्ति जाकै
ता ही सूं रुचि-रुचि राच प्रीति जुतरी ।।
वृंद कहै साहिब समरत्थ सब बातन में
उनकी कृपा तें ऐसी बात अदभुत री ।

---

45. माधुरी, संख्या २, अगस्त १९२३, में प्रकाशित 'महाकवि वृन्द' शीर्षक अपने एक लेख में गोस्वामी किशोरीलाल ने लिखा है कि वृन्द गौड़ ब्राह्मण-कुल में मथुरा प्रान्त के किसी गाँव में पैदा हुए थे । परन्तु उनका यह कथन सर्वथा निराधार है ।

46. मिश्रबन्धुओं ने इसका जन्म सं० १७४२ और पं० रामनरेश त्रिपाठी ने सं० १७३४ बताया है । ये दोनों ही संवत् अशुद्ध हैं ।

पंगु गिरि गाहैं मूक निगम निवाहैं क्यों न
पयोनिधि पैर्‌यौ चाहैं मिसरी की पुतरी ।।[47]

परन्तु बादशाह को यह रचना कुछ कम पसन्द आई । उसने कहा कि ईश-महिमा की जो बात इस कविता में कही गई है वह यथार्थ है । परन्तु कोई ऐसी कविता बनाओ जिसमें काव्य-चमत्कार हो । इसलिए वृन्द ने उक्त समस्या को लेकर उसकी पूर्त्ति दूसरी प्रकार से फिर की—

कुंभज करूर ता की कठिन करूर दीठि,
देखि कै डरानौ न हलानौ इत उतरी ।
परिहरि लहर गहर गाज छाँड़ दई
वृन्द कहैं भई गति अदीठि अश्रुत री ।।
अमल मुकुर कैसो अचल सुभाव रह्यौ
रह्यौ दवि भई वात ऐसी अद्‌भुत री ।
होकर निसंक अंक ऐसो दाव पाय क्यों न
पयोनिधि पैर्‌यौ चाहै मिसरी की पुतरी ।।[48]

औरंगजेब काव्य का विरोधी था । कवियों को वह न धन देता था, न प्रोत्साहन । परन्तु वृन्द की यह अनूठी उक्ति उस पर भी वार कर गई और उसके मुँह से सहसा निकल पड़ा "खूब ! खूब !!" । बादशाह ने वृन्द को बहुत सा धन दिया । उन्हें अपना दरबारी कवि बनाया और अपने पौत्र अजीमुश्शान का अध्यापक नियुक्त कर गौरवान्वित किया । कालान्तर में जब अजीमुश्शान बंगाल का सूबेदार होकर उधर गया तब वृन्द को भी अपने साथ ले गया । तभी से ये उसके पास रहने लगे ।

अनुमानतः सं० १७६४ में किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह ने वृन्द को अजीमुश्शान से माँग लिया और अच्छी भू-संपत्ति देकर स्थायी रूप से किशनगढ़ में बसा दिया । वहीं सं० १७८० में इन्होंने अपनी इहलोक-लीला संवरण की । इनके वंशज अभी तक किशनगढ़ में विद्यमान हैं । वंश-वृक्ष इस प्रकार है:—

---

47. वृन्दरत्नावली की हस्तलिखित प्रति, पृ० ५
48. वही; पृ० ६

सहदेवजी
|
रूपजी
|
वृन्दजी
|
वल्लभजी
|
सनेहीरामजी
|
दौलतरामजी
|
अखैरामजी
|
हंसराजजी
|
गोवरधनजी
|
घनश्यामजी
|
श्रीपतिजी (वर्तमान)[49]

वृन्द व्रजभाषा के कवि थे । इन्होंने व्रजभाषा में ग्यारह ग्रंथ वनाये जिनके नाम निम्न हैं---

(१) समेतसिखर छंद (२) भावपंचाशिका (३) शृंगारशिक्षा (४) पवनपचीसी (५) हितोपदेशसंधि (६) वृन्द-सतसई (७) वचनिका (८) सत्य-स्वरूप (९) यमक सतसई (१०) हितोपदेशाष्टक और (११) भारत कथा ।

(१) समेतसिखर छंद । यह वृन्द की सर्वप्रथम रचना है । इसका प्रणयन सं० १७२५ में हुआ था । इसमें ८ छप्पय हैं जिनमें जैन संप्रदाय के प्रसिद्ध तीर्थ 'समेतसिखर' का माहात्म्य कहा गया है ।

(२) भावपंचाशिका । यह ग्रंथ औरंगावाद में लिखा गया था । इसका रचना-काल सं० १७४३ है । इसमें पचीस दोहे और पचीस सवैये हैं जिनमें शृंगार रस के विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया गया है । यद्यपि यह ग्रंथ छोटा है तथापि इसकी रचना सरस एवं हृदय-ग्राहिणी है और वृन्द की विलक्षण कवित्व शक्ति का परिचय देती है । भाषा भी इसकी बहुत प्रौढ़, परिष्कृत और श्रुतिमधुर है । इसकी रचना के संबंध में एक

49. वृन्दरत्नावली की हस्तलिखित प्रति, पृ० १

कथा प्रसिद्ध है। जब वृन्द औरंगाबाद में थे तब वहाँ के किसी काव्य-प्रेमी एक सज्जन ने कवियों की एक सभा बुलाई और वृन्द को भी उसमें सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया। जिस समय सब लोग एकत्र हो गये, वहाँ यह प्रश्न उठा कि इस सभा में सबसे अच्छा कवि कौन है और किसको उसका सभापति बनाया जाय। बहुत देर तक वाद-विवाद होता रहा। जब कुछ भी तय नहीं हो पाया तब उस सज्जन ने कहा कि आज की रात में जो त्वरित सर्वश्रेष्ठ कविता बनाकर लायगा वही कवि-शिरोमणि समझा जायगा और उसी को सभापति का पद मिलेगा। रात भर में वृन्द ने यह ग्रंथ बनाया और प्रातःकाल होते ही सबों के सामने जाकर पढ़ा। वृन्द के सामने किसी दूसरे कवि का रंग न जमा और वही सर्वसम्मति से सर्वश्रेष्ठ कवि माने गये[50]। वृन्द के शिष्य किशनगढ़ के मीर मुंशी माधोदास ने भी अपने 'शक्ति-भक्ति-प्रकाश' में इस घटना की ओर संकेत किया है—

कारज औ कारण तें भिन्न-भिन्नाभिन्न है,
अखिल को पालक सुजोति चिदानंद को।
तुंही गति तुंही मति तुंही सुख संपति है,
विपति विहंडनी बन्धी है अनंद को॥
तेरे गुन गाइवे को विधि हू समर्थ नाहि,
तो कहा गति मेरी रसना मतिमंद की।
भक्तन की पति राखि ताकै सुनै दीन सारी,
पति राखी सेरना कै राखी कवि वृन्द की॥

(२) शृंगार-शिक्षा। यह नायिका-भेद का ग्रंथ है। इसकी रचना मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब के वज़ीर नवाब मुहम्मद खां के पुत्र मिर्ज़ा कादरी की कन्या को पातिव्रत-धर्म की शिक्षा देने के लिये सं० १७४८ में की गई थी। मिर्ज़ा कादरी अजमेर का सूबेदार था। इस ग्रंथ में उसकी भी प्रशंसा की गई है—

ता को मिरजा कादरी, मन विधि सरस सुजान।
बीर धीर बानैत बर, सुबुधि सरूप निधान॥
कुलमनि मिरजा कादरी, रस चातुर रिझवार।
दाता ज्ञाता भोगता, अति चित परम उदार॥[51]

50. वृन्दरत्नावली की हस्तलिखित प्रति; पृ० १०–११
51. वही; पृ० १२

इसके प्रारंभ में वर-कन्या के गुण-दोषों आदि का वर्णन है । फिर नवोढ़ा, मुग्धा, प्रोषितपतिका, इत्यादि नायिकाओं के लक्षण बताये गये हैं । अंत में १६ शृंगारों का बहुत ही सरस, व्यवस्थित और काव्य-कलापूर्ण वर्णन किया गया है । बहुतेरे कवियों के समान न तो इस ग्रंथ में भरती के शब्द एवं वाक्य हैं और न कहीं भावावेश में आकर कवि ने लोक-मर्यादा का उल्लंघन किया है ।

(४) पवन-पचीसी । इसमें पवन संबन्धी २५ छप्पय हैं । शृंगार रस की रचना है । इसका रचना-काल सं० १७४८ है । इसकी भाषा मधुर और प्रवाहयुक्त है । रचना सरस और मनोहारिणी है । इसमें से एक छप्पय यहाँ दिया जाता है—

पटु पराग पट पीत, सुखद सुंदर तन सोहत ।
वंसी वंस बजाय, सुमन खग मृग मन मोहत ।।
करि विलास रस केलि, लता ललिता पुंजन में ।
सदन सदन संचरत, धीर विचरत कुंजन में ।।
जल न्हात पदमिनी वास हर, चढ़त सुविटप कदंव पर ।
माधव स्वरूप माधव-पवन, कहत वृंद आनंद कर ।।

(५) हितोपदेशसंधि । यह संस्कृत भाषा के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'हितोपदेश' की चतुर्थ कथा का पद्यानुवाद है । इसकी रचना कवि ने सं० १७५९ में किशनगढ़ के महाराजा मानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र महाराजकुमार राजसिंह के लिये की थी:—

निधि सर मुनि ससि के वरस, माह वहुल दिव सेस ।
द्वादसि कौं पूरन भयो, भाषा हित उपदेस ।।
मान महीपति कुंवर मणि, राजसिंह जस नेत ।
वृन्द लिख्यो ढाका नगर, राज सुतन के हेत ।।[52]

(६) वृन्द-सतसई । यह वृन्द की बहुत प्रसिद्ध रचना है । इसी का दूसरा नाम दृष्टान्त-सतसई है । यह मुग़ल सम्राट औरंगजेब के पौत्र शाह अजीमुश्शान के अनुरोध से लिखी गई थी । इसका निर्माण सं० १७६१ में ढाका शहर में हुआ था जैसा कि कवि ने स्वयं ही इसके अंत में लिखा है—

---

52. वृन्दरत्नावली की हस्तलिखित प्रति; पृ० २०

संवत ससि रस वार ससि, कातिक सुदि ससिवार।
सातैं ढाका सहर में, उपज्यौ इहै विचार ॥

इसमें सातसौ से कुछ ऊपर दोहे हैं । प्रत्येक दोहा सद्विचारपूर्ण एवं मार्मिक है और उससे वृन्द के व्यावहारिक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है । नीति-सदाचार संबन्धी बातों को वृन्द ने ऐसे मनमोहक ढंग से व्यक्त किया है कि वे तुरन्त पाठक के हृदय में घर कर लेते हैं । प्रसाद गुण की बहुलता होने के कारण साधारण पढ़े-लिखे लोग भी इन दोहों का मर्म समझ लेते हैं और स्थान-स्थान पर उद्धृत कर अपने पक्ष तथा प्रसंग का समर्थन करते है । दोहे लोकोक्तियां बन गई हैं । हिंदी-साहित्य में अधुना सात-आठ सतसइयां प्रचलित हैं । काव्य-प्रेमियों में सभी का यथेष्ट आदर भी है । परन्तु सर्वप्रियता की दृष्टि से यदि देखा जाय तो बिहारी-सतसई के अनन्तर वृन्द-सतसई ही उत्कृष्ट रचना ठहरती है ।

(७) वचनिका । यह ग्रंथ किशनगढ़ के महाराजा मानसिंह के आदेशानुसार उनके पिता महाराजा रूपसिंह की ख्याति को अक्षय रखने के लिये बनाया गया था । इसका रचनाकाल सं० १७६२ है । इसमें उस युद्ध का वर्णन है जो मुग़ल सम्राट शाहजहाँ के पुत्रों में दिल्ली के राजसिंहासन के लिये धौलपुर के मैदान में हुआ था । यह एक ऐतिहासिक ग्रंथ है । इसके प्रारंभ में कन्नौज के महाराज राव सीहाजी से लेकर महाराजा रूपसिंह तक के राठौड़ नरेशों की वंशावली दी गई है । तदंतर महाराजा रूपसिंह के शौर्य-पराक्रम का वर्णन किया गया है । इस लड़ाई में महाराजा रूपसिंह ने दारा का पक्ष लिया था । औरंगजेब की सेना को काटते-काटते वे उसकी सवारी के हाथी तक जा पहुँचे और वहाँ पैदल होकर हौदे की रस्सियाँ तलवार से काटने लगे । यह देखकर औरंगजेब के बहुत से सैनिक एक साथ उन पर टूट पड़े और उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले[53] । जैसा वीरतापूर्ण इतिहास है वैसी ही वीरतापूर्ण भाषा-शैली में यह लिखा भी गया है । वीर रस का कवि ने ऐसा सबल, ओजपूर्ण और लोमहर्षण वर्णन किया है कि पढ़कर भुजाएँ फड़कने लगती हैं ।

(८) सत्यस्वरूप । यह ग्रंथ सं० १७६४ में रचा गया था । इसमें बादशाह औरंगजेब के मरने पर दिल्ली के राजसिंहासन के लिये शाहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह), आजम, कामबख्श इत्यादि की लड़ाई का वर्णन है । इस युद्ध में किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह बहादुरशाह के पक्ष में लड़े थे । उनके हाथ से आजम के पक्षवर्त्ती नवाब, राजा-महाराजा इत्यादि

53. मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत, पृ० ५३

लड़नेवालों के १७ हौदे खाली हुए, जिनमें दतिया के राजा दलपत और कोटा के महाराव राजा रामसिंह मुख्य थे। इस युद्ध की विजय का सुयश महाराजा राजसिंह को मिला[54]। इतिहास की लगाम को मानते हुए भी कवि ने अपनी प्रतिभा से सत्यस्वरूप को एक उच्चकोटि का काव्य-ग्रंथ बना दिया है। भाषा, भाव, छंद, शब्द-विन्यास सभी का इस में अपूर्व सम्मिलन हुआ है। उदाहरण—

वह षट्मुख यह एक मुख कासीस्वर
वा को जस कोटिन जगत नर अनि हैं।
वह महेन्द्र यह सेनापति महेन्द्र ज्यों व
आगरे में उमड़ लर्‌यौ अद्भुत गति हैं॥
तव सिवरानी सिव सोच कर्‌यौ वीत्यौ सुनि
कहैं कवि वृन्द बोल गगन गनपति हैं॥
दौरि गिरवानन पुकार गिरिजा सौं कही
तेरो यह दलपन नाहिं राव दलपति हैं॥

(६) यमक सतसई। इसमें कुल सातसौ दोहे हैं जिनमें अधिकांश दोहे शृंगार रस के हैं। प्रत्येक दोहे में यमक अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वृन्द-सतसई में कवि ने भाव-प्रदर्शन की ओर विशेष ध्यान दिया है पर इसकी रचना उन्होंने कविता के भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों को सामने रखकर की है। अतएव इसमें कला-चातुर्य और भाव-सौंदर्य्य दोनों का सुन्दर संयोग पाया जाता है। उदाहरण-स्वरूप चार दोहे यहाँ दिये जाते हैं—

कुंज-बिहारी कुंज में, छरी छरी दिखराइ।
चित उचकी चितवत चकी, परतन परतन पाइ॥
बनी मांहि राधे बनी, बनी बनी की भाँति।
भई देखि सिर उन मनी, सबै उनमनी कांति॥
दही दही बेचत दही, दही दही यह जाति।
गोरस मिस गोरस हिँ हरि, मग मँडराति डराति॥
एरी ए कौनैं कही, कौनैं कही रिसाइ।
मौनैं गहि कौनैं रही, अब गौनैं तैं आइ॥

54. वृन्दरत्नावली, की हस्तलिखित प्रति, पृ० ३१

(१०) [illegible]। इसमें आठ घनाक्षरी हैं। शांत रस का ग्रंथ है। इसमें रचनाकाल का उल्लेख नहीं है। परन्तु इसकी प्रौढ़ता को देखते हुए यह वृन्द की वृद्धावस्था की रचना जान पड़ती है। कविता इस ढंग की है—

[illegible]
[illegible] है।
[illegible]
[illegible] सुजान है॥
[illegible]
[illegible] कल्यान है।
[illegible]
[illegible] नारायन है॥

(११) भारत-कथा। यह महाभारत की एक कथा का सारांश है। यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीम जब सरोवर से पानी पीते हैं और फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं तब युधिष्ठिर आकर उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं। इसी घटना को लेकर यह छोटा-सा ग्रंथ लिखा गया है। रचना साधारण है। इसका प्रारंभ इस तरह होता है—

एक समय वन गहन में, विचरत पाँचों वीर।
भई तृषातुर द्रौपदी, नाहिं पायौ नीर॥
नृप आज्ञा ते जो गये, नीर भरन नर वीर।
सरवर में वानी सुनी, भये नकिन नित धीर॥

मिश्रबन्धु-विनोद में 'प्रताप-विलास' नामक एक और ग्रंथ को वृन्द रचित बतलाया गया है[55]। परन्तु यह वृन्द की प्रामाणिक रचना नहीं है। किसी दूसरे कवि की कृति है जिसे भ्रमवश वृन्द की मान लिया गया है[56]।

(२६) उदयचन्द्र—ये खरतरगच्छीय जैन यति थे। इनका 'अनूपरसाल' नामक एक ग्रंथ उपलब्ध हुआ है जो बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह के लिए बनाया गया था;—

55. पृ० ४९६
56. इनके 'बारहमासा' नामक एक और ग्रंथ का पता अभी अभी लगा है।

लड़नेवालों के १७ हौदे खाली हुए जिनमें दतिया के राजा दलपत और कोटा के महाराव राजा रामसिंह मुख्य थे। इस युद्ध की विजय का सुयश महाराजा राजसिंह को मिला[54]। इतिहास की लगाम को मानते हुए भी कवि ने अपनी प्रतिभा से सत्यस्वरूप को एक उच्चकोटि का काव्य-ग्रंथ बना दिया है। भाषा, भाव, छंद, शब्द-विन्यास सभी का इस में अपूर्व सम्मिलन हुआ है। उदाहरण—

वह षटमुख यह एक मुख कासीस्वर
वा की जस कोटिन जगत नर अति हैं।
वह महेन्द्र यह सेनापति महेन्द्र ज्यों व
आगरे में उमड़ लर्यों अद्भुत गति हैं॥
तब सिवरानी सिव मोच करयौ बीत्यौ मुनि
कहें कवि वृन्द बोल गनन गनपति हैं॥
दौरि गिरवानन पुकार गिरिजा सौं कही
तेरो यह दलपत नाहिं राव दलपति हैं॥

(६) यमक सतसई। इसमें कुल सातसौ दोहे हैं जिनमें अधिकांश दोहे शृंगार रस के हैं। प्रत्येक दोहे में यमक अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वृन्द-सतसई में कवि ने भाव-प्रदर्शन की ओर विशेष ध्यान दिया है पर इसकी रचना उन्होंने कविता के भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों को सामने रखकर की है। अतएव इसमें कला-चातुर्य और भाव-सौंदर्य्य दोनों का सुन्दर संयोग पाया जाता है। उदाहरण-स्वरूप चार दोहे यहाँ दिये जाते हैं—

कुंज-बिहारी कुंज में, छरी छरी दिखराइ।
चित उचकी चितवत चकी, परतन परतन पाइ॥
बनी मांहि राधे बनी, बनी बनी की भाँति।
भई देखि सिर उन मनी, सबै उनमनी कांति॥
दही दही बेचत दही, दही दही यह जाति।
गोरस मिस गोरस हि हरि, मग मँडराति डराति॥
एरी ए कौनैं कही, कौनैं कही रिसाइ।
मौनैं गहि कौनैं रही, अब गौनैं तैं आइ॥

---

54. वृन्दरत्नावली, की हस्तलिखित प्रति, पृ० ३१

(१०) हितोपदेशाष्टक। इसमें आठ घनाक्षरी हैं। शांत रस का ग्रंथ है। इसमें रचनाकाल का उल्लेख नहीं है। परन्तु इसकी प्रौढ़ता को देखते हुए यह वृन्द की वृद्धावस्था की रचना जान पड़ती है। कविता इस ढंग की है—

नैननि की जोति जो लौं नीकै कै निहार हरि
सुन लै पुरान जो लौं सुनै तुव कान है।
रसना रसीली जो लौं रमत रसीले बैन
तो लौं हरि गुन गाय जो पै तू सुजान है॥
कांपै नाहिं कर तो लौं भली भाँति सेवा कर
पायन प्रदक्षिना दे जो लौं बलवान है।
जरा जकरै तैं कहा करि हो कहत वृन्द
भज भगवान जो लौं देह सावधान है॥

(११) भारत-कथा। यह महाभारत की एक कथा का सारांश है। यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीम जब सरोवर से पानी पीते हैं और फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं तब युधिष्ठिर आकर उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं। इसी घटना को लेकर यह छोटा-सा ग्रंथ लिखा गया है। रचना साधारण है। इसका प्रारंभ इस तरह होता है—

एक समय वन सघन में, विचरत पाँचों वीर।
भई तृषातुर द्रौपदी, चाहै पायौ नीर॥
नृप आज्ञा तैं जो गये, नीर भरन सर तीर।
सरवर में वानी सुनी, भये चकित चित धीर॥

मिश्रबन्धु-विनोद में 'प्रताप-विलास' नामक एक और ग्रंथ को वृन्द रचित बतलाया गया है[55]। परन्तु यह वृन्द की प्रामाणिक रचना नहीं है। किसी दूसरे कवि की कृति है जिसे भ्रमवश वृन्द की मान लिया गया है[56]।

(२६) उदयचन्द—ये खरतरगच्छीय जैन यति थे। इनका 'अनूपरसाल' नामक एक ग्रंथ उपलब्ध हुआ है जो बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह के लिए बनाया गया था;—

---

55. पृ० ४९६
56. इनके 'बारहमासा' नामक एक और ग्रंथ का पता अभी अभी लगा है।

विक्रमपुर पति कर्ण-सुत, श्री अनूप भूपाल ।
राजै गाजै बाजतै, रसिक सिरोमनि लाल ॥
ता हित चित करिकै रच्यौ, ग्रंथ अनूपरसाल ।
कवि कोकिल कुल सुख सदन, सरस मधुर सुविसाल ॥[57]

यह ११६ छंदों का एक छोटा-सा रीति-ग्रंथ है । इसका रचना-काल सं० १७२८ है[58] । इसमें तीन खण्ड हैं जिनको स्तवक नाम दिया गया है । विषय-विभाजन इस प्रकार हुआ है—

प्रथम स्तवक	नायिका-वर्णन	पद्य संख्या ६१
द्वितीय स्तवक	नायक-वर्णन	पद्य संख्या २०
तृतीय स्तवक	अलंकार-वर्णन	पद्य संख्या ३५

अनूपरसाल की भाषा चलती हुई व्रजभाषा है । विषय-वस्तु की दृष्टि से इसमें कोई विशेष बात नहीं है; पर रचना सरस और मार्मिक है । उदाहरण—

नैन भौंह चितवनि चलनि, बाँकी मुर मुसकानि ।
अंगनि अति सुकुमारता, ऐसे ललित बखानि ॥
रम्य वस्तु को देखि सुनि, ह्वै चंचल अति चित्त ।
कवि-कोविद जन कै मतै, सोइ कुतूहल मित्त ॥

(२७) **नंदराम**—ये बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह (सं० १७२६-५७) के आश्रित थे । इन्होंने 'अलसमेदिनी' नामक एक रीति-ग्रंथ बनाया था जिसकी एक हस्तलिखित प्रति बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में है । इसकी पुष्पिका में इसे महाराजा अनूपसिंह की रचना बताया गया है[59] पर वास्तव में यह नंदराम की कृति है जैसा कि इसके एक दोहे से स्पष्ट है—

नृप अनूप के हुकुम तें, कोविद कवि नंदराम ।
रस-ग्रंथन को सार ले, करत ग्रंथ अभिराम ॥[60]

---

57. अ० सं०पु० बीकानेर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १, पद्य ३ और ५
58. "संवत सतरै सै अठइसै", तृतीय स्तवक, पद्य ३५
59. इति श्रीमन्महाराजा श्रीअनूपसिंह विरचितायामलसमेदिन्यामलंकार निरूपण तृतीय प्रमोद संपूर्ण (हस्तलिखित प्रति पत्र ११)
60. अ० सं० पु० की हस्तलिखित प्रति, प्रथम प्रमोद, पद्य ५०

अलसमेदिनी में तीन प्रमोद (खंड) हैं, और ११५ पद्य । इसके प्रथम प्रमोद में नायिका-वर्णन, द्वितीय प्रमोद में नायक-वर्णन और तृतीय प्रमोद में अलंकार-वर्णन है । ग्रंथ की रचना जैन कवि उदयराज के उल्लिखित 'अनूपरसाल' के अनुकरण पर हुई प्रतीत होती है पर उसकी उपेक्षा विषय की गहराई इसमें कुछ अधिक है । इसके उदाहरण भी अपेक्षाकृत सुन्दर हैं । भाषा का नमूना यह है ।

पिय आवन सुनि हरप हिय, भूषन वसन संवार।
होइ और की और जहँ, सो बिभ्रम रस सार ।।
जानबूझ अनजान ज्यौं, पिय स्यौं बूझै तीय।
यहै मुग्धता कवि कहै, सुनि राखौ धरि हीय ।।

(२८) नरहरिदास—ये रोहड़िया शाखा के चारण लक्खाजी के पुत्र थे । इनका जन्म संवत १६४८ में और देहान्त सं० १७३३ में हुआ था[61] । ये जोधपुर-नरेश महाराजा गजसिंह के आश्रित थे जिन्होंने इनको टहला नामक एक ग्राम प्रदान किया था । ये दो भाई थे । छोटे भाई का नाम गिरधरदास था । नरहरिदास के कोई संतान नहीं थी । इस संबन्ध में इनकी भावज ने इन्हें एक दिन जब ताना दिया तब क्रुद्ध होकर इन्होंने उसे कहा कि संतान तो मेरे नहीं है जिससे मेरे मरने के पश्चात् मेरा नाम दुनियाँ में रह सके । परन्तु विधाता ने मुझे कविता करने की अलौकिक शक्ति प्रदान की है जिसके द्वारा मैं अपने नाम को अमर कर दूंगा । इसी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए इन्होंने अपने विख्यात ग्रंथ 'अवतारचरित्र' की रचना की जिससे अभी तक इनका नाम चला आता है ।

'अवतारचरित्र' चारण जाति का एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रंथ है । इसको पढ़े बिना एक चारण कवि की शिक्षा अपूर्ण समझी जाती है । इसकी चित्रित और अचित्रित दोनों प्रकार की हस्तलिखित प्रतियाँ एक भारी संख्या में राजस्थान के चारण-भाटों के घरों, राजभंडारों आदि में पड़ी मिलती हैं । यह ग्रंथ ज्ञानसागर प्रेस, बंम्बई से प्रकाशित भी किया जा चुका है । इसमें रॉयल अठपेजी आकार के ५२० पृष्ठ हैं । छपाई बहुत अशुद्ध हुई है ।

यह ग्रंथ १७३३ में लिखा गया था जैसा कि इसके अंतिम पद्य से विदित होता है—

---

61. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५१६

सातरह सै तैतीस निगम संवत उच्चारन ।
रितु ग्रीषम आषाढ़ मास पख कृष्ण सुधारन ॥
बनि आठैं तिथि भौमवार सिधि जोग समंगल ।
पुहकरारन्य प्रसिद्ध मध्य पूजित भुवमंडल ॥
अवतारचरित्र चोईस ए त्रिजग सुजस जग बिस्तर्यो ।
कवि दास दास नरहरि सुकवि कृत उधार अपनो कर्यो ॥[62]

इसमें चौबीस अवतारों का सविस्तार वर्णन है । इसकी छंद संख्या ६००० से ऊपर है—

सोर सहस अरु आठ नें, इकसठ ऊपर आनि ।
छंद अनुष्टुप करि सकल, पूरन ग्रंथ प्रमानि ॥[63]

इसमें साटक, कवित्त, दोहा इत्यादि कई प्रकार के छंदों का प्रयोग आ है पर पद्धरि छंद सबसे अधिक देखने में आता है । इसकी भाषा बहुत ोधी-सादी ब्रजभाषा है जिसमें कहीं-कहीं राजस्थानी का भी पुट दृष्टि-ोचर होता है । इसकी वर्णन-शैली इतनी सरस और रोचक है कि पढ़ने में किसी कार की कठिनाई नहीं होती । पाठक बड़ी सरलतापूर्वक विषय-वस्तु को हृदयंगम करता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है और उसे इस बात का भान ही हीं रहता कि वह सैकड़ों छंदों को पारकर आगे निकल गया है । भाषा को ऐसी सरलता और वर्णन की ऐसी स्वाभाविकता बहुत कम चारण कवियों की रचनाओं में पाई जाती है ।

परन्तु 'अवतारचरित्र' में भावों की मौलिकता का प्रायः अभाव-सा है । इसमें दिया हुआ रामावतार का वर्णन तो एक प्रकार से तुलसी कृत रामचरित-मानस का अनुवाद ही प्रतीत होता है । उदाहरण—

चाप चढ़ावन कौ गनै, सकै न अवनि छुड़ाइ ।
भई उर्व्वी निर्व्वीर अब, कह्यौ जनक अकुलाइ ॥
जौ जानत निर्व्वीर भुव, तौ न करित पन एहु ।
पावक प्रजलत गेह अब, तब कहँ पइयत मेहु ॥
रहो कुँवारी कन्यका, लिखत ब्रिरंच ललार ।
पन कीनौ जौ परिहरौं, तो उपहास संसार ॥[64]

—अवतारचरित्र

62. अवतारचरित्र, पृ० ५६६
63. वही; पृ० ५६६
64. वही; पृ० १२५

रहा चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सकै छुड़ाई ॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी। वीर विहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि बैदेहि बिवाहू ॥
सुकृत जाय जो प्रन परिहरऊँ। कुँवरि कुँवारि रहै का करऊँ ॥
जो जनतेउँ विन भट महि भाई। तो प्रन करि करतेउँ न हँसाई ॥

—रामचरितमानस

और भी—

इहाँ रघुवीर सरित तट आए। बोहित लावहु कीर बुलाए ॥
आनत नाँहि नाव इहि ओरा। किरिवा राम अग्र कर जोरा ॥
बोले कीर तहाँ मृदु वानी। जगत प्रसिद्ध हमहुँ पुनि जानी ॥
राम-चरन-रज परस पुनीता। उड़ी सिला जब गगन अभीता ॥
द्विज सराप त्रिय पाहन देही। सो रज परसत मिली सनेही ॥
उपल तैं तोल कछु अधिकाई। गनियत काठ माँझ गरुवाई ॥
वहि गति जो मम नाव उड़ाई। वामा पुत्र मरहिं बिललाई।
पुनि हौं दीन नाव कहँ पाऊँ। जन कुटुंब किहि आस जिवाऊँ ॥[65]

—अवतारचरित्र

मांगी नाव न केवट आना। कहै तुम्हार मर्म मैं जाना ॥
चरण-कमल-रज कहँ सब कहई। मानुस करणि मूरि कछु अहई ॥
छुवत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई ॥
यह प्रति पालहुँ सब परिवारू। नहिं जानहुँ कछु आन कवारू ॥
तरणिहु मुनि घरनी होइ जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई ॥

—रामचरितमानस

जहाँ कहीं तुलसी कृत रामचरितमानस से भिन्नता है वहाँ केशव कृत रामचन्द्रिका को आधार बनाया गया है। जैसे—

मुहि देख कहा क्रन मन मलीन। लै करै अंग ही अंग लीन ॥
मम वचन सुनहु सीता समोह। कहा राम काज एती अदोह ॥
आकास वास देखै न कोइ। संपेखै बातुल होइ सोइ ॥
कृतघ्न कुदानि कुकन्या कुकंत। अर्पैस सैर्व तिहि छलै अंत ॥

65. अवतारचरित्र; पृ० १६१

मुंडी जटीनि कौं महा मित्र । चाहै अनाथ दीनै चरित्र ॥
दूखै जु तुमहि तिहि लोक देइ । अंतर उदास उहि चरित गहि ॥
निर्गुण अनाथ लीजै न नाम । ठिक नाहि न जाकौ ठौर ठाम ॥
जाकै न मात कोउ पिता जान । नित खोज करत मुनि मुनि निदान ॥[66]

—अवतारचरित्र

सुनौ देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै । इतो सोच तो राम काजै न कीजै ॥
वसै दंडकारण्य देखे न कोऊ । जु देखे महा बावरो होय सोऊ ॥
कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै । हितू नग्न मुंडीन ही को सदा है ॥
अनाथै सुन्यौ मैं अनाथानुसारी । वसै चित्त दंडी जटी मुंडधारी ॥
तुम्हें देवि दूखै हितू ताहि मानै । उदासीन तो सों सदा ताहि जानै ॥
महा निर्गुणी नाम ताको न लीजै । सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै ॥

—रामचंद्रिका

कहते हैं कि अवतार-चरित्र के अतिरिक्त नरहरिदास ने १६-१७ ग्रंथ और भी बनाये थे पर उन सबका पता नहीं लगता । केवल नीचे लिखे छह ग्रंथ मिलते हैं—

(१) दसमस्कंध भाषा (२) रामचरित्र कथा (३) अहिल्या-पूर्व-प्रसंग (४) वाणी (५) नरसिंह-अवतार-कथा और (६) अमरसिंह रा दूहा[67] ।

(२९) मानजी—हिंदी-साहित्य में कवि मान का नाम बहुत प्रसिद्ध है । परन्तु इनका जीवन-वृत्तान्त अभी तक अंधकार में है । मिश्रबंधुओं ने इनका कविता-काल सं० १७१७ माना है और लिखा है कि इन्होंने 'राजविलास' नाम का एक ग्रंथ बनाया जिसमें महाराणा मानसिंह का वर्णन है[68] । लेकिन उनके ये दोनों ही कथन निर्मूल हैं । मानजी का कविता-काल सं० १७१७ नहीं है, न 'राजविलास' में महाराणा मानसिंह का वर्णन है । मेवाड़ में मानसिंह नाम का कोई राजा हुआ ही नहीं । इसी प्रकार इनकी जाति के संबन्ध में भी बहुत भ्रम फैला हुआ है । कोई भाट और कोई चारण बताते हैं । वास्तव में ये जैन यति थे जैसा कि कविराजा बाँकीदास ने लिखा है: "मानजी जती राजविलास नांव रूपक राणा राजसिंह रौ वणायौ"[69] ।

66. अवतारचरित्र, पृ० २६१
67. यह अन्तिम ग्रंथ डिंगल का है ।
68. मिश्रबंधु-विनोद; पृ० ४६९ (भाग दूसरा)
69. राजस्थानी वातां; सूरजमल-नागरमल पुस्तकालय कलकत्ता की हस्तलिखित प्रति; वात-संख्या १११

उदयपुर के सरस्वती भंडार में 'राजविलास' की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। यह सं० १७४६ की लिखी हुई है और इस ग्रंथ की मूल अथवा प्राचीनतम प्रति है। उसकी पुष्पिका में इनका नाम मानसिंह लिखा हुआ है[70]। इससे मालूम पड़ता है कि इनका पूरा नाम मानसिंह था और कविता में ये अपना नाम केवल मान लिखा करते थे।

कवि मान कृत राजविलास नागरीप्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। इसमें मेवाड़ के महाराणा राजसिंह (प्रथम) का जीवन चरित्र वर्णित है। इसकी रचना का प्रारंभ सं० १७३४ में हुआ था—

सुभ संवत दस सात वरस चौतीस वधाई।
उत्तम मास असाढ़ किसन सत्तमि सुखदाई॥
विमल्ल पाख नखतार सिद्धि नव जोग सगत्तौ।
हरषकार सिधि हस्त रासि कन्या ससि रत्तौ॥
तिन दौस मान विधुरा सुमति कीनौ ग्रन्थ मंडान कवि।
श्रीराजसिंह महाराण कौ रचिवहिं जस जौ चंद रवि॥[71]

इसमें अठारह छंद हैं। ये विलास कहे गये हैं। इसकी छंद-संख्या १५२७ है। प्रथम विलास में सरस्वती-वंदना के अनंतर चित्तौड़ के मोरी राजा चित्रांगद और बापा रावल् का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है जो दंतकथाओं पर आधारित है। द्वितीय विलास में बापा रावल् से लेकर महाराणा राजसिंह तक के मेवाड़ के राजाओं की वंशावली दी गई है। यह वंशावली अशुद्ध है और इतिहास में दी हुई वंशावली से मेल नहीं खाती। तदुपरांत १४८ वें छंद से महाराणा राजसिंह का जीवन-वृत्तान्त प्रारंभ होता है जो ठेठ अंतिम विलास तक चला गया है। यह समूचा वृत्तांत बहुत रोचक एवं काव्य-गुणों से ओत-प्रोत है और इसमें ऐतिहासिक तथ्यों का बहुत संरक्षण किया गया है। महाराणा राजसिंह की प्रशंसा में कहीं-कहीं अत्युक्ति अवश्य हुई है। जैसे—

अजमेरह अग्गरी धाक दिल्ली धर धुज्जै।
रिनथंभह रक्खलै लक्खि लाहौर लुट्टिज्जै॥

---

70. इति श्री राजविलास ग्रंथ संपूर्णः श्रीरस्तु। लिखितं कवि श्रीमानसिंहजी। श्रीचित्रकूटाधिपति राणा श्रीजयसिंहजी विजयमान राज्ये सं० १७४६ कातिक दीपमालिका बुधवासरे॰॰॰॰॰॰।

71. राजविलास, पृ० ८

खुरासान संधार थाट मुल्तान थरक्कै।
चंदेरी चलचलय भीनि उज्जैनि भग्गकै॥
मंडवह धार धरनी मिलय हुलय हेम गुजरात डर।
औदकै साहि औरंग अनि राण सबल राजेस बर॥[72]

परन्तु यह राजाश्रित कवियों की परम्परागत काव्य-शैली का अनुकरण मात्र है। इस प्रकार का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन चंद, भूषण इत्यादि हिंदी के और भी कई कवियों ने किया है।

राजविलास की भाषा ब्रजभाषा है। परन्तु इसमें डिंगल भाषा के शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। इसी लिये कुछ लोग इसे डिंगल का ग्रंथ मानते हैं। परन्तु यह डिंगल का ग्रंथ नहीं है; पिंगल का है। क्योंकि इसके व्याकरण का ढाँचा ब्रजभाषा का है।

इसकी भाषा बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं अलंकार-बहुल है। उसमें थोड़ी-सी कठोरता अवश्य है जो वीर रस के वर्णन में तो अरुचिकर प्रतीत नहीं होती पर शृंगार रस के वर्णन में कानों पर हलका-सा आघात करती है। यथा—

कहियै श्री राजकुँआरी अच्छी अपछरि अनुहारी।
वपु सोभा कंचन वरनी हरिहर ब्रह्मा मनहरनी॥
सचि सुरभि सकोमल सारी कच्छरि मनु नागिनि कारी।
सिर मोती मांग सुसाजैं राखरी कनकमय राजैं॥
लखि सीस फूल रवि लोपैं अष्टमि ससि भाल सु ओपैं।
विन्दुली जराउ बखानी अलि भृकुटि ओपमा आनी॥
छवि अंजन दृग मृगछौंना तपनीय श्रुति जरित तरौंना।
नकवेसरि सोहति नासा पयनिधि सुत लाल प्रकासा॥[73]

राजविलास में प्रसाद एवं माधुर्य्य की मात्रा न्यून और ओज की अधिक है। वर्णन की स्वाभाविकता, कथा का संगठन, इतिहास की सत्यता आदि गुणों का जो सुन्दर स्वरूप इसमें प्रस्तुत किया गया है वह बहुत ही प्रभावपूर्ण और प्रांजल है। महाराणा राजसिंह अपने समय के विख्यात हिंदू नेता थे। ऐसे वीर सेनानी का जीवनचरित्र जिस तल्लीनता से लिखा जाना

72. वही; २६२
73, वही; पृ० १०४

चाहिये वैसी ही तल्लीनता से इसमें लिखा गया है । सचमुच यह हिंदी का गौरव ग्रंथ है ।

(३०) कुलपति मिश्र—ये जयपुर के महाराजा रामसिंह (प्रथम) के आश्रित कवि जाति के माथुर चौबे थे । ये आगरा के रहनेवाले थे जहां से आकर जयपुर में बस गये थे । अपने 'संग्रामसार' ग्रंथ में इन्होंने अपना थोड़ा-सा परिचय दिया है जिसके अनुसार इनका वंश-क्रम इस प्रकार बनता है: अभयराम-तारापति-मयालाल-हरिकृष्ण-परशुराम-कुलपति[74]

कहा जाता है कि कुलपति मिश्र 'बिहारी-सतसई' के रचयिता कविवर बिहारीलाल के भानजे थे[75] । यह भी प्रसिद्धि है कि जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह ने इनको जागीर और कविवर की पदवी प्रदान की थी । परन्तु इन बातों का कोई विश्वसनीय प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ । ये तैलंग भट्ट पंडितराज जगन्नाथ के शिष्य थे जिनसे इन्होंने संस्कृत और भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था । इनका रचना-काल सं० १७२४-४६ है । इनके वंशज जयपुर में विद्यमान हैं । कुछ अलवर में भी पाये जाते हैं ।

कुलपति के वंशवालों का कहना है कि इन्होंने ५० ग्रंथ बनाये थे । परन्तु इस समय इनके सभी ग्रंथ नहीं मिलते । केवल १० ग्रंथों का पता है जिनके नाम ये हैं—

(१) रसरहस्य (२) दुर्गाभक्तिचन्द्रिका (३) संग्रामसार (४) युक्ति-तरंगिणी (५) नखशिख (६) दुर्गासप्तसती का अनुवाद (७) सरूप-कुरूप-संवाद (८) आसाम की बाढ़ (९) सेवा की बाढ़ और (१०) विष-अमृत का झगड़ा ।

इनमें रसरहस्य, संग्रामसार, और युक्तितरंगिणी ये तीन कुलपति मिश्र की अत्युत्कृष्ट रचनाएँ हैं । शेष सामान्य कोटि की हैं । रस-रहस्य एक-रीति ग्रंथ है । यह सं० १७२७ में रचा गया था । इसमें आठ अध्याय हैं जिनमें काव्य के विभिन्न अंगों का अत्यन्त मौलिक एवं शास्त्रीय विधि से विवेचन किया गया है । 'संग्रामसार' महाभारत के द्रोण-पर्व का पद्यानुवाद है । इसका निर्माण महाराजा रामसिंह की आज्ञा से सं० १७३३ में हुआ

---

74. प्रथम परिच्छेद, पद्य १५-१९

75. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ४७२ (दूसरा भाग)

था । यह राजस्थान का बहुत लोकप्रिय ग्रंथ है । 'युक्तितरंगिणी' में सात सौ दोहे हैं । ग्रंथ शृंगार रस की उक्तियों से लबालब भरा हुआ है ।

कुलपति मिश्र की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है । मँजाई उसकी अवश्य कुछ कम हुई है परन्तु है वह बहुत व्यवस्थित और विषयानुकूल । इनकी कविता ललित, कलापूर्ण और प्रसाद गुण-समन्वित है ।

(३१) दयालदास—ये मेवाड़-निवासी जाति के राव थे । इनका लिखा हुआ 'राणारासौ' नाम का एक ग्रंथ मिला है जिसमें मेवाड़ का इतिहास वर्णित है । इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त है जो सं० १९४४ की लिखी हुई है । यह उदयपुर के महता जोधसिंह के पुस्तकालय में वर्तमान है । इसकी पुष्पिका में इसको सं० १६७५ की लिखी हुई प्रति की प्रतिलिपि बताया गया है:—

"सं० १६७५ का माहा विद ५ सुभं लिखतां भाई सोभजी । यह राणारासा की पुस्तक जिला रासमी के परगना गलूंड के फूलेस्या मालियों के राव दयाराम की पुस्तक सं० १६७५ की लिखी हुई से राजस्थान उदयपुर में गोलवाल विष्णुदत्त ने सं० १९४४ का मगसर विद ४ के दिन पंडितजी श्रीमोहनलालजी-विष्णुलालजी पंड्या के पुस्तकालय के लिये लिखी ।"

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'राणारासौ' सं० १६७५ में अथवा इससे पूर्व लिखा जा चुका था जो असंभव है । क्योंकि इसके अंतिम भाग में महाराणा कर्णसिंह (सं० १६७६-८४) का विस्तारपूर्वक वर्णन दिया हुआ है और इसके प्रारंभ में मेवाड़ के महाराणाओं की जो वंशावली दी हुई है उसमें महाराणा जगतसिंह (सं० १६८४-१७०९), महाराणा राजसिंह (सं० १७०९-३७) तथा महाराणा जयसिंह (सं० १७३७-५५) का नामोल्लेख है जो सब सं० १६७५ के बाद में हुए हैं:—

सीसोदा जगपति नृपति, ता सुत राजड़ रानु ।
तिनके निरमल बंस कौ, करचौ प्रसंसु बखानु ।।
जगतस्यंघ घर जनमियौ, राजस्यंघ अवतार ।
बीस चारि तुम जानियो, कीने ध्रम्म अपार ।।
राजस्यंघ के पाट अब, बैठे जैस्यंघ रान ।
धरा ध्रम्म अवतार लै, मनौं भान के भान ।।[77]

---

76. सत्रहसै तैतीस सम, गुन जुत फागुन मास ।
कृष्ण पक्ष तिथि सप्तमी, कियो ग्रंथ परकास ।।

77. हस्तलिखित प्रति, पत्र १ और ६

यदि यह ग्रंथ सं० १६७५ से पूर्व लिखा गया होता तो इसमें उपरोक्त महाराणाओं का उल्लेख होना असंभव था । अतः पुष्पिका में जो संवत् दिया गया है वह भ्रमात्मक है और राव-भाटों की करतूत जान पड़ती है । वास्तव में यह ग्रंथ महाराणा जयसिंह के शासन-समय में लिखा गया है और इसका रचना-काल सं० १७३७ और सं० १७५५ के मध्य में है । मिश्रबंधुओं ने इसका प्रणयन-काल सं० १६७७ लिखा है[78] । परन्तु उल्लिखित कारणों से वह भी अशुद्ध है ।

राणारासौ के अतिरिक्त दयालदास का लिखा हुआ दूसरा कोई ग्रंथ नहीं मिलता । 'मिश्रबंधु-विनोद' में इनके रचे दो ग्रंथ और बताये गये हैं—(१) अकल को अंग और (२) रासौ को अंग[79] । परन्तु ये ग्रंथ इनके नहीं हैं । दयालदास नामक एक रामसनेही संत के लिखे हुए हैं जिनको भ्रम से इनका मान लिया गया है ।

पृथ्वीराज रासौ की रचना के पश्चात् उसकी वर्णन-शैली पर ऐतिहासिक काव्य लिखने की राजस्थान के चारण, भाट, राव आदि जातियों के लोगों में एक प्रथा-सी चल पड़ी थी । यह राणारासौ उसी का नमूना है । इसमें मेवाड़ का इतिहास दिया गया है जो ८७५ छंदों में समाप्त हुआ है । इसके आदि में सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से लेकर महाराणा जयसिंह तक के राजाओं की वंशावली दी गई है जिसमें अनेक नाम कपोल-कल्पित हैं । तदंतर बापा, कुंभा, प्रताप इत्यादि कुछ मुख्य-मुख्य राजाओं का सविस्तर वृत्तान्त दिया है । विशेषकर इनकी लड़ाइयों का वर्णन बहुत ही विस्तार के साथ हुआ है । एक नई बात इसमें यह मिलती है कि बापा रावल् को एकलिंग का पुत्र बताया गया है—

एकलिंग के एक सुतु, ताकौ बापा नामु ।
रावल बखत बिलूंद हुव, अपूरब आठौं जामु ।।[80]

इसी प्रकार की और भी अनेक त्रुटियाँ इसमें पाई जाती हैं । अतएव इतिहास की दृष्टि से यह एक बिलकुल भ्रष्ट रचना है ।

परन्तु साहित्य की दृष्टि से यह ग्रंथ पढ़ने योग्य है । इसकी भाषा में सरसता और प्रवाह है । वर्णन में गति और वेग है—

---

78. मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० ३६०

79. वही, पृ० ३६०

80. हस्तलिखित प्रति, पत्र ३

धमक धसति धर धरनि, धुनानि धरनी धीरजु तजि ।
फटति फुटति छबि छुटति, टुटति सुर [illegible] जुटति [illegible] ॥
चँपति कँपति तन तपति, ढंपति जल छाति उछरति ।
ठिलति खिलति विलविलति, गिलति तल वितल तुरुक भगि ॥
पायांन रान अमरेस दल, कनि दयाल नल किति कहि ।
छिन छिन छिपंत कच्छप छाहु, उदार नृपय जिमि मधुप अहि ॥[81]

(३२) हरिनाभ—ये जयपुर राज्यांतर्गत खंडेला (बड़ा पाना) के निवासी और वहां के राजा केसरीसिंह के आश्रित थे । ये जाति के पारीक ब्राह्मण थे । शांडिल्य इनका गोत्र था । रचनाकाल सं० १७५४ है ।[82] इन्होंने 'केसरीसिंह-समर' नाम का एक ग्रंथ बनाया जिनमें शेखावत-वंश-प्रवर्तक राव शेखाजी से आरंभ कर राजा केसरीसिंह तक के इतिहास का वर्णन किया गया है । केसरीसिंह ने औरंगजेब की हिंदू-हित-विघातिनी नीति का विरोध किया था । इस पर वह इनसे नाराज हो गया और सं० १७५४ में अपने सेनापति अब्दुल्ला खां को एक बड़ी सेना देकर इनके विरुद्ध लड़ने को भेजा । खंडेले के पास हरीपुरे के मैदान में भारी संग्राम हुआ जिसमें केसरीसिंह अपने अनेक योद्धाओं सहित वीरगति को प्राप्त हुए और उनकी चार राणियां उनके साथ सती हुईं ।

केसरीसिंह-समर में छप्पय, हनूफाल, मोतीदाम, भुजंगप्रयात आदि विविध छंदों का प्रयोग किया गया है । इसकी पद्य-संख्या ५६१ है । ग्रंथ यद्यपि वर्णनात्मक है तथापि मार्मिक स्थलों पर कवि ने अपनी सहज रससिक्त लेखनी से अनेक सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं । युद्ध-वर्णन, सतीचरित्र-वर्णन आदि बड़े ही मनोहारी हैं । इसी प्रकार सती-परी-प्रश्नोत्तरी के वर्णन में भी कवि ने अपनी स्वाभाविक सूक्ष्मदर्शिता और काव्यशक्ति का अच्छा परिचय दिया है । रचना का नमूना यह है—

चढ़िकै तब राज निसांन कियै, हय ऊपर पाखर डारि दियै ।
तब ही अंग सूरन कौच कसै, जमराज भयंकर रूप जिसै ॥
जरिकै गज पाखर साज बनै, मनु पाय चलै सु पहार घनै ।
सजिकै सब तोपन अग्ग कियै, उड़ि खूग्न धूरिन छाय रियै ॥[83]

---

81. वही; पत्र ८६
82. उपाध्याय प्रगट्यौ जबै कुल पारीख उजाल ।
    नाम कत्त सांची कह्यौ संवत चौवन साल ॥
    —केसरीसिंह-समर, दूसरा प्रकरण, छंद २०६
83. केसरीसिंह-समर, पहला प्रकरण, छंद २०६

(३३) अभयराम—ये सनाढ्य जाति के कवि केशवदास के पुत्र थे और रणथंभोर के समीपवर्त्ती वैहरन गांव के रहनेवाले थे।[84] इनके बनाये 'अनूपश्रृंगार' ग्रंथ का पता है। यह सं० १७५४ में रचा गया था[85]। इसके अध्ययन से विदित होता है कि ये बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह के बड़े कृपापात्र थे और उन्होंने इनको 'कविराय' की पदवी प्रदान की थी[86]। उन्हीं की आज्ञा से इन्होंने इस ग्रंथ का निर्माण किया था।

अनूपश्रृंगार रीति-काव्य है। इसमें ५५० से कुछ ऊपर छंद हैं जिनमें से आदि के ४० छंदों में कवि ने अपने आश्रयदाता महाराजा अनूपसिंह और उनके पूर्ववर्त्ती राजाओं का वृत्तांत दिया है। तदनंतर अपना वंश-परिचय देकर मुख्य विषय प्रारंभ किया है।

इसकी भाषा राजस्थानी से प्रभावित व्रजभाषा है। रचना मधुर और काव्य-कला-पूर्ण है। उदाहरण—

सोहत सुपेत टीकी लगति ललाट नीकी
हँसति कपोल गाड़ मुख सोत साल की।
कहै अभैराम कंठ मोतिन की माल उर
बीच सुमनि को हार गोरी छवि हाल की॥
जैसी चंद चांदनी में बनी है सुपेत सारी
चली है प्यारी हो बड़ाई हंस चाल की।
कहाँ लौं बखानौं अभिसार यह रूप चारु
ससि हू की जोति सो मिलि है जोत भाल की॥

---

84. खांभ पदारथ चंद ये, जिनके केसवदास।
मेर साहि सब विधि भले, भाषा चतुर निवास॥
अभैराम जिनकै भये, सब कवि ताकै दास।
रणथंभौर गढ़ की तनी, गांव वैहरन वास॥
जाति सनावढ़ गोति करैया, अभै नाम हरि दीनौं।
जासों कृपा करि महराजा, जब गिरंथ यह कीनौं॥
—अनूपरसाल, पद्य ४३–४५

85. संवत सतरैसे चौपना, ग्रंथ जन्म जग जानि।
—अनूपरसाल, पद्य ४८

86. कृपा करि महाराज ने, बकस्यो बहुत बनाय।
रोग हरे सब दुःख गयो, नाम दियो कविराय॥
—अनूपरसाल, पद्य ४७

(३४) मुरली—ये मेवाड़ राज्य के कोठारिया ठिकाने के रावत उदयभान के आश्रित थे। इनके लिखे 'अश्वमेध-कथा' और 'त्रिया-विनोद' नामक दो ग्रंथों का पता है[87]। लेकिन इनसे इनके व्यक्तिगत जीवन पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। केवल इतना ही सूचित होता है कि उक्त ग्रंथों को इन्होंने क्रमशः मेवाड़ के महाराणा जयसिंह और कोठारिया के स्वामी चौहाण उदयभान के लिये बनाया था।

'अश्वमेध-कथा' कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा आदि विविध छंदों में लिखा हुआ एक वर्णनात्मक ग्रंथ है। इसकी छंद संख्या ७६३ है। यह सं० १७५५ में लिखा गया था[88]। इसमें धर्मराज युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ का वर्णन है जो बहुत ही रोचक एवं प्रभावोत्पादक है।

'त्रिया-विनोद' ग्रंथ बहुत बड़ा है। इसमें १५८१ छंद हैं। इसका निर्माण-काल सं० १७६३ है[89]। इसमें मदनपुरी के श्रीपाल नामक एक सेठ की व्यभिचारिणी स्त्री की कहानी है। कहानी काल्पनिक है। इसके अंतर्गत कई कथा-उपकथाएँ हैं जिनमें स्वैरिणी स्त्रियों का चरित्रोद्घाटन किया गया है।

ये दोनों ग्रंथ राजस्थानी से प्रभावित व्रजभाषा में हैं। विषय की गहराई इनमें कुछ कम देख पड़ती है पर हैं दोनों ही बहुत सरस और मार्मिक।

(३५) आनन्दराम—नाजर आनन्दराम बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह के मुसाहब थे[90]। इनका रचना काल सं० १७६१ है। ये संस्कृत, व्रजभाषा, राजस्थानी आदि कई भाषाओं के विद्वान थे और गद्य एवं पद्य दोनों लिखते थे। इनके रचे तीन ग्रंथ मिले हैं—भगवद्गीता भाषा टीका, गीता माहात्म्य भाषा टीका और एकादशी कथा भाषा।

उपर्युक्त तीनों ग्रंथ व्रजभाषा गद्य में हैं और इस दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं। गद्य का नमूना यह है—

---

87. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग १, पृ० १० और ३६

88. सतरैसे पच्चावने, कौतुक उत्तम वास।
विद पप आठम वार रवि, कीनो ग्रंथ प्रकास ॥
—अश्वमेधकथा, पद्य ७६१

89. संमत सत्रे तीरपट, कातिक सुदि सुभ मास।
वार वुद्ध तिथि सप्तमी, कीनौ ग्रंथ प्रकास ॥
—त्रियाविनोद, पद्य १३

90. ओझा; बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ० २८५

प्रथम श्रीकृष्ण जू नै विचार किया। अर्जुन कौ देह अरु आत्मा कै विवेक तै सोक उपज्यौ। ऐसे जानि के ज्ञानोपदेस के निमित्त श्री भगवान कहते हैं। हे अर्जुन जा वस्तु कौ सोक कर्यौ ना चाहीयै ता वस्तु कौ तूं सोक करत है। अरु तूं बुद्धिवंत कैसौ वचन कहत है पै विनु समझयो हठ करे है। तातैं जे वुद्धिवंत विवेकी हैं ते मुए अरु जीवते को सोच नाहीं करत काहे तैं जनम मरन दोनों मिथ्या हैं।

(३६) प्रियादास—ये गलता के प्रसिद्ध महात्मा कृष्णदास पैहारी की शिष्य-परंपरा में भक्तवर नाभादास के चेले थे। इनके बनाये दो ग्रंथ मिलते हैं: (१) भक्तमाल की टीका[91] और (२) भागवत् भाषा[92]। इनमें 'भक्तमाल की टीका' हिंदी साहित्य की बहुत प्रसिद्ध रचना है। इसका नाम 'भक्तिरसबोधिनी टीका' है। इसका निर्माण इन्होंने अपने गुरु नाभादास की इच्छानुसार सं० १७६९ में किया था जैसा कि इनके अंतिम छंद से विदित होता है—

नाभा जू को अभिलाप पूरण लै कियो मैं तो
ताकी साखी प्रथम सुनाई नीकै गाई कै।
भक्ति विश्वास जाके ता ही को प्रकास कीजै
भीजै रंग हियौ लीजै तनक लड़ाई कै॥
संवत प्रसिद्ध दस सात सत उनहत्तर
फालगुण मास वदी सप्तमी बिताई कै।
नारायणदास सुख-रासि भक्तमाल लै कै
प्रियादास दास उर वसौ रहौ छाई कै॥

भक्तिरसबोधिनी टीका में ६२४ छंद हैं जिनमें प्रायः सभी घनाक्षरी हैं। मूल ग्रंथ में जिन भक्तों का वर्णन बहुत संक्षेप में हुआ है उन्हीं का प्रियादास ने विस्तारपूर्वक कथन किया है और उनके विषय में कुछ नवीन बातें भी लिखी हैं। इन नवीन बातों में कुछ ठीक हैं पर अधिकांश ऐसी हैं जो इतिहास की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। उदाहरण के लिये मीरांबाई के प्रसंग को लीजिये। इसमें इन्होंने मुग़ल सम्राट अकबर और मीरां की भेंट का वर्णन किया है जिसमें काल-दोष स्पष्ट है। वास्तव में मीरां-बाई और अकबर समकालीन नहीं थे। कुछ अन्य भक्तों के विषय में भी

91. श्यामसुन्दरदास; हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० ९२
92. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३५९

इसी तरह की कपोल-कल्पित और अनैतिहासिक बातें लिखी मिलती हैं जो उनकी भक्ति की महिमा को बढ़ाकर बतलाने के लिये लिखी गई प्रतीत होती हैं। इतना सब होते हुए भी ग्रंथ उपयोगी और पठनीय है।

(३७) मानसिंह—ये उदयपुर के रहनेवाले जैन यति थे। स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने इनको विजयगच्छ ग्राम का[93] निवासी और मिश्रबन्धुओं ने विजयगढ़[94] का रहनेवाला बताया है। इन दोनों का आधार मानसिंह कृत 'बिहारी-सतसई की टीका' की एक हस्तलिखित प्रति की यह पुष्पिका है—

"इति श्री बिहारीदास कृत सतसई। दोहरा सम्पूर्ण सतसईरा। टीका कृतं विजैगछै कवि मानसिंह जू। टीका कीनी उदयपुर मध्ये। ग्रंथाग्रंथ ४५०५ इति संख्या। सम्पूर्ण। शुभं भवतु। श्री श्री सं० १७७२ वर्षे वैशाख वदि कृष्ण पक्षे द्वितीयायां लिखतं प्रतापविजय लिपिकृतं अजमेर मध्ये। श्रीरस्तु॥ श्री"॥[95]

परन्तु 'विजैगच्छ' किसी ग्राम विशेष का नाम नहीं है। वह जैन समाज के एक गच्छ अर्थात समुदाय विशेष का नाम है। इस प्रकार के गच्छ जैन समाज में ८५ हैं[96]। जैसे, तपागच्छ, खरतरगच्छ, सागरगच्छ, विमलगच्छ आदि। अतएव रत्नाकरजी की भूल तो स्पष्ट ही है। मिश्रबन्धुओं की भूल 'विजयगच्छ' के 'च्छ' को 'ढ़' पढ़ने के कारण हुई है। इसलिये इस पर टीका-टिप्पणी व्यर्थ है।

मानसिंह नाम के एक जैन कवि मेवाड़ में और भी हो गये हैं जिनका लिखा 'राजविलास' ग्रंथ प्रसिद्ध है। उनका परिचय पहले दिया जा चुका है। वे इनसे भिन्न कवि हैं। परन्तु रत्नाकरजी ने इन दोनों को एक व्यक्ति माना है और यह मानकर 'राजविलास' के रचनाकाल (सं० १७३४) को 'बिहारी-सतसई की टीका' का भी रचनाकाल स्थिर किया है[97]। परन्तु यहां उन्होंने भूल की है। 'राजविलास' के रचयिता मानसिंह और 'बिहारी-सतसई

---

93. नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, भाग ६ अंक १, पृ० १०१

94. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ७७२ (भाग दूसरा)

95. नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, भाग ६, अंक १, पृ० १०२

96. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज मारवाड़, सन् १८९५ (पृ० १३१) में ८५ गच्छों के नाम दिये गये हैं। परन्तु इनके अलावा भी कुछ गच्छ और हैं।

97. नागरीप्रचारिणी-पात्रिका, भाग ६, अंक १, पृ० १०१-१०३

के टीकाकार मानसिंह दोनों एक व्यक्ति नहीं हो सकते । क्योंकि इन की भाषा-शैली सर्वथा भिन्न है । राजविलास की भाषा बहुत प्रौढ़ परिष्कृत है और उसमें सैकड़ों शब्द राजस्थानी भाषा के प्रयुक्त हुए हैं। खाल, ठाण, सिंघाला, पंखाला, दुहेलो, कंकाल, दड़बड़, पीथल, र पसाव, अरदास, नाहर, आल, थाट, रिधू, मंगल, अवीह, नेगी, द इत्यादि। इसके विपरीत-'बिहारी सतसई' की टीका की भाषा बहुत शि है पर वह शुद्ध ब्रजभाषा है और उसमें एक शब्द भी कहीं राजस्थानी भा प्रयुक्त नहीं हुआ है ।

मिश्रबन्धुओं ने इन दोनों मानसिंहों को दो भिन्न व्यक्ति माना परन्तु उन्होंने एक दूसरा भ्रम पैदा कर दिया है। वह यह कि 'बिहारी-स के टीकाकार मानसिंह का रचनाकाल सं० १८२३ लिख दिया है[98] जो भारी भूल है। क्योंकि 'बिहारी-सतसई की टीका' की दो ऐसी हस्तलि प्रतियाँ मिली हैं जो सं० १८२३ से बहुत पहले की लिखी हुई हैं । की पुष्पिका ऊपर उद्धृत की जा चुकी है । दूसरी उदयपुर के सर भंडार में है । उसका लिपिकाल सं० १७७३ है[99]। अतः मिश्रबन्धुओं बताया हुआ संवत् ठीक नहीं है । अनुमानतः इनका रचना-काल १७७० है।

मानसिंह कृत 'बिहारी-सतसई की टीका एक साधारण श्रेणी की है। यह ब्रजभाषा गद्य में है। इसमें बिहारी के ७१३ दोहों की टीक गई है। टीका क्या है, दोहों के अर्थ अपनी समझ के अनुसार कर दिये है जिनसे बिहारी के मर्म को समझने में विशेष सहायता नहीं मिलत मालूम होता है कि मानसिंह 'बिहारी-सतसई' को नायक-नायिका-भेद का समझते थे। अतएव उन्होंने बिहारी के प्रत्येक दोहे के भाव को खींच कर राधाकृष्ण पर घटाने की चेष्टा की है जिससे अनेक स्थानों पर का अनर्थ हो गया है। उदाहरण—

कहा भयो जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ।
उड़ी जाउ कितऊ तऊ, गुड़ी उड़ायक हाथ ॥

---

98. मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० ७७२
99. "इति श्री बिहारीकृत सतसही संपूर्णः समाप्त सं० १७७३ वर्षे सुदि ८ शुक्रवासरे लिखतियां" (पत्र ११८)

टीका

श्रीकृष्ण मथुरा नगर तें श्रीराधाजु को संदेस कहि धीरज दिढ़ावै है ॥ कहा० ॥ मो म० ॥ तुम्ह हम्ह बिछुरे तो कहा भयो । तुम्हारो हमारो तो मन एक ही संग रहै है ॥ उड़ी जा० कितहूँ दूरं-तर उड़ी जाऊं हूँ ॥ गुड़ी उ० ॥ गुड़ी उड़ायक उड़ावनहारे के हाथ में है । गुड़ी अर उड़ावन हार एकठे ही मानीयें ॥ त्युं आपन मन करी एकठे ही हैं । बीछुरे नहीं । इत्यर्थ ॥[100]

और भी—

प्यासे दुपहर जेठ के, फिरै सबै जल सोध ।
मुरधर पाइ मतीर ही, मारू कहत पयोध ॥

टीका

श्रीराधाजु श्रीकृष्ण सौं खंडित वै कहै है ॥ प्यासे० ॥ फिरे०॥ काम रूप दुपहर जेठ के प्यासे ॥ सबै सुंदर गोपीरूप जल सबै ठौर सो धर फिरै ॥ मुर० ॥ मारू ॥ अहो श्रीकृष्ण तुम मरुधर देस के मारू पासे लोक त्यों कुवरी मतीर फल मारू मूढ़ पयोधि ॥ पाइ समुद्र रूप महालक्ष्मी सी कहो हो । इत्यर्थ ॥[101]

फिर भी ग्रंथ महत्त्व का है, क्योंकि व्रजभाषा गद्य के इतिहास संबन्धी अध्ययन के लिये इसका उपयोग किया जा सकता है ।

(३८) अजीतसिंह—ये जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) के पुत्र थे और उनकी मृत्यु से कोई तीन माह बाद सं० १७३५ में पैदा हुए थे। इनका जन्म होने के पूर्व ही मुग़ल सम्राट औरंगजेब ने इनके पैतृक राज्य पर अपना अधिकार कर लिया था और फिर इनका जन्म होने के बाद वह इनको मरवाकर इनके राज्य को बिलकुल निगल जाने की चेष्टा में था । परन्तु उसकी इस कुभावना का पता राठौड़ दुर्गादास आदि इनके कुछ स्वामि-भक्त सरदारों को लग गया था । इसलिये उन्होंने इनको जोधपुर के बाहर

100. स० भं० उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पृ० १९
101. वही; पृ० ११७

छिपाये रखा और इनकी बाल्यावस्था का अधिकांश मेवाड़ तथा सिरोही राज्यों में व्यतीत हुआ ।

परन्तु औरंगजेब के मरते ही इन्होंने अपने सरदार-सामंतों की सहायता से जोधपुर पर पुनः अधिकार कर लिया और मुग़ल अधिकारियों को वहाँ से निकाल बाहर किया ।

महाराजा की मृत्यु एक अत्यन्त करुणाजनक स्थिति में हुई । एक दिन जब कि ये अपने रनवास में सोये हुए थे इनके द्वितीय पुत्र बख्तसिंह ने इनको मार डाला । यह दुर्घटना सं० १७८१ आषाढ़ सुदि १३ को हुई । महाराजा के शव के साथ इनकी कई राणियों, उपपत्नियों, दासियों, नाजिरों आदि ने प्राण दिये[102] । इनका दाह-संस्कार मंडोर में हुआ जहाँ एक थड़ा (स्मारक) अब तक विद्यमान है जो विशाल और दर्शनीय है ।

महाराजा अजीतसिंह बड़े वीर और कष्ट-सहिष्णु राजा थे । साथ ही उदारता की मात्रा भी इनमें यथेष्ट पाई जाती थी । समय-समय पर इन्होंने अपने सरदारों, ब्राह्मणों, चारण-भाटों आदि को गाँव तथा भूमि प्रदान कर उनका समुचित सत्कार किया था । परन्तु इनमें एक बहुत बड़ा अवगुण यह था कि ये कान के कुछ कच्चे थे । इसलिये लोगों के बहकाने में जल्दी आ जाते थे । बहकाने में आकर ही इन्होंने अपने सच्चे और स्वामिभक्त सहायक राठौड़ दुर्गादास को अपने देश से निर्वासित कर दिया था जिसके कारण इनकी निंदा अभी तक चली आती है—

(क) महाराज अजमाल री, जद पारख जाणीह ।
दुरगो देसाँ काढ़ियो, गोलाँ गागाणीह ।।

(ख) अण घर आही रीत, दुरगो देसाँ काढ़ियो ।

महाराजा डिंगल और पिंगल दोनों में निष्णात थे । इनके बनाये हुए पिंगल भाषा के ग्रंथों के नाम ये हैं—गुणसागर, भाव-विरही और दुर्गापाठ भाषा[103] ।

---

102. ओझा; जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६००

103. मिश्रबंधु-विनोद में इनके बनाये अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार मिलते हैं: राजरूप का ख्याल, निर्वाणी दोहा, ठाकुराँ रा दोहा, भवानी सहस्रनाम और फुटकर दोहे ।

इनका स्वच्छ और चलती हुई ब्रजभाषा पर अच्छा अधिकार था । इनकी कविता बहुत कोमल एवं रसीली है और कला उसमें अपने प्रकृत सौंदर्य के साथ विहार कर रही है ।

(३६) बुधसिंह—ये हाड़ा राजपूत बूंदी-नरेश रावराजा अनिरुद्ध-सिंह के पुत्र और भावसिंह के पौत्र थे । इनका जन्म सं० १७४२ में हुआ था और अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् सं० १७५२ में बूंदी के राजसिंहासन पर आसीन हुए थे । ये बड़े वीर, समर-पटु और आत्माभिमानी पुरुष थे । मुग़ल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के अनंतर उसके बेटों में दिल्ली के राज-सिंहासन के लिये जो संग्राम हुआ उसमें बहादुरशाह (शाहआलम) की विजय इन्हीं के कारण हुई थी । महामति कर्नल टॉड के शब्दों में "केवल बुधसिंह के पराक्रम ही से शाहआलम अपने प्रतिद्वंद्वियों को जीतकर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ सका । कोटे का रामसिंह और दतिया का दलपत बुंदेला तोप के गोलों से उड़ गये और शाहज़ादा आजम अपने बेटे बेदारबख्त समेत इस लड़ाई में बुधसिंह की तलवार खाकर सदा के लिये क़ब्र में सो गया ।" इससे प्रसन्न होकर शाहआलम ने इनको महाराव राजा की पदवी, पाँच हजारी मनसब, बहुत से आभूषण और गागरौन, छबड़ा, शाहाबाद, शेरगढ़ आदि ५४ परगने दिये[104] ।

इनका देहान्त सं० १७६६ में हुआ था । इनके छह पुत्र थे जिनमें से चतुर्थ पुत्र उमेदसिंह इनके उत्तराधिकारी हुए ।

महाराव राजा बुधसिंह कला एवं सौन्दर्य के उपासक और ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे । इनका बनाया हुआ 'नेहतरंग' हिंदी-साहित्य की एक अनमोल निधि है । यह एक रीति-काव्य है । इसका निर्माण सं० १७८४ में हुआ था जैसा कि इनके अंतिम दोहे से स्पष्ट है—

सतरह सै चौरासिया, नवमी तिथि ससिवार ।
शुक्ल पक्ष भादौं प्रगट, रच्यौ ग्रंथ सुखसार ।।

नेहतरंग १४ खंडों में विभाजित है जिनको तरंगें नाम दिया गया है । इसमें कुल ४४६ पद्य हैं; लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्त-सवैया में दिये गये हैं । विषय-वस्तु का विभाजन चौदह तरंगों में इस प्रकार हुआ है—

104. मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत, पृ० ६६

तरंग	विषय	पद्य संख्या
प्रथम	अनुकूलादि नायक पद्मन्यादि नायिका निरूपण	२७
दूसरी	चतुरविधि दरसन नि०	१३
तीसरी	नायिका मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ादि नि०	४५
चौथी	अष्ट नायिका नि०	२०
पांचवीं	मिलन स्थान नि०	२४
छठी	सखी जन कर्म चेष्टा स्वयं दूती नि०	८५
सातवीं	मान मोचन विविध नि०	३४
आठवीं	प्रवास विरह नि०	५४
नवीं	भाव-हाव नि०	५५
दसवीं	रस निरूपण नि०	३६
ग्यारहवीं	चतुरविधि कवित्त वृत्ति आदि नि०	२०
बारहवीं	षट् रितु नि०	१३
तेरहवीं	पिंगल मत छंद नि०	१६
चौदहवीं	अलंकार नि०	४

ग्रंथ अमुद्रित होने से अभी तक प्रकाश में नहीं आ पाया है। परंतु साहित्य की दृष्टि से यह एक निष्कलंक रचना है। भाषा, भाव, काव्य-सौष्ठव सभी का इसमें सुन्दर संयोग हुआ है। बुधसिंह के जीवन का अधिकांश भाग रणांगण में और राजनीतिक तथा घरेलू षड्यंत्रों में व्यतीत हुआ था। साहित्य-रचना के लिये ऐसे प्रतिकूल वातावरण में भी उन्होंने 'रसतरंग' जैसी अमूल्य कृति का निर्माण किया यह उनके लिये कम गौरव की बात नहीं है। 'रसतरंग' में से दो कविताएँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

एक समैं बलि राधिका नैं कुबिजा को प्रसंग कह्यौ हितहू सैं।
बोलि हँसी मिलि संग सखी कछु जाहर कैं हरि संगजहू सैं॥
ता छिन की उपमा इमि भाइ रही मिलि कैं उन आननहू सैं।
सोधि सबैं बसुधा की सुधा उपटी मनु सोधि सुधाधरहू सैं॥

ऊधौ एक सुनिवे हैं अरज हमारी और
एते पर उनहूँ कैं मन में न आती हैं।
भौंन भयौ भाखसी सौ साखसी सो दिन भयौ
राकसी सी रैनि भई देखें न सुहाती हैं॥

कहियो जू एती दई मन में जो आवै सबै तू
देखन जो पावै केती कहिबै न आती है।
चढ़ि चढ़ि नेह निधि कढ़ि कढ़ि लाज हूम
भूले पानी सफरी ज्यों बढ़ि बढ़ि जाती है॥

(४०) श्रीकृष्ण भट्ट—ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मण था। इनका जन्म सं० १७२५ में हुआ था। ये पहले बूंदी के महाराव राजा बुधसिंह (सं० १७५२—६६) के आश्रित थे। परंतु बाद में जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह (सं० १७५६—१८००) इनको उनसे मांगकर आमेर ले आये थे[105]। ये संस्कृत एवं भाषा के परम विद्वान और मंत्र-शास्त्र के विलक्षण ज्ञाता थे। इनके मंत्र-चमत्कार संबंधी अनेक कथाएं लोगों के मुंह से सुनने में आती हैं। कवि भी ये पूरे थे। इनकी कविता से प्रसन्न होकर महाराजा जयसिंह ने इनको 'कवि कलानिधि' की उपाधि और एक गांव उदक में दिया था।

भट्टजी संस्कृत और व्रजभाषा दोनों में काव्य-रचना करते थे। इनके बनाये हुए व्रजभाषा के ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) अलंकारकलानिधि (२) सांभर-युद्ध (३) जाजव-युद्ध (४) बहादुर विजय (५) वृत्तचंद्रिका (६) शृंगाररसमाधुरी (७) विदग्धरसमाधुरी (८) जयसिंह-गुण-सरिता (९) रामचंद्रोदय (१०) रामरासा (११) दुर्गा भक्तितरंगिनी (१२) नखशिख वर्णन (१३) तैत्तरीयादि उपनिषदों का अनुवाद।[106]

(४१) नंदराम—ये मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) के आश्रित कवि जाति के ब्राह्मण थे। इनके 'शिकारभाव' और 'जगविलास' नामक दो ग्रंथों का पता है जो क्रमशः सं० १७९० और १८०२ में लिखे गये थे।[107]

---

105. बूंदीपति बुधसिंह सौं, लाये मुख सौं जांचि।
रहे आइ आंबेर में, प्रीति रीति बहु भांति॥
—राधारूप-चंद्रिका

106. इनके रचे संस्कृत-ग्रंथों के नाम ये हैं: (१) वेदान्तपंचविंशति (२) सुंदरीस्तवराज (३) ईश्वर-विलास महाकाव्य और पद्यमुक्तावली।

107. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग पहला, पृ० १७०

शिकारभाव में ६४ छंद हैं जिनमें महाराणा जगतसिंह के आखेट का वर्णन किया गया है। जगविलास ४०४ छंदों का बड़ा ग्रंथ है। इसमें महाराणा जगतसिंह की दिनचर्या, उनके वैभव, राज-प्रबंध आदि का वृत्तान्त है। ये दोनों ग्रंथ ब्रजभाषा में हैं और साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ इतिहास की दृष्टि से भी उपयोगी हैं। नंदराम का एक छप्पय यहां दिया जाता है:

निहो नगग श्रीरान, मान अति मोद महामन।
भूपन वगन मँगाय, पहरि सब ताम तेज तन॥
सर सरूप सोहंत, काम कोटिक सम राजै।
नग झगमगत अपार, तेज पूरन गुन गाजैं॥
सब भांति भांति बानिक बनें, गिनैं जान किन पें जात्रहि।
उद्दित प्रकास जनु उदयगिरि, सहस किरन सोहंत सहि॥

(४२) राजसिंह—ये किशनगढ़ के महाराजा मानसिंह के पुत्र और महाराजा रूपसिंह के पौत्र थे। इनका जन्म सं० १७३१ में हुआ था। ये बड़े वीर और नीति-निपुण राजा थे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली के राज-सिंहासन के लिये जब उसके पुत्रों में युद्ध हुआ तब ये मुअज्जम के पक्ष में लड़े थे और इस लड़ाई की विजय का श्रेय इन्हीं को मिला था। फिर जब मुअज्जम के मरने पर सं० १७६६ में उसके चारों बेटे आपस में लड़ने लगे ये शाहजादे अजीमुश्शान के साथ थे। इन्होंने अंत समय तक उसका साथ दिया और जब वह अपने हाथी समेत रावी नदी में डूबकर मर गया तब निराश होकर घर लौटे। इनकी मृत्यु सं० १८०५ में हुई थी।

महाराजा राजसिंह कवि थे। कविता करना इन्होंने अपने आश्रित कवि वृन्द से सीखा था। इनके बनाये दो ग्रंथों का पता है—बाहुविलास और रसपायनायक। बाहुविलास में श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है। रसपायनायक में अविवेकिनी और विवेकिनी नामक दो सखियों का संवाद लिखकर नायकों के गुणावगुण बताये गये हैं।

मिश्रबंधु-विनोद में इनके 'राजप्रकाश' नामक एक और ग्रंथ का उल्लेख हुआ है।[108] परंतु वह ग्रंथ इनका बनाया हुआ नहीं है। किशोरदास नामक एक भाट का लिखा हुआ है और डिंगल भाषा का ग्रंथ है। उसमें मेवाड़

108. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ५४१ (भाग दूसरा)

के इतिहास-प्रसिद्ध महाराणा राजसिंह (प्रथम) के युद्ध-पराक्रम का वर्णन है।

इनके फुटकर पद भी अनेक मिलते हैं जिनमें बड़ी स्वाभाविकता और तल्लीनता पाई जाती है। एक पद यहाँ दिया जाता है—

ए अँखियाँ प्यारे जुलम करैं।
यह महरेटी लाज लपेटी झुकि झुकि घूमि भूमि परैं।
नगधर प्यारे होउ न न्यारे हा हा तो सौं कोटि करैं॥
राजसिंह को स्वामी नगधर बिनु देखे दिन कठिन परैं॥

(४३) ब्रजदासी—ये जयपुर राज्य के लिवाण ठिकाने के कछवाहा राजा आनंद राम की पुत्री थीं। इनका विवाह सं० १७७६ में किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह के साथ हुआ था।[109] इनका वास्तविक नाम ब्रजकुँवरि था पर कविता में ये अपना नाम ब्रजदासी रखती थीं। इन्होंने श्रीमद्भागवत का ब्रज भाषा में अनुवाद किया जो 'ब्रजदासी-भागवत' के नाम से प्रसिद्ध है। अनुवाद बहुत सुंदर हुआ है और भक्त लोगों में इसका प्रचार भी यथेष्ट है। इसकी भाषा बहुत सीधी-सादी ब्रजभाषा है जिसमें कहीं-कहीं राजस्थानी का भी अंश दृष्टिगोचर होता है।

(४४) जोधराज—ये आदिगौड़ कुलोत्पन्न अत्रि गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। ये अलवर राज्य के नीमराणा ठिकाने के जागीरदार चंद्रभानु के आश्रित थे जिनके कहने से इन्होंने 'हंमीररासौ' का निर्माण किया जिसकी समाप्ति सं० १७८५ में हुई थी:

चंद्र नाग वसु पंच गिनि, संवत माधव मास।
शुक्ल सुतृतिया जीव युत, ता दिन ग्रंथ प्रकास॥

हंमीररासौ एक वीर रस-प्रधान काव्य है जो ९६९ पद्यों में समाप्त हुआ है। इसमें रणथंभौर के चौहाण राजा हंमीर और सुलतान अलाउद्दीन खिल्जी की लड़ाई का वर्णन है। यह पृथ्वीराज रासौ की शैली पर रचा गया है और उसी की भाँति ऐतिहासिक त्रुटियों से भरा हुआ है। उदाहरणार्थ इसमें हंमीर का जन्म सं० ११४१ बताया है और कहा गया है कि अलाउद्दीन

---

109. मुंशी देवीप्रसाद; महिलामृदुवाणी, पृ० ९४

का जन्म भी हंमीर के साथ ही हुआ था।[110] परंतु यह संवत् इतिहास-पुष्ट नहीं है। इसी प्रकार हंमीर की आत्म-हत्या तथा अलाउद्दीन का समुद्र में कूद कर मर जाने की कथाएँ भी अनैतिहासिक और निराधार हैं। अतएव इतिहास की दृष्टि से हंमीररासौ का मूल्य नगण्य है।

परंतु साहित्य की दृष्टि से यह एक मूल्यवान रचना है। इसकी भाषा-शैली सरस और चित्ताकर्षक है। कविता मनोहर और वीरोल्लासिनी है। इसका मुख्य रस वीर है पर शृंगार आदि दो एक अन्य रसों की छटा भी इसमें अच्छी दिखाई देती है।

(४५-४६) दलपतिराय और वंसीधर—ये दोनों कवि अहमदाबाद के रहनेवाले थे। इनमें वंसीधर जाति के श्रीमाली ब्राह्मण और दलपतिराय महाजन थे :—

मेदपाट श्रीमाल कुल, विप्र महाजन काय।
बासी अमदावाद के, वंसी दलपतराय॥[111]

मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) की छत्रछाया में इन्होंने 'अलंकार रत्नाकर' नामक ग्रन्थ बनाया था। हिंदी के कुछ गण्य-मान्य विद्वानों ने इस ग्रन्थ का निर्माण-काल सं० १७६२ बताया है जो अशुद्ध है।[112] वास्तव में यह ग्रन्थ सं० १७९८ में लिखा गया था जैसा कि इसी के एक दोहे से सूचित होता ह। वह दोहा इस प्रकार है—

सतरे सै अठयानवैं, माह पक्ष सितवार।
सुभ वसंत पांचैं भयो, यहै ग्रंथ अवतार॥[113]

---

110. ससि वेद रुद्र संवत गिनी, अंग खाभ्र खित साक।
दक्षण अयन सु सरद ऋतु, उपजे गए न नाक॥
गजनी गौरी शाह सुत, भय अलावदी साय।
ताही दिन रणथंभ गढ़, जन्म हमीर सु आय॥
—हंमीररासौ, पद्य १७२—१७३

111. अलंकार-रत्नाकर, पृ० २

112. पं० रामचंद्र शुक्ल; हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० २४४। डा० भागीरथ मिश्र; हिंदी काव्य-शास्त्र का इतिहास, पृ० ४१

113. अलंकार-रत्नाकर, पृ० ३

'अलंकार-रत्नाकर' महाराजा जसवंतसिंह कृत 'भाषाभूषण' की एक तरह से टीका है। 'भाषाभूषण' में इन कवियों को कुछ दोष दिखाई दिये जिनके परिहार के लिये यह ग्रन्थ रचा गया था—

कीने रसमय रसिक कवि, सरस बढ़ाय विवेक।
छाया लहि गिरिवांन की, भाषा ग्रंथ अनेक॥
तदपि अलंकृति ग्रंथ को, काहू कवि नहिं कीन।
भाषाभूषण है जऊ, कहूँक लच्छन हीन॥
या तें ताहि सुधारि कें, देख कुवलयानंद[114]।
अलंकार-रत्नाकर सु, किय कवि आनँदकंद॥

इसमें कुल ५२३ छंद हैं जिनको नीचे लिखे अनुसार चार तरंगों में विभक्त किया गया है—

नाम तरंग	पद्य संख्या
पीठिका निरूपण	२२
अलंकार सत निरूपण	४३२
रस प्रमाण निरूपण	४२
शंकर निरूपण	२७

इन ५२३ छंदों में दलपतिराय और वंसीधर के छंद बहुत थोड़े हैं; अधिकांश दूसरे कवियों के हैं जिनको उदाहरण में रखा गया है। परंतु जितने भी हैं वे परम उत्कृष्ट एवं मनोहर हैं और इन दोनों कवियों के अलंकार विषयक गहन ज्ञान तथा काव्य-नैपुण्य का परिचय देते हैं। अपने विषय को स्पष्ट करने के लिये इन्होंने स्थान-स्थान पर गद्य का भी प्रयोग किया है। मिश्रबंधुओं ने इनको पद्माकर की कोटि में रखा है जो उचित है। वास्तव में इनकी कविता पद्माकर की याद दिलाती है।

(४७) सोमनाथ—रीतिकालीन कवियों में कवि सोमनाथ का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनका वंश-वृक्ष इस प्रकार है—

---

114. वही; पृ० २
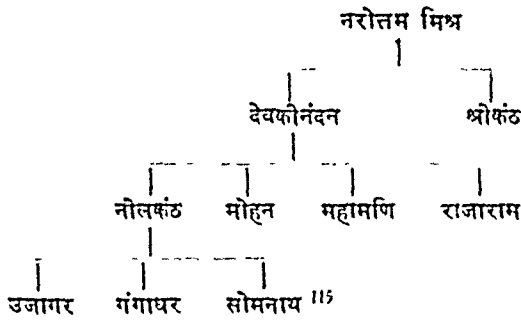
ये भरतपुर के जाट राजा बदनसिंह के दरबारी कवि थे और उनके कनिष्ठ पुत्र प्रतापसिंह के पास रहा करते थे।[116] इनकी रचनाएँ सं० १७६४ से सं० १८०६ तक की मिलती हैं। अतएव लगभग यही इनका रचनाकाल समझना चाहिये।

सोमनाथ संस्कृत एवं भाषा के उद्‌भट विद्वान और ज्योतिष के सुज्ञाता थे। इनके बनाये ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) रसपीयूषनिधि (२) सुजान-विलास (३) माधव-विनोद (४) कृष्ण-लीलावली (५) पंचाध्यायी (६) दशमस्कंध भाषा (७) ध्रुव-विनोद (८) रामकलाधर (९) वाल्मीकि रामायण (१०) अध्यात्म रामायण (११) अयोध्याकांड (१२) सुन्दरकांड (१३) ब्रजेन्दु-विनोद (१४) रस विलास और (१५) रामचरित्र-रत्नाकर।

इनमें 'रसपीयूषनिधि' इनका बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है और इसी पर इनकी ख्याति अवलंबित है। यह हिंदी के काव्य-शास्त्र के सर्वोत्कृष्ट ग्रंथों में से है। इसकी रचना सं० १७९४ में हुई थी। यह इसके अन्तिम दोहे से प्रकट है—

सत्रहसै चौरानवों, संवत जेठ सुमास।
कृष्ण पक्ष दसमी भृगों, भयो ग्रंथ परकास ॥

ग्रंथ बाईस तरंगों में विभक्त है जिनमें काव्य के विविध अंगों का बहुत विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया गया है। ऐसा विवेचन देव, श्रीपति, दास इत्यादि हिन्दी के अन्य दो-चार ही कवि कर पाये हैं। विशेषकर नायिका-भेद-वर्णन इन्होंने बहुत उत्तम रीति से किया है। उसमें नवीनता है और सरसता भी।

---

115. मिश्रबंधु-विनोद, भाग दूसरा, पृ० ६४७

116. वही; पृ० ६४८

ये भरतपुर के जाट राजा बदनसिंह के दरबारी कवि थे और उनके कनिष्ठ पुत्र प्रतापसिंह के पास रहा करते थे।[116] इनकी रचनाएँ सं० १७९४ से सं० १८०९ तक की मिलती हैं। अतएव लगभग यही इनका रचनाकाल समझना चाहिये।

सोमनाथ संस्कृत एवं भाषा के उद्भट विद्वान और ज्योतिष के सुज्ञाता थे। इनके बनाये ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) रसपीयूषनिधि (२) सुजान-विलास (३) माधव-विनोद (४) कृष्ण-लीलावली (५) पंचाध्यायी (६) दशमस्कंध भाषा (७) ध्रुव-विनोद (८) रामकलाधर (९) वाल्मीकि रामायण (१०) अध्यात्म रामायण (११) अयोध्याकांड (१२) सुन्दरकांड [(१३) व्रजेन्दु-विनोद (१४) रस विलास और (१५) रामचरित्र-रत्नाकर।

इनमें 'रसपीयूषनिधि' इनका बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है और इसी पर इनकी ख्याति अवलंबित है। यह हिंदी के काव्य-शास्त्र के सर्वोत्कृष्ट ग्रंथों में से है। इसकी रचना सं० १७९४ में हुई थी। यह इसके अन्तिम दोहे से प्रकट है—

सत्रहसै चौरानवों, संवत जेठ सुमास।
कृष्ण पक्ष दसमी भृगों, भयो ग्रंथ परकास॥

ग्रंथ बाईस तरंगों में विभक्त है जिनमें काव्य के विविध अंगों का बहुत विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया गया है। ऐसा विवेचन देव, श्रीपति, दास इत्यादि हिन्दी के अन्य दो-चार ही कवि कर पाये हैं। विशेषकर नायिका-भेद-वर्णन इन्होंने बहुत उत्तम रीति से किया है। उसमें नवीनता है और सरसता भी।

115. मिश्रबंधु-विनोद, भाग दूसरा, पृ० ६४७
116. वही; पृ० ६४८

(१३) सरसरस (१४) भक्तविनोद (१५) जोरावरप्रकाश (१६) बैताल पंचविंसति (१७) काव्यसिद्धान्त (१८) रसरत्नाकरमाला और (१९) शृंगारसार।

इनके रासलीला अथवा दानलीला नामक एक और ग्रंथ का पता हाल ही में लगा है जिसकी एक हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में है।

इसके अतिरिक्त अपने 'शृंगारसार' ग्रंथ में सूरत मिश्र ने श्रीनाथ विलास, भक्तमाला, कामधनु कवित्त, कवि-सिद्धान्त और छंदसार इन पांच और ग्रंथों का उल्लेख किया है। परंतु इनमें से केवल 'छंदसार' अभी तक हस्तगत हुआ है, शेष का पता नहीं है।

उपर्युक्त ग्रंथों में से कुछ के विषय में जो भ्रांतियाँ हिन्दी के विद्वानों में फैली हुई हैं प्रसंगवश उनका भी उल्लेख यहां पर कर देना उचित जान पड़ता है।

पहली भ्रान्ति यह है कि रससरस और सरसरस, भक्तिविनोद और भक्तविनोद, रसरत्नमाला और रसरत्नाकरमाला, कवि-सिद्धान्त और काव्य-सिद्धान्त, दो भिन्न-भिन्न ग्रंथ माने जा रहे हैं। परंतु ये दो भिन्न रचनाएँ नहीं हैं; एक ही रचना के दो नाम हैं। ये भूलें कुछ तो हस्तलिखित प्रतियों को ध्यानपूर्वक न पढ़ने के कारण हुई हैं और कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ ही ऐसी हैं जिनमें एक ही ग्रंथ का नाम दो प्रकार से लिखा मिलता है।

दूसरी भ्रान्ति यह है कि रससरस अथवा सरसरस को सूरत मिश्र की कृति माना जा रहा है। वास्तव में यह ग्रंथ राय शिवदास का लिखा हुआ है जैसा कि इसकी प्राचीन लिखित प्रतियों की पुष्पिकाओं में स्पष्ट संकेत किया गया है।[120] इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ के अंतिम भाग में राय शिवदास ने

---

119. इसकी एक हस्तलिखित प्रति बीकानेर के बृहत् ज्ञानभंडार में है।

120. "इति श्री राय शिवदास विरचिते सरसरस ग्रंथे नाम निरूपणो नाम अष्टमो विलास संपूरन समापत श्रीरस्तु किल्याणमस्तु ।। सुभंभवत् महाराजा धिराज महाराणा श्री जगतसिंहजी विजै राजै ग्रंथ लिखायतं कवि नंदराम। तस्य आज्ञा थी लिखतं दसपुर ज्ञाति पंडित संभु । सं० १७९५ रा वर्षे मास प्रथम आस्वीन सुद ६ भृगुवासरे। सुभंभुयात्।"

"इति श्री राय शिवदास विरचितं सरसरस ग्रंथ रस निरूपणो नाम अष्टमो विलास संपूरन समापता। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु ।। सुभंभवत। महाराजाधिराज महाराणा श्रीअरिसिंहजी विजै राज्यै लिखतं साहा सूरजमल हरपालोत सं० १८१९ वर्षे फागुण सुदी १० भोमवासरे लिखतं श्री उदेपुर मध्ये ।। सुभंभुयात।"

(१३) सरसरस (१४) भक्तविनोद (१५) जोरावरप्रकाश (१६) वैताल पंचविंसति (१७) काव्यसिद्धान्त (१८) रसरत्नाकरमाला और (१९) श्रृंगारसार।

इनके रासलीला अथवा दानलीला नामक एक और ग्रंथ का पता हाल ही में लगा है जिसकी एक हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में है।

इसके अतिरिक्त अपने 'श्रृंगारसार' ग्रंथ में सूरत मिश्र ने श्रीनाथ विलास, भक्तमाला, कामधनु कवित्त, कवि-सिद्धान्त और छंदसार इन पांच और ग्रंथों का उल्लेख किया है। परंतु इनमें से केवल 'छंदसार' अभी तक हस्तगत हुआ है, शेष का पता नहीं है।

उपर्युक्त ग्रंथों में से कुछ के विषय में जो भ्रांतियाँ हिन्दी के विद्वानों में फैली हुई हैं प्रसंगवश उनका भी उल्लेख यहां पर कर देना उचित जान पड़ता है।

पहली भ्रान्ति यह है कि रससरस और सरसरस, भक्तिविनोद और भक्तविनोद, रसरत्नमाला और रसरत्नाकरमाला, कवि-सिद्धान्त और काव्य-सिद्धान्त, दो भिन्न-भिन्न ग्रंथ माने जा रहे हैं। परंतु ये दो भिन्न रचनाएँ नहीं हैं; एक ही रचना के दो नाम हैं। ये भूलें कुछ तो हस्तलिखित प्रतियों को ध्यानपूर्वक न पढ़ने के कारण हुई हैं और कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ ही ऐसी हैं जिनमें एक ही ग्रंथ का नाम दो प्रकार से लिखा मिलता है।

दूसरी भ्रान्ति यह है कि रससरस अथवा सरसरस को सूरत मिश्र की कृति माना जा रहा है। वास्तव में यह ग्रंथ राय शिवदास का लिखा हुआ है जैसा कि इसकी प्राचीन लिखित प्रतियों की पुष्पिकाओं में स्पष्ट संकेत किया गया है।[120] इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ के अंतिम भाग में राय शिवदास ने

---

119. इसकी एक हस्तलिखित प्रति बीकानेर के बृहत् ज्ञानभंडार में है।

120. "इति श्री राय शिवदास विरचिते सरसरस ग्रंथे नाम निरूपणो नाम अष्टमो विलास संपूरन समापत श्रीरस्तु किल्याणमस्तु ।। सुभंभवत् महाराजा धिराज महाराणा श्री जगतसिंहजी विजै राजै ग्रंथ लिखायतं कवि नंदराम। तस्य आज्ञा थी लिखतं दसपुर ज्ञाति पंडित संभु । सं० १७९५ रा वर्षे मास प्रथम आस्वीन सुद ६ भृगुवासरे। सुभंभुयात्।"

"इति श्री राय शिवदास विरचितं सरसरस ग्रंथ रस निरूपणो नाम अष्टमो विलास संपूरन समापता। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु ।। सुभंभवत । महाराजाधिराज महाराणा श्रीअरिसिंहजी विजै राज्यै लिखतं साहा सूरजमल हरपालोत सं० १८१९ वर्षे फागुण सुदी १० भोमवासरे लिखतं श्री उदेपुर मध्ये ।। सुभंभुयात।"

(१३) सरसरस (१४) भक्तविनोद (१५) जोरावरप्रकाश (१६) वैताल पंचविंसति (१७) काव्यसिद्धान्त (१८) रसरत्नाकरमाला और (१९) शृंगारसार।

इनके रासलीला अथवा दानलीला नामक एक और ग्रंथ का पता हाल ही में लगा है जिसकी एक हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में है।

इसक अतिरिक्त अपने 'शृंगारसार' ग्रंथ में सूरत मिश्र ने श्रीनाथ विलास, भक्तमाला, कामधनु कवित्त, कवि-सिद्धान्त और छंदसार इन पांच और ग्रंथों का उल्लेख किया है। परंतु इनमें से केवल 'छंदसार' अभी तक हस्तगत हुआ है, शेष का पता नहीं है।

उपर्युक्त ग्रंथों में से कुछ के विषय में जो भ्रांतियाँ हिन्दी के विद्वानों में फैली हुई हैं प्रसंगवश उनका भी उल्लेख यहां पर कर देना उचित जान पड़ता है।

पहली भ्रान्ति यह है कि रससरस और सरसरस, भक्तिविनोद और भक्तविनोद, रसरत्नमाला और रसरत्नाकरमाला, कवि-सिद्धान्त और काव्य-सिद्धान्त, दो भिन्न-भिन्न ग्रंथ माने जा रहे हैं। परंतु ये दो भिन्न रचनाएँ नहीं हैं; एक ही रचना के दो नाम हैं। ये भूलें कुछ तो हस्तलिखित प्रतियों को ध्यानपूर्वक न पढ़ने के कारण हुई हैं और कुछ हस्तलिखित प्रतियां ही ऐसी हैं जिनमें एक ही ग्रंथ का नाम दो प्रकार से लिखा मिलता है।

दूसरी भ्रान्ति यह है कि रससरस अथवा सरसरस को सूरत मिश्र की कृति माना जा रहा है। वास्तव में यह ग्रंथ राय शिवदास का लिखा हुआ है जैसा कि इसकी प्राचीन लिखित प्रतियों की पुष्पिकाओं में स्पष्ट संकेत किया गया है।[120] इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ के अंतिम भाग में राय शिवदास ने

---

119. इसकी एक हस्तलिखित प्रति बीकानेर के बृहत् ज्ञानभंडार में है।

120. "इति श्री राय शिवदास विरचिते सरसरस ग्रंथे नाम निरूपणो नाम अष्टमो विलास संपूरन समापत श्रीरस्तु किल्याणमस्तु।। सुभंभवतु महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसिंहजी विजै राजै ग्रंथ लिखायतं कवि नंदराम। तस्य आज्ञा थी लिखतं दसपुर ज्ञाति पंडित संभु। सं० १७९५ रा वर्षे मास प्रथम आस्वीन सुद ६ भृगुवासरे। सुभंभुयात्।"

"इति श्री राय शिवदास विरचितं सरसरस ग्रंथ रस निरूपणो नाम अष्टमा विलास संपूरन समापता। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु।। सुभंभवत। महाराजाधिराज महाराणा श्रीअरिसिंहजी विजै राज्यै लिखतं साहा सूरजमल हरपालोत सं० १८१९ वर्षे फागुण सुदी १० भोमवासरे लिखतं श्री उदेपुर मध्ये।। सुभंभुयात।"

स्वयं लिखा है कि यह ग्रंथ मेरा बनाया हुआ है और इसके प्रणयन में प्रवीन इत्यादि कुछ अन्य कवियों की भी सम्मति रही है तथा सूरत मिश्र के तो कुछ कवित्त भी इसमें रखे गये हैं:—

एक समै मधि आगरै, कवि समाज को जोग ।
मिल्यौ आइ मुखदाइ हिय, जिनकी कविता जोग ॥
तब सब ही मिलि मंत्र यहै, कियौ कविनु बहु जानि ।
रचियै ग्रंथ नवीन इक, नये भेद रस आनि ॥
कवि अनेक मति मैं हुतें, पै मुख्य कवि परबीन ।
जाकै संमत सौं भयौ, पूरन ग्रंथ नवीन ॥
सूरति राम सुकवि सरस, कान्यकुबिज बहु जान ।
वासी ताही नगर कौ, कविता जाहि प्रमान ॥
केतक धरैं सुग्रंथ में, वर कवित्त कविराइ ।
ताही सौं गंभीरता, अरथ वरन दरसाइ ॥
आठौं रस रसभेद मैं, जै वरनें मति ठानि ।
राजनीति में संभवैं, तै मति लीजौ मानि ॥
सत्रह सै चौरानवै, संवत सुभ वैसाख ।
भयौ ग्रंथ पूरन सु यह, छठ ससि पुप सित पाख ॥

तीसरी भ्रान्ति 'बिहारी-सतसई' की अमरचंद्रिका टीका के संबंध में है। मिश्रबंधु आदि विद्वानों का कहना है कि यह टीका जोधपुर के महाराजा अमरसिंह के नाम पर लिखी गई थी।[121] परंतु उनका यह कथन निर्मूल है। जोधपुर में अमरसिंह नाम का कोई राजा हुआ ही नहीं है। सच तो यह है कि जिन अमरसिंह के लिये यह टीका बनाई गई थी वे जाति के ओसवाल महाजन थे।[122]

चौथी भ्रान्ति मुंशी देवीप्रसाद, डा० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा आदि विद्वानों के कारण हुई है जिन्होंने रसिकप्रिया की जोरावरप्रकाश टीका

---

121. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ५५५
122. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग दूसरा, पृ० १६३

को बीकानेर के महाराजा जोरावरसिंह की रचना बतलाया है।[123] परंतु यह टीका वास्तव में सूरत मिश्र ही की बनाई हुई है, जोरावरसिंह की नहीं है। महाराजा जोरावरसिंह से इसका संबंध केवल इतना ही है कि यह उनके अनुरोध से लिखी गई थी और इसलिये इसका नाम 'जोरावरप्रकाश' रखा गया है। इन बातों का उल्लेख इस टीका के प्रारंभ में हुआ है:—

बीकानेर प्रसिद्ध है, अति पुनीत सुभ धाम।
लछिमीनारायन जहाँ, इष्ट परम अभिराम ॥
सेव देव जगवदन की, जहाँ करत चित लाय।
देवि नाग-नेची जहाँ, अनुदिन रहत सहाय ॥
दुख हरनी करनी सुखहि, करनी मात प्रसिद्ध।
सब गुन की चरचा जहाँ, सदा धर्म की वृद्धि ॥
श्रीजोरावरसिंह जू, राज करत तिहिं ठौर।
सब विद्या में अति निपुन, जिन समान नहिं और ॥
वैद्यक जोतिप न्याय अरु, कविता रस में लीन।
तिन कवि सूरत मिश्र पैं, कृपा नेह अति कीन ॥
बहुविधि सौं सनमान करि, कही एक दिन बात।
पोथी केशवदास की, सबै कठिन विख्यात ॥
तिन में यह रसिकप्रिया, अति गंभीर है सोइ।
तिहि टीका ऐसी करौ, ज्यों समुझै सब कोइ ॥
तब तिनकै हित यह रच्यौ, अति विस्तार विलास।
नाम धर्यौ या ग्रंथ को, जोरावरपरकास ॥[12]

सूरत मिश्र ब्रजभाषा गद्य और पद्य दोनों लिखते थे। इनकी भाषा-शैली सुलझी हुई और सरस है। वैसे इन्होंने सभी रसों में मनोहर कविता की है पर श्रृंगार रस के वर्णन में इनको विशेषकर अच्छी सफलता मिली है। इनके काव्य की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उसे पढ़कर मन में किसी प्रकार की वासना का प्रादुर्भाव नहीं होता, बल्कि स्वच्छ भावों का

---

123. राजरसनामृत, पृ० ५० । बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ० ३२२
124. स० भं० उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १.

स्फुरण होता है। इनके 'भक्ति-विनोद' में से दो कविताएं यहाँ उद्धृत की जाती हैं जो इनकी भाषा, कविता आदि का अच्छा प्रतिनिधित्व करती हैं :-

फागुन के दिन बावरे ये इनमें न सयानपना निबहैं है।
काम दुहाई रही फिरि कैं अब कोउन काहू की कूक कहैं है॥
आय कै रंगनि सौं भगि हैं टरिहैं नहीं नागर मांची कहैं है।
चोरी नहीं बरजोरी नहीं रहि होरी में कौन धौं कोरि रहै है॥

देख्यौ नंद नंद आजु सोभा को मदन ए री
सुन्दर वदन तामैं झलकै रदन हैं।
कैसे मनरंजन विराजै द्रिग अंजन सौं
कंजन के गंजन विसालता अयन हैं॥
सूरत सुकवि छवि देखैं बनि आवै और
कहा कहौं एक रस अद्भुत सघन हैं।
नवनीत प्रिय जू की नव रीत देखन मैं
माखन चुरावैं अरु चोरचौ जात मन हैं॥

(४९) **नागरीदास**—ये किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह के पुत्र और महाराजा मानसिंह के पौत्र थे। इनका जन्म सं० १७५६ में हुआ था। ठाकुर शिवसिंह[125] तथा डा० ग्रियर्सन[126] ने इनका जन्मकाल सं० १६४८ लिखा है जो अशुद्ध है। इनका वास्तविक नाम सावंतसिंह था। कविता में नागर, नागरी, नागरिया और नागरीदास लिखा करते थे। अपने पिता के पांच पुत्रों में ये तीसरे थे। इनका विवाह भानगढ़ के राजा यशवंतसिंह की पुत्री से हुआ था। इनसे इनक चार संतति हुईं, दो पुत्र और दो कन्याएँ। इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम सरदारसिंह था।

नागरीदास बचपन से ही शूरवीर थे। इन्होंने दस वर्ष की बाल्यावस्था में एक मदोन्मत्त हाथी का सामना कर उसे कृपाण की एक ही चोट से विचलित कर दिया था और तेरह वर्ष की आयु में बूंदी के हाड़ा जैतसिंह को मारा था। अठारह वर्ष की उम्र में इन्होंने थूंण की गढ़ी जैसे अभेद्य दुर्ग को जीतकर लोगों को चकित कर दिया था। दक्षिणी मल्हारराव होलकर से भी इनका

---

125. शिवसिंह-सरोज, पृ० १७२

126. दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान, पृ० ३३

सामना हुआ था और लड़ना स्वीकार करके भी इन्होंने उसे 'चौथ' देना स्वीकार नहीं किया था। इस प्रसंग का यह दोहा राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है—

> बाजीराव मल्हार सौं, कहतो गयो कथाह।
> और राव सब राव हैं, सांवत बात अथाह॥

इन्होंने दो अंगुल चौड़े बाढ़वाली एक नये ढंग की तलवार का आविष्कार किया था जो 'सावंतशाही बाढ़' कहलाती है।

इनके पिता महाराजा राजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सुखसिंह राज-सिंहासन का मोह छोड़कर साधु हो गये थे[127] और द्वितीय पुत्र फतहसिंह का देहान्त पिता के जीवनकाल में ही हो गया था।[128] अतएव किशनगढ़ की राजगद्दी पर अब सावंतसिंह का हक पहुँचता था। परन्तु दैव-दुर्विपाक से इनको एक दिन के लिए भी राज्य-सुख भोगने का अवसर नहीं मिला। बात यह हुई कि सं० १८०५ में जब इनके पिता महाराजा राजसिंह की मृत्यु हुई तब ये अपने परिवार सहित दिल्ली में थे। वहीं मुग़ल सम्राट अहमदशाह ने इन्हें किशनगढ़ राज्य का उत्तराधिकारी नियत किया। परंतु इनकी अनुपस्थिति में इधर इनके छोटे भाई बहादुरसिंह किशनगढ़ के राजा बन बैठे। भाई द्वारा इस प्रकार राज्यापहरण की सूचना जब सावंतसिंह को दिल्ली में मिली तब एक बड़ी सेना लेकर उनसे लड़ने के लिये ये किशनगढ़ आये। दोनों भाइयों की सेनाओं में भयंकर युद्ध और भीषण रक्तपात हुआ। परन्तु बहादुरसिंह की सेना ने इनको किशनगढ़ की सीमा में पांव न रखने दिया। हताश होकर ये वापस दिल्ली लौट गये और वहाँ से अपने राज्य को हस्तगत करने की चेष्टा करने लगे। मुग़ल साम्राज्य के ढलते दिन थे और अहमदशाह की दशा उस समय अत्यंत दयनीय थी। इसलिए वह इन्हें यथेष्ट सहायता न दे सका। अतएव दिल्ली में अधिक दिनों तक रहना व्यर्थ समझ तथा मरहठों से सहायता

---

127. राजसिंह के पाँच सुत, तिन में सुखसिंह ज्येष्ठ।
 मन लायौ जोगीपनें, तजि संसार सुख श्रेष्ठ॥
 —छप्पनभोगचंद्रिका, पृ० ३८।

128. फतहसिंह दूजे भये, जंग जैत युत नीत।
 गयौ कुंवर परलोक कौं, गौड़न कौ रजीत।
 —छप्पनभोगचन्द्रिका, पृ० ६६।

प्राप्त करने की आशा से ये दक्षिण की ओर जाने को रवाना हुए। जब वृन्दावन पहुंचे तब हरिदास नामक एक वैष्णव ने इनसे कहा कि अब आप को राज्याधिकार प्राप्त हो ऐसा योग नहीं है और अवस्था भी आप की पचास से ऊपर हो गई है। इसलिए सब झंझटों को छोड़कर भगवद्भजन करो और अपने कुंवर को राज्य-प्राप्ति के लिए उद्योग करने दो। यह सुनकर आप तो वहीं रह गये और अपने पुत्र सरदारसिंह को कुछ सेना देकर बहादुरसिंह के विरुद्ध लड़ने को भेजा। बहुत लड़ाई के पश्चात् बहादुरसिंह ने किशनगढ़ का आधा राज्य सरदारसिंह को दे दिया जिसमें सरवाड़, फतहगढ़ और रूपनगर ये तीनों परगने सम्मिलित थे। सांवतसिंह ने वृन्दावन से आकर आश्विन सुदी १० सं० १८१४ के दिन सरदारसिंह का राज-तिलक किया।[129]

सरदारसिंह का राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् सांवतसिंह वापस वृन्दावन चले गये और वहां कृष्ण-भक्ति में लीन रहने लगे। ये संसार से प्रायः उदासीन हो गये थे और साधुवृत्ति में रहते थे। कहा जाता है कि एक बार जब ये वृन्दावन से किशनगढ़ आ रहे थे तब मार्ग में एक दिन के लिये जयपुर ठहरे। उस समय वहां महाराजा सवाई माधोसिंह राज करते थे। अपने गुप्तचरों द्वारा उनको जब नागरीदास के आने की सूचना मिली तब उनसे मिलने के लिए वे उनके डेरे पर गये और भांति-भांति के प्रश्न करने लगे। नागरीदास ने उनके सब प्रश्नों का उत्तर केवल एक सवैये में दिया और तत्काल वहां से रवाना हो गये। वह सवैया यह है—

जाति के हैं हम तो व्रजवासी जू ना रहि ओर हु जात की बाधा।
देस हैं घोप नै चाहत मोख को तीरथ श्रीजमुना सुख साधा॥
संतन को सतसंग आजीविका कुंज विहार अहार अगाधा।
नागर के कुलदेव गोबर्धन मोहन मंत्र ऽरु इष्ट है राधा॥

नागरीदास सं० १८१८ में अंतिम बार किशनगढ़ आये थे। दो-एक दिन वहां रहे। अन्त में यह कवित्त कहकर चले गये और आजीवन नहीं लौटे—

ज्यौं ज्यौं इत देखियत मूरख विमुख लोग
त्यौं त्यौं व्रजबासी सुखरासी मन भावै हैं।

---

129. मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत, पृ०५७।

गारे तन छीनन हुमारे अन कुंज निसी
कालिंदी कूल काल मन ललचावै है ॥
जैसी दई दीनन सौं हान न बना दैन
नागर न नैन भरें प्रान अकुलावै है ।
गुलर, पलास, हैल हैल के बबूल खरे
हाय हरे हरे ये कदम्ब सुख आवै है ॥[130]

इनका देहान्त सं० १८२१ में वृन्दावन में किशनगढ़ राज्य की कुंज में हुआ था । यह कुंज आजकल नागर-कुंज के नाम से विख्यात है । वहाँ पर इनकी छतरी (समाधि), चरण-चिह्न आदि विद्यमान हैं जिनकी अभी तक पूजा होती है । समाधि पर यह लेख खुदा हुआ है—

"श्रीराधाकृष्ण गोवर्धन धारी । वृन्दावन यमुना तट चारी ।
ललितादिक वल्लभ विठलेश । मोहन करो कृपा नागेश ॥

सुत को दै युवराज आप वृन्दावन आये ।
रूपनगर पति भक्ति वृन्द बहु लाड़ लड़ाये ॥
सूरवीर गंभीर रसिक रिझवार अमानी ।
संत सरनागत नेम उदधि लौं गावैं बानी ॥

नागरीदास विदित सो कृपा द्वार नागर हरिय ।
सांवतसिंह नृप कलि विषै सत त्रेता विध आचरिय ॥

सं० १८२१ भादों सुदी ५ को महाराज नागरीदासजी वृन्दावन पाये" ।[131]

नागरीदास बड़े कला-प्रेमी, भक्त और कवि थे । संगीत, चित्रकारी, काव्य आदि ललित कलाओं के ये बड़े प्रेमी थे और इनकी सूक्ष्मताओं को समझते भी खूब थे । ये कवियों के आश्रयदाता थे । कई कवि इनके साथ अधिवास करते थे जिनमें वल्लभजी, हरिचरणदास, हीरालाल, कनीराम, पन्नालाल और विजयराम के नाम विशेष रूप से उल्लेख योग्य हैं । व्रजभाषा के विख्यात कवि आनंदघन इनके परम मित्र थे ।[132]

---

130. मुंशी देवीप्रसाद, 'राजरसनामृत, पृ० ५८
131. श्रीराधाकृष्णदास; श्रीनागरीदास का जीवनचरित्र, पृ० १ (परिशिष्ट)
132. नागरसमुच्चय, पृ० ४ (भूमिका)

ये वल्लभ संप्रदाय के गोस्वामी रणछोड़जी के शिष्य थे।[133] इनके ग्रंथों का संग्रह ज्ञानसागर यंत्रालय बंबई से 'नागर-समुच्चय' के नाम से प्रकाशित हुआ है। यह तीन खंडों में विभाजित है—वैराग्य-सागर, सिंगार-सागर, और पद-सागर। इनमें इनके निम्नलिखित ६९ ग्रंथ संगृहीत हैं।

(१) वैराग्य-सागर

(१) भक्तिमगदीपिका (२) देहदसा (३) वैराग्यवटी (४) रसिकरत्नावली (५) कलिवैराग्यवल्ली (६) अरिल्ल पचीसी (७) छूटक पद (८) छूटक दोहा (९) तीर्थानंद (१०) रामचरित्र-माला (११) मनोरथमंजरी (१२) पदप्रबोधमाला (१३) जुगल-भक्तविनोद (१४) भक्तिसार और (१५) श्रीमद्भागवत पारायन विधि प्रकास

(२) शृंगार-सागर

(१) ब्रजलीला (२) गोपीप्रेमप्रकास (३) पदप्रसंगमाला (४) ब्रजवैकुंठतुला (५) ब्रजसार (६) विहारचंद्रिका (७) भोरलीला (८) प्रातरसमंजरी (९) भोजनानंद-अष्टक (१०) जुगलरसमाधुरी (११) फूलविलास (१२) गोधन-आगम (१३) दोहनानंद-अष्टक (१४) लगनाष्टक (१५) फागविलास (१६) ग्रीष्मविहार (१७) पावस-पचीसी (१८) गोपी-बैनविलास (१९) रासरसलता (२०) रैनरूपारस (२१) सीतसार (२२) इश्कचिमन (२३) छूटक दोहा मजलस मंडन (२४) रास अनुक्रम के दोहे (२५) अरिल्लाष्टक (२६) सदा की मांझ (२७) वर्षा रितु की मांझ (२८) होरी की मांझ (२९) शरद की मांझ (३०) श्रीठाकुरजी के जनम उछव के कवित्त (३१) श्रीठकुरानीजी के जनम उछव के कवित्त (३२) सांझी के कवित्त (३३) सांझी फूल बीननि समै संवाद अनुक्रम (३४) रास के कवित्त (३५) चाँदनी के कवित्त (३६) दिवारी के कवित्त (३७) गोवर्द्धनधारन के कवित्त (३८) होरी के कवित्त (३९) फाग खेल समै अनुक्रम (४०) वसंत वर्णन के कवित्त (४१) फागविहार (४२) फाग गोकुलाष्ट (४३) हिंडोरा के कवित्त (४४) वर्षा के कवित्त (४५) छूटक कवित्त (४६) वन

---

133. वही; पृ० ११

विनोद (४७) फागविनोद (४८) सुजानानंद (४९) रास-अनुक्रम के कवित्त (५०) निकुंजविलास और (५१) गोविंद-परचई।

(३) पद-सागर

(१) बनजनप्रशंसा (२) पदमुक्तावली और (३) उत्सवमाला।

उपर्युक्त ६९ ग्रंथों के अतिरिक्त नागरीदास के बनाये नौ ग्रंथ और कहे जाते हैं। उनके नाम ये हैं—

(१) छूटकविधि (२) शिखनख (३) नखशिख (४) चरचरियाँ (५) रेखता (६) वैनविलास (७) गुप्तरसप्रकाश (८) धना-धन्य, और (९) ब्रज संबंधी नाममाला।

इस प्रकार नागरीदास के ग्रंथों की कुल संख्या ७८ होती है। परन्तु जैसा कि पंडित रामचंद्र शुक्ल ने कहा है इन सभी को ग्रंथ संज्ञा देना उचित न होगा। क्योंकि इनमें कुछ तो ऐसे हैं जिनमें पाँच-पाँच दस-दस पद्यों से अधिक नहीं है। वास्तव में ये ग्रंथ न होकर वर्ण्य विषय के शीर्षक मात्र हैं।

कहा जाता है कि नागरीदास डिंगल और पिंगल दोनों में कविता करते थे।[134] परंतु इनका बनाया डिंगल भाषा का कोई ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। ऊपर जिन ग्रंथों के नाम दिये गये हैं वे सब पिंगल अर्थात् ब्रजभाषा के हैं।

ये कृष्णभक्त कवि थे। इन्होंने अपनी रचना में भगवान श्रीकृष्ण की प्रेम-लीलाओं का वर्णन किया है जिसके लिये संयोग शृंगार को अधिक अपनाया गया है। वियोग शृंगार का वर्णन भी है पर अपेक्षाकृत बहुत थोड़ा। इनकी कविता 'अष्टछाप' के कवियों की कविता से बहुत प्रभावित है। क्या वर्ण्य विषय, क्या रचना-शैली, क्या भाव-भावनाएँ सभी पर 'अष्टछाप' के कवियों का प्रभाव पाया जाता है। अंतर केवल इतना है कि 'अष्टछाप' के कवियों ने अधिकतर गेय पद लिखे हैं और इन्होंने कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा आदि अन्य छंदों का भी प्रयोग किया है। अतः भाव की नवीनता इनकी कविता में कम दृष्टिगत होती है। परंतु इस अभाव की पूर्ति इन्होंने एक दूसरे प्रकार से कर दी है। प्राचीन भावों को इन्होंने ऐसी मधुर और लचीली चित्रात्मकता से अभिव्यक्त किया है कि उनमें एक नूतन उज्ज्वलता और स्फूर्ति आ गई है।

---

134. मुंशी देवीप्रसाद: राजरसनामृत, पृ० ६०

नागरीदास को सबसे अधिक सफलता मिली है अपनी प्रेम विषयक कविताओं के लिखने में। इनमें इनका प्रेमी हृदय बोलता-सा प्रतीत होता है। इसी विशेषता को देखकर किसी कवि ने कहा है—

नागरि गौरव इस्क मधि, राग बहादुर राज।
ब्रजनिधि गौरव अर्थ वित्त, रस गौरव रसराज।।[135]

(५०) रसिकबिहारी—इनका असली नाम बणीठणी था। बणीठणी का अर्थ है, वस्त्राभूषणों से सजी हुई। यह किशनगढ़ के महाराजा सावंतसिंह उपनाम नागरीदास की उपपत्नी थीं और उन्हीं की भाँति भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य भक्त थीं। कविता में यह अपना नाम 'रसिकबिहारी' लिखा करती थीं। सं० १८२१ में जिस समय नागरीदास का वृन्दावन में स्वर्गवास हुआ यह उनके पास विद्यमान थीं। इनकी मृत्यु नागरीदास की मृत्यु के एक वर्ष उपरांत सं० १८२२ में आषाढ़ सुदि १५ को हुई थी।[136] वृन्दावन में नागरीदास की छतरी के पास इनकी भी एक छतरी बनी हुई है जिस पर यह लेख खुदा हुआ है—

"श्रीबिहारिन बिहारि जो, ललितादिक हरिदास।
नरहर रसिकनि की कृपा, दियो वृन्दावन वास।।
श्रीरसिकदास गुरु की कृपा, लहमा भर सत्संग।
विष्णुहि वृन्दावन मिल्यौ, भक्त विहार अनंग।।
रसिकबिहारी सामरो, ब्रजनागर सुर काज।
इन पद-पंकज मधुकरी,....विष्णु समाज।।"

रसिकबिहारी ने ग्रंथ कोई नहीं लिखा। केवल फुटकर पद लिखे हैं जिनकी संख्या सौ के लगभग है। इनकी भाषा ब्रजभाषा है जिसमें कहीं-कहीं राजस्थानी का भी रंग पाया जाता है। इनकी कविता कोमल और माधुर्य रस से परिपूर्ण है।

---

135. भावार्थ—नागरीदास प्रेम में पूरे हैं। उनके भाई बहादुरसिंह और पिता राजसिंह रागों में निपुण हैं। ब्रजनिधि (जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह) कविता का अर्थ करने में और रसराज (जोधपुर के महाराजा मानसिंह) रसों में अच्छे हैं।

136. श्रीराधाकृष्णदास; श्रीनागरीदास का जीवनचरित्र, पृ० २ (परिशिष्ट)।

(५१) हित वृंदावनदास—ये पुष्कर क्षेत्र के रहनेवाले गौड़ ब्राह्मण थे और सं० १७६५ में पैदा हुए थे।[137] श्री राधावल्लभीय गोस्वामी हितरूपजी इनके गुरु थे। इनके माता, पिता आदि के संबंध में कुछ ज्ञात नहीं है। नागरीदास के भाई बहादुरसिंह इन्हें बहुत मानते थे। इसलिये ये प्रायः किशनगढ़ ही में रहा करते थे। पर बाद में जब राजघराने में राज्य संबंधी झगड़े उठ खड़े हुए तब ये किशनगढ़ छोड़कर वहाँ से वृन्दावन चले गये और अंत समय तक वहीं रहे। सं० १८४४ तक की इनकी रची कविताएँ मिलती हैं पर इसके बाद की नहीं मिलतीं। इससे अनुमान होता है कि उक्त संवत् के आसपास किसी समय इन्होंने शरीर छोड़ा होगा।

वृन्दावनदास भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे। इन्होंने कृष्ण-लीला विषयक छोटे-बड़े कई ग्रंथ बनाए जिनके नाम ये हैं—

(१) कृष्णगिरिपूजन वेलि (२) श्रीहितरूपचरित वेलि (३) भक्ति प्रार्थनावली (४) चौबीस लीला (५) हिंडोरा (६) श्रीब्रजप्रेमानन्द सागर (७) कृष्णगिरिपूजनमंगल (८) हरिनाम महिमावली (९) हित हरिवंशचन्द्र जू की सहस्र नामावली (१०) भावविलास टीका (११) राधा सुधानिधि (१२) सेवक बानी (१३) रसिक यशवर्णन (१४) युगलप्रीति पचीसी (१५) आनंदवर्द्धन वेलि (१६) नवम समय प्रबंध शृंखला (१७) कृष्ण सुमिरन पचीसी (१८) कृष्ण-विवाह-उत्कंठा (१९) रास-उत्साह वर्द्धन (२०) इष्टभजन पचीसी (२१) जगनिर्वेद पचीसी (२२) पद (२३) प्रार्थना पचीसी (२४) राधा जन्म-उत्सव वेलि (२५) वृषभानु जस पचीसी (२६) राधा बालविनोद (२७) लाड़लीजी की जन्म बधाई (२८) हित-कल्पतरु (२९) भक्त सुजस वेलि (३०) करुणा वेलि (३१) भँवर गीत (३२) लीला (इसमें छोटे-छोटे ४१ ग्रंथ हैं) (३३) हरिकला वेलि (३४) लाड़सागर (३५) सेवकजी की विरुदावली (३६) छद्म षोड़शी (३७) रसिक अनन्य (३८) ख्यालविनोद (३९) ब्रजविनोद (४०) वेलि (४१) हितरूप चरितावली (४२) सेवकजी की परिचर्यावली।

इनके सिवा इन्होंने अष्टयाम, समयप्रबंध, अष्टक, वेलि, पचीसी आदि भी कई लिखे हैं।

---

137. पं० रामचंद्र शुक्ल; हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ३०९।

इन्होंने श्रीकृष्ण के भोजन, शयन, रास आदि का बड़ा विशद वर्णन किया है। सब से बड़ी विशेषता जो इनकी रचना में हमें दीख पड़ती है यह इनकी शुद्ध, सरल और व्यवस्थित व्रजभाषा है। इनकी पदावली में कांति, माधुर्य और कोमलता है। पद-विन्यास भी बहुत ललित है। भावुक कवि के आराध्य देव के प्रति उठनेवाली भाव-तरंगों का हृदयग्राही दृश्य इनकी कविता में हमें देखने को मिलता है।

(५२) हरिचरणदास—ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १७६६ में हुआ था। इनके पिता का नाम रामधन और पितामह का वासुदेव था। बिहार प्रान्त का चैनपुर गाँव इनकी जन्मभूमि थी जहाँ से आकर ये मारवाड़ (किशनगढ़) में बस गये थे—

नवा पार सुभ देस में, राजत वटया ग्रांम।
श्रीविश्वंभर वंस में, वासुदेव तप धाम॥
ता को सुत श्रीरामधन, कियो चैंनपुर वास।
परगन्ना गोवा तहाँ, चारि वर्न सहुलास॥
सालग्रामी सुरसरित, मिली गंग सों धार।
अंतराल में देस तहँ, है सारनि सरकार॥
तनैं रामधन सूर को, हरि कवि किय मरु वास।
कविवल्लभ ग्रंथहिं रच्यौ, कविता दोष प्रकास॥

—कविवल्लभ[138]

ये किशनगढ़ के महाराजा सावंतसिंह उपनाम नागरीदास के आश्रित थे और कुछ समय तक किशनगढ़ के महाराजा बहादुरसिंह के दरबार में भी रहे थे। काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' में इनका सं० १८३४ तक विद्यमान होना लिखा है।[139] परन्तु ये और भी पीछे तक जीवित थे जैसा कि इनके 'कविवल्लभ' ग्रंथ से सूचित होता है जो सं० १८३९ में रचा गया था—

संवत नंद(९) हुतासन(३) दिग्गज(८) इंदुहु(१) सौं गनना जु दिखाई।
दूसरो जेठ लसी दसमी तिथ प्रात ही साँवरो पच्छ निकाई।

138. सरस्वती भंडार उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १०७।
139. पृ० १९३।

तीर तड़ाग के औ वुधवार विकर्म्मनि की गति लाय लगाई।
श्रीतुलसी उपकंठ तहाँ रचना यह पूरी भई सुखदाई ॥[140]

हरिचरणदास कवि और टीकाकार दोनों थे। इनके बनाये ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) केशव कृत रसिकप्रिया की टीका (२) केशव कृत कविप्रिया की टीका (३) विहारी-सतसई की टीका (४) जसवंतसिंह कृत भाषाभूषण की टीका (५) सभाप्रकाश और (६) कविवल्लभ।

हरिचरणदास की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है और उस में मीलित वर्ण वहुत कम आने पाये है। इनकी कविता साहित्यिक दृष्टि से निर्दोष एवं कोमल है और उसमें कला एवं भाव दोनों का सुन्दर संयोग हुआ है। इनका एक छंद यहाँ दिया जाता है—

आनंद कौं कंद वृषभानुजा कौं मुख-चंद
लीला ही तें मोहन के मानस कौं चौरैं हैं।
दूजो तैसो रचिबे कौं चाहत विरंचि नित
ससि कौं बनावैं अजौं मन कौं न मौरैं हैं॥
फेरत हैं सान आसमान पैं चढ़ाय फेरि
पानिप चढायवे को वारिधि में वौरैं हैं।
राधिका के आनन कौं जोट न विलोकैं विधि
टूक टूक तौरैं पुनि टूक टूक जौरैं हैं ॥[141]

(५३) सुंदरकुंवरि—ये किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह की पुत्री थीं। इनका जन्म सं० १७९१ में हुआ था।[142] सुप्रसिद्ध भक्त कवि नागरीदास इनके भाई थे। जब वाईजी चौदह वर्ष की थीं तब इनके पिता की मृत्यु हो गई और तदनंतर इनके भाइयों में किशनगढ़ के राजसिंहासन के लिए झगड़े होने शुरु हो गये थे, इसलिये इनका विवाह न हो सका और ३१ वर्ष की उम्र तक ये कुंवारी रहीं। वाद में जब इनके भतीजे सरदारसिंह गद्दी पर वैठे तब उन्होंने इनका विवाह राघौगढ़ के राजा वलभद्रसिंह के कुँवर वलवंतसिंह के साथ किया। वाईजी का देहान्त सं० १८५३ के लगभग हुआ था।[143]

---

140. स० भं० उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १०७–१०८।
141. वही; पत्र १।
142. मुंशी देवीप्रसाद; महिलामृदुवाणी, पृ० १०४।
143. वही; पृ० १०७।

सुन्दरकुँवरि बाई साहित्यिक वायु-मंडल में पली थीं और कविता इनकी पैतृक सम्पत्ति थी। इनके पिता राजसिंह, माता ब्रजदासी, भ्राता नागरीदास और भतीजी छत्रकुँवरि बाई सभी साहित्य-रुचि-सम्पन्न एवं प्रकृष्ट कवि थे। इस वातावरण से इन्हें सत्काव्य-रचना में बड़ी सहायता मिली। पंद्रह वर्ष की आयु में बाईजी बहुत अच्छी कविता करने लग गई थीं और बाद में तो काव्य-रचना का इन्हें ऐसा व्यसन पड़ गया था कि जिस दिन थोड़ा-बहुत भी लिख नहीं लेतीं, इन्हें कल न पड़ती थी। इन्होंने ग्यारह ग्रंथों की रचना की जिनके नाम ये हैं—

(१) नेहनिधि (२) वृन्दावन-गोपी-माहात्म्य (३) संकेत-युगल (४) रंगझर (५) गोपी-माहात्म्य (६) रस-पुंज (७) प्रेम-संपुट (८) सार-संग्रह (९) भावना-प्रकाश (१०) राम-रहस्य (११) पद तथा स्फुट कवित्त।[144]

सुन्दरकुँवरि बाई की कविता में भक्ति और प्रेम का प्राधान्य है। इनकी रचना से स्पष्ट विदित होता है कि रस, छंद, अलंकार आदि का इन्हें प्रौढ़ ज्ञान था, और भाषा तथा भाव के सामञ्जस्य को ये अच्छी तरह से समझती थीं। इनकी भाषा बड़ी शिष्ट, स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित है। इन्होंने काव्य के कला-पक्ष तथा भाव-पक्ष दोनों ही का बड़ी सुन्दरता से निर्वाह किया है।

(५४) देवकर्ण—ये जाति के पंचोली थे। इन्होंने अपने 'वाराणसी-विलास' में कुछ आत्म-विवरण दिया है जिससे मालूम होता है कि ये मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) के दीवान थे। इनके पिता का नाम हरनाथ और पितामह का महीदास था।[145]

इनका उक्त एक ही ग्रंथ 'वाराणसी-विलास' मिलता है। इसमें 'काशीखंड' का सरल ब्रजभाषा में उल्था किया गया है जो ४०५२ छंदों में समाप्त हुआ है। यह सं० १८०३ में बना था—

---

144. वही; पृ० ११०। हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १८२।

145. महीदास के सुत भये, भंडारी हरनाथ।
देवकर्ण तिन सुत कियो, सदा सु उत्तम साथ॥
—वाराणसी-विलास, पद्य २२४।

आश्विन कृष्णा अनंग तिथि, अठारह सै तीन ।
उदियापुर शुभ नगर में, उपज्यौ ग्रंथ नवीन ।।

ग्रंथ तीस विलासों में विभक्त है और इसमें दोहा, सोरठा, छप्पय, त्रोटक, तोमर आदि अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है । वैसे कहने को यह एक अनुवादित ग्रंथ है पर कवि ने इसमें अपनी काव्य-प्रतिभा का रंग भी यत्र-तत्र भरा है जिससे इसमें वहुत कुछ नवीनता आ गई है । यह अत्यंत प्रौढ़, प्रशंसनीय एवं हिंदी का गौरव बढ़ानेवाली रचना है । विशेषकर इसकी सरस और प्रवाहयुक्त भाषा देखने योग्य है। उदाहरण लीजिये--

भोगि सुभोग अखंड वहुरि सिवलोकहि पावहिं ।
सिव वा सिवगन होत फेरि मृतलोक न आवहिं ।।
कुंभ-योनि तप भौंन महा कहियौ मति भारी ।
अब तुंव मन में कहा सुनन इच्छा सुखकारी ।।
कहि देवकरन कासी कथा सुनत कहत पातक दहत ।
मुनि विना संक बूझयौ सु तुम मोहि महा आनंद लहत ।।[146]

(५५) शिवसहायदास--इनका प्रामाणिक इतिवृत्त नहीं मिलता । 'मिश्र वंधु-विनोद' के अनुसार ये महाशय जयपुर के भद्र कवि थे । इनके बनाये हुए-शिव-चौपाई और लोकोक्ति-रसकौमुदी नामक दो ग्रंथों का पता है । ये दोनों सं० १८०६ में लिखे गये थे ।[147] इनमें लोकोक्ति-रसकौमुदी साहित्यिक रचना है । इसमें पुखाने--(उपाख्यान) हैं और उन्हीं को मिलाकर कवि ने नायिका-भेद वर्णन किया है ।

(५६) सूदन--ये जाति के मायुर ब्राह्मण एवं मथुरा के निवासी थे और इनके पिता का नाम वसंत था--

मथुरा पुर सुभ धाम, माथुर कुल उतपत्ति वर ।
पिता वसंत सु नाम, सूदन जानहु सकल कवि ।।[143]

---

146. स० भं० उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १५२ ।
147. मिश्रवंधु; मिश्रवंधु-विनोद, भाग दूसरा, पृ० ६८४ ।
148. सुजानचरित्र, प्रथम जंग, पद्य १०

सुन्दरकुँवरि बाई साहित्यिक वायु-मंडल में पली थीं और कविता इनकी पैतृक सम्पत्ति थी। इनके पिता राजसिंह, माता ब्रजदासी, भ्राता नागरीदास और भतीजी छत्रकुँवरि बाई सभी साहित्य-रुचि-सम्पन्न एवं प्रकृष्ट कवि थे। इस वातावरण से इन्हें सत्काव्य-रचना में बड़ी सहायता मिली। पंद्रह वर्ष की आयु में बाईजी बहुत अच्छी कविता करने लग गई थीं और बाद में तो काव्य-रचना का इन्हें ऐसा व्यसन पड़ गया था कि जिस दिन थोड़ा-बहुत भी लिख नहीं लेतीं, इन्हें कल न पड़ती थी। इन्होंने ग्यारह ग्रंथों की रचना की जिनके नाम ये हैं—

(१) नेहनिधि (२) वृन्दावन-गोपी-माहात्म्य (३) संकेत-युगल (४) रंगझर (५) गोपी-माहात्म्य (६) रस-पुंज (७) प्रेम-संपुट (८) सार-संग्रह (९) भावना-प्रकाश (१०) राम-रहस्य (११) पद तथा स्फुट कवित्त।[144]

सुन्दरकुँवरि बाई की कविता में भक्ति और प्रेम का प्राधान्य है। इनकी रचना से स्पष्ट विदित होता है कि रस, छंद, अलंकार आदि का इन्हें प्रौढ़ ज्ञान था, और भाषा तथा भाव के सामञ्जस्य को ये अच्छी तरह से समझती थीं। इनकी भाषा बड़ी शिष्ट, स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित है। इन्होंने काव्य के कला-पक्ष तथा भाव-पक्ष दोनों ही का बड़ी सुन्दरता से निर्वाह किया है।

(५४) देवकर्ण—ये जाति के पंचोली थे। इन्होंने अपने 'वाराणसी-विलास' में कुछ आत्म-विवरण दिया है जिससे मालूम होता है कि ये मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) के दीवान थे। इनके पिता का नाम हरनाथ और पितामह का महीदास था।[145]

इनका उक्त एक ही ग्रंथ 'वाराणसी-विलास' मिलता है। इसमें 'काशीखंड' का सरल ब्रजभाषा में उल्था किया गया है जो ४०५२ छंदों में समाप्त हुआ है। यह सं० १८०३ में बना था—

---

144. वही; पृ० ११०। हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १८२।

145. महीदास के सुत भये, भंडारी हरनाथ।
देवकर्ण तिन सुत कियो, सदा सु उत्तम साथ॥
—वाराणसी-विलास, पद्य २२४।

आश्विन कृष्णा अनंग तिथि, अठारह सै तीन ।
उदियापुर शुभ नगर में, उपज्यौ ग्रंथ नवीन ॥

ग्रंथ तीस विलासों में विभक्त है और इसमें दोहा, सोरठा, छप्पय, त्रोटक, तोमर आदि अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है। वैसे कहने को यह एक अनुवादित ग्रंथ है पर कवि ने इसमें अपनी काव्य-प्रतिभा का रंग भी यत्र-तत्र भरा है जिससे इसमें बहुत कुछ नवीनता आ गई है। यह अत्यंत प्रौढ़, प्रशंसनीय एवं हिंदी का गौरव बढ़ानेवाली रचना है। विशेषकर इसकी सरस और प्रवाहयुक्त भाषा देखने योग्य है। उदाहरण लीजिये—

भोगि सुभोग अखंड बहुरि सिवलोकहि पावहि ।
सिव वा सिवगन होत फेरि मृतलोक न आवहि ॥
कुंभ-योनि तप भौंन महा कहियो मति भारी ।
अब तुंव मन में कहा सुनन इच्छा सुखकारी ॥
कहि देवकरन कासी कथा सुनत कहत पातक दहत ।
मुनि बिना संक बूझयौ सु तुम मोहि महा आनंद लहत ॥[146]

(५५) शिवसहायदास—इनका प्रामाणिक इतिवृत्त नहीं मिलता। 'मिश्र बंधु-विनोद' के अनुसार ये महाशय जयपुर के भद्र कवि थे। इनके बनाये हुए-शिव-चौपाई और लोकोक्ति-रसकौमुदी नामक दो ग्रंथों का पता है। ये दोनों सं० १८०९ में लिखे गये थे।[147] इनमें लोकोक्ति-रसकौमुदी साहित्यिक रचना है। इसमें पखाने—(उपाख्यान) हैं और उन्हीं को मिलाकर कवि ने नायिका-भेद वर्णन किया है।

(५६) सूदन—ये जाति के माथुर ब्राह्मण एवं मथुरा के निवासी थे और इनके पिता का नाम बसंत था—

मथुरा पुर सुभ धाम, माथुर कुल उतपत्ति वर ।
पिता बसंत सु नाम, सूदन जानहु सकल कवि ॥[148]

---

146. स० भं० उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १५२।
147. मिश्रबंधु; मिश्रबंधु-विनोद, भाग दूसरा, पृ० ६८४।
148. सुजानचरित्र, प्रथम जंग, पद्य १०

ये भरतपुर के जाट राजा सूरजमल उपनाम सुजानसिंह के आश्रित थे। इनका रचना-काल सं० १८२५ के लगभग है। इन्होंने 'सुजानचरित्र' नामक एक बड़ा ग्रंथ बनाया जो प्रकाशित हो चुका है। इसमें सूरजमल के सं० १८०२ से सं० १८१० तक के युद्धों का वर्णन है। ग्रंथ सात जंगों में विभक्त है। प्रत्येक जंग में कई अंक हैं। यह एक ऐतिहासिक काव्य है और इसमें सूदन ने अपने समय की वास्तविक घटनाओं का वर्णन किया है। फिर भी इसमें कुछ ऐसी घटनाएँ आ गई हैं जो इतिहास-सिद्ध नहीं हैं। जैसे इसमें एक स्थान पर सूरजमल द्वारा मालवा की राजधानी माँडू को जीतने की बात कही गई है—

> पुनि माँडौगढ़ माल्वै जीत्यौ सिंह सुजान।
> कूरम की रच्छा करी निज कर गहि किरिवान ॥[149]

परन्तु इतिहास-ग्रंथों में इस घटना का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

इसकी भाषा प्रधानतया व्रजभाषा है। परन्तु पंजाबी, पूरबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, उर्दू आदि के भी कुछ अंश इसमें पाये जाते हैं। जहाँ जिस प्रांत अथवा जाति विशेष के मनुष्यों के विषय में सूदन को कुछ कहना होता तो वहाँ उसी प्रान्त या जाति की भाषा का प्रयोग करने की उनकी आदत थी। अतएव कुछ स्थानों पर यह ग्रंथ बहुत बेढंगा हो गया है और संकलन-सा प्रतीत होता है।

महाकवि केशवदास की भाँति सूदन ने भी छंद बहुत जल्दी-जल्दी बदले हैं और जिस स्थान पर जिस छंद का प्रयोग किया है वहाँ छंद शास्त्र के नियमों का पूर्णतः पालन हुआ है। फलस्वरूप एक तो छंदोभंग इनकी कविता में बहुत न्यून है और दूसरे, उसकी गति भी अच्छी है। इनकी वर्णन-शैली सशक्त और कविता ओजस्विनी है। विशेषकर सेना का, युद्ध की तैयारी का, रणांगण की भगदड़ का, वर्णन इन्होंने बहुत अच्छा किया है। इनके ये वर्णन पृथ्वीराज रासौ की टक्कर के हैं। परन्तु कहीं-कहीं इतने लंबे हो गये हैं कि पढ़ते-पढ़ते मन ऊब जाता है।

(२७) भोलानाथ—ये जयपुर के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम नंदराम था। इनके पौत्र चैनराम ने अपने 'रससमुद्र' में इनका थोड़ा-सा वृत्तान्त दिया है जिससे मालूम होता है कि जयपुर के महाराजा सवाई माधोसिंह प्रथम के समय (सं० १८०७-२४) में ये जयपुर में आये थे

149. वही; पद्य ३२

और इससे पूर्व ये भरतपुर के जाट राजा सूरजमल के पास रहते थे। चंनराम ने यह भी लिखा है कि भोलानाथ मुगल सम्राट शाहजहां के बड़े प्रीति-पात्र थे और उन्हीं से मांगकर सूरजमल इनको भरतपुर लाये थे।[150] परन्तु चंनराम का यह कथन इतिहास से मेल नहीं खाता क्योंकि शाहजहां और सूरजमल समकालजीवी नहीं थे।

भोलानाथ संस्कृत और व्रजभाषा दोनों में रचना करते थे। इनके रचे व्रजभाषा के ग्रंथों के नाम ये हैं:—

(१) लीला-प्रकाश (२) सुख-निवास (३) नवलानुराग (४) इस्कलता (५) जुगल-विलास (६) भीष्म-पर्व भाषा (७) भागवत दशमस्कंध भाषा (८) विप्रलब्धा वर्णन (९) सुमनप्रकाश (१०) नखशिख (११) प्रेम पच्चीसी और (१२) नैषध (प्रथम सर्ग का अनुवाद)।

(५८) प्रतापसिंह—ये जयपुर के महाराजा माधोसिंह के पुत्र और महाराजा जयसिंह (द्वितीय) के पौत्र थे। इनका जन्म सं० १८२१ में हुआ था। महाराजा माधोसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुए। परन्तु उनकी अकाल मृत्यु हो गई जिससे उनके छोटे भाई इन प्रतापसिंह को राज्याधिकार प्राप्त हुआ। उस समय इनकी आयु १५ वर्ष की थी।

महाराजा प्रतापसिंह के समय में मरहठों का जयपुर में बड़ा आतंक और प्रभाव था। इसलिये उनका दमन करने के लिये महाराजा को उनसे कई युद्ध करने पड़े और दो-एक बार इन्होंने उनको परास्त भी किया। परन्तु

---

[150] नंदराम तिनकै तनय, कवि पंडित परवीन।
ताकै भोलानाथ जिहिं, कीन्हें ग्रंथ नवीन॥
छहों शास्त्र अध्येन मौ, गयै दिल्लीपति पास।
शाहजहाँ पतिसाह कै, भयौ मिलत हुल्लास॥
पांच सदी मनसव दियौ, राखै कर अति प्रीत।
तव तिनकी रुचि जानि जिन, भाषा किय इह रीत॥
सूरजमल्ल व्रजेस सौ, गयौ दिलीपति धाम।
ले आयौ भुवनाथ कौ, दिय वंछित धन धाम॥
माधवेस अंवापतिहिं, मिलै तहाँ ते आय।
तिनहूँ भोलानाथ कौ, राखै वहु चित लाय॥

—रससमुद्र

राजपूतों की अनेकता तथा अंतःकलह के कारण जयपुर राज्य का राजनैतिक वातावरण उस समय कुछ ऐसा बिगड़ा हुआ था कि इन्हें अपने प्रयत्नों में स्थायी सफलता न मिल सकी । निरंतर युद्ध में संलग्न रहने के कारण इनकी धन-जन से ही हानि नहीं हुई, किन्तु इनके स्वास्थ्य को भी भारी धक्का पहुँचा और अन्त में सं० १८६० में ३९ वर्ष की अल्पायु में इनका प्राणांत हो गया ।

महाराजा प्रतापसिंह का शरीर बहुत सुडौल और सुंदर था । ये बड़े हँसमुख, मिलनसार और गुणग्राही थे । परन्तु इनमें दो-एक दुर्गुण भी थे जिसके कारण इनके सभी गुणों पर पानी फिर गया था । ये बहुत विलासी और अपव्ययी थे । इनका अधिकांश समय भोगविलास में व्यतीत होता था । ये स्त्रियों की पोशाक पहिनते और पाँवों में घुँघरू बाँधकर रनवास में नाचा करते थे ।[151] मदिरा भी ये बहुत पीते थे । इन कुटेवों के कारण इनके हितैषी बहुत से सरदार-उमराव मारे लज्जा के जयपुर छोड़कर चले गये थे ।

ये ज्ञान-विज्ञान के बड़े प्रेमी और ललित कलाओं के पृष्ठपोषक थे । कवियों, विद्वानों और संगीतज्ञों का इनके राजदरबार में बड़ा सम्मान होता था । इन्होंने आईने-अकबरी, दीवाने हाफिज आदि फारसी ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद करवाया और ज्योतिष, धर्मशास्त्र, वैद्यक, संगीत इत्यादि विषयों पर भी बहुत से ग्रंथ लिखवाये[152] जिनका विद्वत्संसार में बड़ा मान है ।

महाराजा स्वयं ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे । प्रतिदिन पाँच छंद बनाने का इनका नियम था जिनको ये अपने इष्टदेव श्री गोविंदजी महाराज को अर्पण किया करते थे । कविता में ये अपना नाम 'ब्रजनिधि' लिखते थे । इनके बनाये ग्रंथों के नाम ये हैं ।

(१) प्रेम-प्रकास (२) फाग-रंग (३) प्रीति-लता (४) मुरली-विहार (५) सुहाग-रैनि (६) विरह-सलिता (७) रेखता-संग्रह (८) स्नेह-विहार (९) रमक-जमक-बत्तीसी (१०) प्रीति-पचीसी (११) ब्रज-शृंगार (१२) स्नेह-संग्राम (१३) नीति-मंजरी (१४) शृंगार-मंजरी (१५) वैराग्य-मंजरी (१६) रंग-चौपड़ (१७) प्रेम-पंथ (१८) दुखहरनवेलि (१९) सोरठ ख्याल

151. जदुनाथ सरकार; फॉल आव दि मुगल एम्पायर, भाग ३, पृ० ३३७
152. पुरोहित हरिनारायण; बृजनिधि-ग्रंथावली, पृ० ४७ (भूमिका)।

(२०) रास का रेखता (२१) श्रीव्रजनिधि-मुक्तावली (२२) व्रजनिधि पद-संग्रह और (२३) हरिपद-संग्रह।

व्रजनिधि कृष्णोपासक कवि थे। इनकी कविता में व्रजभाषा का प्राय· वही माधुर्य्य है जो सूर, विहारी, नागरीदास आदि कवियों की कविता में दृष्टि-गोचर होता है। विशेषकर नागरीदास की कविता से इनकी कविता का वहुत सादृश्य है। इनकी कविता वहुत सरस, परिमार्जित एवं उल्लास पूर्ण है। वर्णन-शैली सहज और चित्रोपम है। भगवान श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं के विविध दृश्य जो इन्होंने अंकित किये हैं वे वहुत सुन्दर तथा लोक-रंजककारी हैं और उनसे इनकी अखंड कृष्ण-भक्ति ही व्यंजित होती है। परंतु राधा का जो चित्र इन्होंने खींचा है उसमें भक्ति-भाव की अपेक्षा वासना का रंग अधिक है। एक भक्त कवि का अपने आराध्य के प्रति जो पवित्र भाव होना चाहिये वह उसमें नहीं है। राधा का वर्णन पढ़ते समय पाठक को ऐसा प्रतीत होता है मानो वह किसी साधारण सांसारिक नायिका का वर्णन पढ़ रहा है। जैसे—

राधे वैठी अटरियाँ, झाँकति खोलि किवार।
मनौं मदन-गढ़ तें चलीं, द्वै गोली इक सार॥
राधे घूँघट ओट सौं, चितई नैंक निहारि।
मनौं मदन-कर तें चली, गुप्ती की तरवारि॥
नेजा से नैनान सौं, कियौ राधिका वार।
अक-वक व्है जकि-थकि रहै, व्रजनिधि नंदकुमार॥
वाँकी भौंह-गिलोल सौं, छुटे गिलोला नैन।
व्रजनिधि मद गजराज के, छूटि गये सव फैन॥[153]

महाराजा प्रतापसिंह को पद्यानुवाद का अच्छा अभ्यास था। इनके नीति मंजरी, श्रृंगार-मंजरी और वैराग्य-मंजरी ग्रंथों में, जो क्रमशः भर्तृहरि के नीति-शतक, श्रृंगार-शतक, और वैराग्य-शतक के अनुवाद हैं, मूल कवि के भावों की अच्छी रक्षा हुई है और उनका वास्तविक सौंदर्य्य प्रायः नष्ट नहीं होने पाया है। अतः इन ग्रंथों के पढ़ने में मूल ग्रंथों के पढ़ने का सा आनंद आता है। उदाहरण—

---

153. पुरोहित हरिनारायण; व्रजनिधि-ग्रंथावली, पृ० १३–१५।

मूल

कांतेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रेणीभरेत्युत्सुक: ।
पीनोत्तुंगपयोधरेति समुखांभोजेति सुभ्रूरिति ।।
दृष्ट्वा माद्यति मोदते भिरमते प्रस्तोति विद्वानपि ।
प्रत्यक्षाशुचिपुत्रिकां स्त्रिय महो मोहस्य दुश्चेष्टितम् ।।

अनुवाद

खीन लंक कुच पीन नैंन पंकज से राजत ।
भौंहैं काम-कमान चंदसौं मुख छवि छाजत ।।
मद-गयंद सी चाल चलत चितवत चित चोरत ।
ऐसी नारि निहारि हाथ पंडित जन जोरत ।।
अति ही मलीन सब ठौर वह चितगति भरि अनेक छल ।
ताकौं सु प्रान प्यारी कहत अहो मोह-महिमा प्रबल ।।[154]

और भी—

मूल

कृश: काण: खंज: श्रवणरहित: पुच्छविकलो ।
व्रणी पूयक्लिन्न: कृमिकुलशतैरावृततनु: ।।
क्षुधाक्षामो जीर्ण: पिठरककपालार्पितगल: ।
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हंत्येव मदन: ।।

अनुवाद

दुबरो कानौ कुस श्रवण बिनु पूंछ नवायें ।
बूढ़ो विकल सरीर वार बिनु छार लगायें ।।
झरत सीस तें राधि रुधिर कृमि डारत डोलत ।
छुधा-छीन अति दीन, गरगना कंठ कलोलत ।।
यह दसा स्वान पाई तऊ कुतिया सौं उरझत गिरत ।
देखौ अनीत या मदन की मृतिकन कौ मारत फिरत ।।

154. न० नं० उ० की हस्तलिखित प्रति, पत्र ६२ ।
155. वही; पत्र ११३ ।

(५९) द्वारकानाथ भट्ट—ये श्रीकृष्ण भट्ट के पुत्र थे[156] और अपने पिता के समान ही संस्कृत एवं भाषा के उद्‌भट विद्वान और प्रतिभावान कवि थे। इनका जन्म सं० १७५० में हुआ था। ये जयपुर के महाराजा सवाई माधौसिंह (सं० १८०७-२४) के बड़े कृपापात्र थे जिन्होंने इनको 'सुरसती' की पदवी प्रदान की थी। महाराजा माधौसिंह के पश्चात् क्रमशः महाराजा पृथ्वीसिंह, और महाराजा प्रतापसिंह जयपुर के राज्यसिंहासन पर आसीन हुए थे। उनके राजत्व-काल में भी द्वारकानाथ का मान-सम्मान पूर्ववत बना रहा और उन्होंने इनको 'बानी', 'भारती' इत्यादि की उपाधियां देकर गौरवान्वित किया। इनके पौत्र कवि मंडन ने अपने 'रावलचरित्र' ग्रंथ में इन बातों का विवरण दिया है—

पृथ्वीसिंह परताप को, किय गुन सों भरपूर।
'बानी' 'भारती' नाम लिय, जग में रह्यौ जहूर ॥
कवि कुल ओर कवीन्द नित, नृप मुख बोलै बैन।
पृथ्वीसिंह परताप सों, पाये निसि दिन चैन ॥

द्वारकानाथ के बनाये सात ग्रंथ मिलते हैं। इनमें छः ग्रंथ व्रजभाषा के और एक संस्कृत का है। उनके नाम ये हैं—

(१) मधुकर-कलानिधि (२) वाणी-वैराग्य (३) रागचंद्रिका (४) शब्दचंद्रिका (५) पृथ्वीसिंह महाराज का ब्यावला (६) प्रतापसिंह के सभासदों का वर्णन (७) अलंकार ग्रंथ (८) गालव गीत (संस्कृत)।[157]

इन ग्रंथों के अतिरिक्त इनके फुटकर छंद भी बहुत मिलते है। एक कवित्त यहाँ दिया जाता है।

उमड़ि अथाह अम्बु धारे धुरवान ये तो
झंझा की झकोर झुकै झरना झरतु है।
'सुरसती' कहै चपलान की चमाचमीन
चमकति कैह्यो दिव्य औषधि हिरतु है ॥
टूटि टूटि परै नव वधूटी व्योम मंडल तें
भिरि भिरि मानिक के सिखर सिरतु है।
सांखवारे सक्र सों पयोनिधि की कांखवारे
सांखवारे पब्बै मेह मिस लै फिरतु है ॥

---

156. राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, पृ० १८६।

157. वही; पृ० १८८।

(६०) जगदीश—ये लक्ष्मण भट्ट के पौत्र और श्रीकृष्ण भट्ट (कविकलानिधि) के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७८० में हुआ था। ये जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह के दरबारी कवि थे। इनके बनाये कई ग्रंथ कहे जाते हैं जिनमें से नीचे लिखे पंद्रह ग्रंथों का पता है :—

(१) काव्यविनोद (२) किशोरसुखसागर (३) जगतरसरंजन (४) जगतभक्तिविलास (५) भक्ति-अरगजा (६) पदमकरंद (७) पदपंकज (८) ब्रह्मवैवर्त पद्यानुवाद (९) भागवत दशम स्कंध पद्यानुवाद (१०) षोड़श ग्रंथ अनुवाद (११) वन-पर्व पद्यानुवाद (१२) शांति-पर्व पद्यानुवाद (१३) शिशुपाल वध पद्यानुवाद (१४) शतक त्रय पद्यानुवाद और (१५) आर्या-शतक पद्यानुवाद ।

जगदीशजी के काव्य में उच्च कोटि के साहित्यिक गुण पाये जाते हैं। इनकी भाषा बहुत सीधी-सादी और व्यवस्थित है । वर्णन-शैली चित्रोपम और साकार है । जयपुर के 'बादल महल' पर लिखा इनका एक कवित्त देखिये—

उतै भूरि बादर हैं बादर महल इतै
चंचल उतै को इतै कंचनियाँ लाखी है ।
जुगनूं जमात उतै दीपन की पाँत इतै
गरज उतै को इतै नोबतियाँ आखी है ।।
उतै साँझ फूली इतै रंग-रली समा सोभ
कवि जगदीस भल भारती यों भाखी है ।
उतै इन्द्र इतै महेन्द्र श्री प्रताप भूप
अद्‌भुत तीज की जलूस रचि राखी है ।।

(६१) गणपति भारती—ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण मथुरामल के पुत्र और जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह के दरबारी कवि थे। इनका रचनाकाल सं० १८३५–६० है। ये महाराजा प्रतापसिंह के काव्य-गुरु भी रहे थे[158] और उन्होंने इनको एक गांव, पालकी, पदवी इत्यादि देकर सम्मानित किया था जिसका उल्लेख इन्होंने अपने इस छंद में किया है—

158. हितैषी, दिसंबर-जनवरी, सन् १९४१-४२ में प्रकाशित स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायणजी का 'जयपुर के कवि-कोविद' शीर्षक लेख, पृ० १४७ ।

कीन्ही हूं दीठि श्रीप्रताप भूप जैपुर पति
ता दिन तें गनपति अंग पर आव भो ।
ग्जाइवे को गाम जमा रहिवे कों घर नीके
रतननि के भूषन सों भर भर छाव भो ।।
'भारती' भनत हमें पालकी चंवर दिये
जरी सिरपाव साथ सहित मिनाव भो ।
सारती सकल्प सुत्र गुरुवर उचारती
जारती अरिन छानी 'भारती' मिनाव भो ।।[159]

गणपति के बनाये कई ग्रंथ मिलते हैं जिनमें कुछ मौलिक, कुछ संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद और कुछ संकलन हैं। उनके नाम ये हैं—

(१) भीष्म-पर्व भाषा (२) योगवाशिष्ठसार भाषा (३) नय-पच्चीसी (४) विरह-पच्चीसी (५) प्रीति-मंजरी (६) अन्योक्ति-काव्य (७) शृंगार हजारा (८) पीरहजारा (९) नवरस और (१०) अलंकार-सुधानिधि ।

(६२) पद्माकर—ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८१० में बाँदा में हुआ था। कोई-कोई इनका जन्मस्थान सागर बतलाते हैं। इनके पिता का नाम मोहनलाल और पितामह का जनार्दन था। ये कई स्थानों पर रहे। सुगरा के नोने अर्जुनसिंह ने इन्हें अपना गुरु बनाया था। सं० १८४९ में ये महाराज गोसांई अनूपगिरि उपनाम हिम्मत बहादुर के यहां थे। सं० १८५६ में ये सितारे के महाराज रघुनाथराव के यहाँ गये और वहाँ से जयपुर पहुँचे जहाँ पर इन्होंने अपना प्रख्यात ग्रंथ 'जगद्विनोद' बनाया। ये कुछ दिनों तक ग्वालियर, उदयपुर और बूँदी के राजदरबारों में भी रहे थे।

कहते हैं कि वृद्धावस्था में पद्माकर कानपुर चले गये थे। वहां सं० १८९० में गंगा-तट पर इनका गोलोकवास हुआ था। उस समय इनकी आयु ८० वर्ष की थी।

पद्माकर के दो पुत्र थे, मिहीलाल और अम्बाप्रसाद। दोनों पिता के समान ही कविता करते थे। मिहीलाल जयपुर ही में रहे। इनके वंशज अभी तक जयपुर में रहते हैं। अम्बाप्रसाद के वंशवाले दतिया आदि राज्यों में पाये जाते हैं।

---

159. राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, पृ० १७६ ।

पद्माकर जन्मसिद्ध कवि और साहित्य-शास्त्र के अधिकारी विद्वान थे। इनके बनाये निम्नलिखित नौ ग्रंथों का पता है।

(१) हिम्मत बहादुर-विरुदावली (२) जगद्विनोद (३) पद्माभरण (४) जयसिंह-विरुदावली (५) आलीजा-प्रकास (६) हितोपदेश भाषा (७) रामरसायन (८) प्रबोध-पचासा और (९) गंगा-लहरी।

इनके सिवा इनकी लिखी नौ पुस्तकें और बताई जाती हैं: कलियुग पच्चीसी, प्रतापसिंह-विरुदावली, यमुना-लहरी, ईश्वर-पच्चीसी, रायसा भगवत्पंचाशिका, राजनीति, प्रतापसिंह सफरनामा और अश्वमेध।[160]

इनमें 'जगद्विनोद' पद्माकर का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। यह जयपुर के महाराजा सवाई जगतसिंह की आज्ञा से बनाया गया था। इसमें इसके निर्माण-काल का निर्देश नहीं है। परंतु अनुमान किया जाता है कि यह सं० १८६७ में लिखा गया था।[161] इसमें ६९२ छंद हैं–४२० दोहे, १४२ कवित्त, १२७ सवैये और ३ छप्पय। ग्रंथ दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड में मंगलाचरण के अनंतर महाराजा जगतसिंह की प्रशंसा की गई है और फिर नायिका-भेद लिखा गया है। दूसरे खंड में भाव, विभाव, संचारी भाव और रसों का वर्णन है।

पद्माकर शृंगारी कवि थे। इनकी कविता में शृंगार रस का प्राधान्य है। परन्तु इन्होंने वीर, शान्त आदि रसों पर भी यथेष्ट मात्रा में लिखा है और बहुत अच्छे ढंग से लिखा है। इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है जो बहुत कोमल एवं कर्णमधुर है। उसमें अनुप्रास की छटा भी खूब दिखाई देती है। इनकी कविता का प्रधान गुण है भाव की चित्रात्मकता। जिस भाव को उठाया उसका इन्होंने ऐसा मनोरम और वास्तविक चित्र अंकित किया है कि वह मूर्तिमान होकर हमारी आँखों के सामने झूलने लगता है और हमारे मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ जाता है।

(६३) गौरीबाई—इनका जन्म सं० १८१५ में डूंगरपुर शहर में हुआ था। यह जाति की नागर ब्राह्मण थीं।[162] इनके माता-पिता का नाम

---

160. श्री बगौरी गंगाप्रसादसिंह; पद्माकर की काव्य साधना, पृ० ८ (भूमिका) श्रीकल्याण-वंश-वृक्ष, पृ० १२

161. मिश्रबंधु-विनोद, भाग दूसरा, पृ० ९०२

162. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २०३

अविदित है । इनका विवाह पांच-छह वर्ष की बहुत छोटी अवस्था में हो गया था । परंतु विवाह के एक वर्ष बाद इनके पति का देहान्त हो गया । वैष्णव धर्म का पालन गौरीबाई से अच्छी तरह से हो सके इस उद्देश्य से इनके माता-पिता ने इन्हें पढ़ाना-लिखाना प्रारंभ किया और कुछ ही समय में यह पढ़-लिखकर होशियार हो गईं । कालांतर में इन्होंने भागवत, गीता आदि धार्मिक ग्रंथों का अच्छा अध्ययन कर लिया और कविता भी करने लग गईं । अपना अधिकांश समय यह पूजा-पाठ और भजन-कीर्तन में व्यतीत करती थीं । धीरे-धीरे इनकी ज्ञान-गरिमा और भगवद्भक्ति की महिमा चारों ओर फैल गई और हजारों की संख्या में लोग इनके दर्शन करने तथा भजन सुनने के लिये इनके पास आने लगे । उस समय डूंगरपुर पर महारावल शिवसिंह (सं० १७८६-१८४२) राज्य करते थे[163] जो बड़े धर्मिष्ठ और प्रभु-भक्त राजा थे । उनके कानों में भी गौरीबाई की कीर्ति-कथा पहुँची । उन्होंने इनके लिए एक मंदिर बनवा दिया जो अभी तक डूंगरपुर में मौजूद है ।

कहते हैं कि अंत समय में गौरीबाई काशी चली गई थी और वहीं सं० १८६५ के लगभग पचास वर्ष की अवस्था में इनका देहावसान हुआ था ।

गौरीबाई मीरां का अवतार मानी गई हैं । उनकी तरह इन्होंने भी केवल फुटकर पद लिखे हैं जिनकी संख्या ६१० है । इन पदों में इन्होंने ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य की महिमा बतलाई है । इनकी भाषा राजस्थानी तथा ब्रजभाषा का मिश्रण है । इनके पदों पर कबीर, सूर आदि प्राचीन भक्त कवियों का प्रभाव स्पष्ट है । सरलता और तन्मयता भी उनमें यथेष्ट पाई जाती है । पद गाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं । उदाहरण—

प्रभु मोकूं एक बेर दरसन दइयै ॥
तुम कारन मैं भई रे दिवानी, उपहास जगत की सहियै ।
हाथ लकुटिया कांधे कमलिया, मुख पर मुरली बजैयै ॥
हीरा मानिक गरथ भंडारा, माल मुलक नहीं चहियै ।
गवरी के ठाकर सुख के सागर, मेरे उर अंतर रहियै ॥[164]

---

163. ओझा; डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० २२१ ।
164. राजस्थानी भाषा और साहित्य; पृ० २०३ ।

(६४) अलिरसिक गोविंद—ये जयपुर-निवासी बालकृष्ण के पुत्र थे। इनका रचना-काल सं० १८३० के लगभग है। ये हरिव्यास के शिष्य थे। वृद्धावस्था में ये वृन्दावन चले गये थे जहाँ सं० १८६० में गोलोकवासी हुए थे।

ये अपने समय के अच्छे कवि और प्रतिष्ठित भक्त थे। इनके निम्नलिखित सात ग्रंथों का पता है जो व्रजभाषा में हैं:—

(१) गोविंदानंदघन (२) अष्टदेश भाषा (३) युगलरसमाधुरी (४) कलियुग रासो (५) पिंगल ग्रंथ (६) समयप्रबंध और (७) श्रीरामायण सूचनिका।[165]

(६५) छत्रकुँवरि—इनका बनाया हुआ 'प्रेमविनोद' नामक एक ग्रंथ मिलता है। इसमें इन्होंने तनिक आत्म-परिचय दिया है जिससे मालूम होता है कि यह रूपनगर (किशनगढ़) के महाराजा सरदारसिंह की पुत्री और महाराजा सावंतसिंह उपनाम नागरीदास की पोती थीं—

रूपनगर नृप राजसी, जिन सुत नागरिदास।
तिनके सुत सरदारसी, हौं तनया मैं तास॥

रूपनगर के इतिहास में इनको महाराजा सरदारसिंह की उप-पत्नी की बेटी लिखा है और यह भी लिखा है कि इनका विवाह कोटड़े अर्थात् राघौगढ़ के खीची गोपालसिंह के साथ हुआ था। यह लेख ठीक है और इसकी पुष्टि भाट-बड़वों की बहियों से भी होती है।

छत्रकुँवरी बाई का लिखा हुआ पूर्वोक्त एक ही ग्रंथ 'प्रेमविनोद' मिला है जो व्रजभाषा में है। यह सं० १८४५ में लिखा गया था।[166] इसमें शृंगार रस की प्रधानता है। रचना सरस और मनोहारिणी है।

(६६) भैरूँ कवि—जयपुर राज्य के अधीन शेखावाटी प्रान्त में खेतड़ी नाम का एक प्रसिद्ध ठिकाना है। यह जयपुर से उत्तर की ओर ४५ मील की दूरी पर बसा हुआ है और जयपुर राज्य का सब से बड़ा करद संस्थान है। भैरूँ कवि यहीं के निवासी थे। ये खेतड़ी के राजा बाघसिंह के समकालीन थे। बाघसिंह ने सं० १८२८ से सं० १८५७ तक राज्य किया था।[167] अतएव लगभग यही समय भैरूँ कवि का भी ठहरता

165. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १० ।
166. मुंशी देवीप्रसाद; महिलामृदुवाणी, पृ० २० ।
167. पं० झाबरमल्ल शर्मा; आदर्श नरेश, पृ० १४ ।

दुर्लभ या नर देह अमोलक पाइ अजान अकारथ खोवै ।
सो मति हीन विवेक बिना नर साध मतंगहिं ईंधन ढोवै ।।
कंचन भाजन धूरि भरै सठ मूढ़ सुधारस सौं पग धोवै ।
बोहित काग उड़ावन कारन डारि महामणि मूरख खोवै ।।

(६८) विष्णुसिंह—इनका जन्म सं० १८३० में हुआ था ।[170] ये बूंदी-नरेश महाराव राजा उमेदसिंह के पौत्र और अजीतसिंह के पुत्र थे । जब ये साढ़े चार माह के थे तब इनके पिता का देहान्त हो गया जिससे इनके दादा उमेदसिंह ने बूंदी का शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया और जब तक विष्णुसिंह नाबालिग़ रहे तब तक उन्होंने उसे सुचारु ढंग से संभाला ।[171] बड़े होने पर इन्होंने राज्य-कार्य करना प्रारंभ किया और जहाँ तक बन सका अपनी तरफ से राज्य को उन्नत करने में कोई कसर न रखी । महाराव राजा को मृगया का बड़ा शौक़ था और अपने हाथों से सहस्रों सिंहों का शिकार किया था । मृगया में इनका एक पाँव भी टूट गया था जिससे ये चिरकाल तक लंगड़े रहे और बहुत छोटे दीख पड़ते थे । इनके समय में बूंदी राज्य और अंग्रेजी सरकार के बीच में संधि हुई थी । इन्होंने सात वर्ष तक राज्य किया और अपने पीछे दो पुत्रों को छोड़कर ४५ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुए ।

विष्णुसिंह बड़े वीर, विचारशील, उदार एवं समयोचित कार्य करने-वाले व्यक्ति थे, और विद्वानों तथा कवियों का बड़ा सम्मान करते थे । इसके सिवा ये स्वयं भी उच्च कोटि के कवि थे । इनके बनाये हुए दस हज़ार के लगभग कवित्त, सवैया इत्यादि मौजूद हैं, जिनसे इनके अद्भुत काव्य-कौशल और अगाध भगवद्भक्ति का परिचय मिलता है । इनकी भाषा और भाव दोनों जैसे सरल हैं वैसे ही व्यंजना भी चुभती हुई, आकर्षक है । उदाहरण—

होरी में गोरी किसोरी सबै मिलि दौरी सुपौरी पै कान्ह पयैरी ।
हो हो कै हाक करी हँसिकै बसिकै रसिकै त्रसिकै सचयैरी ।।
चंदन चोवेन चर्चित है चित यों पिय को करि कै रिझयैरी ।
मार मची अति ही सुकुमार सुलाल गुलाल तें लाल भयैरी ।।

---

170. मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत, पृ० ७१ ।

171. वही ।

(६९) उमेदराम—ये पाल्हावत शाखा के चारण जयपुर राज्य के हर्सूलिया नामक गाँव में सं० १८०८ में पैदा हुए थे।[172] इनके पिता का नाम सामंतजी और दादा का पालीराम था। उमेदराम के जन्म लेने के कुछ दिन बाद ही इनके पिता सामंतजी का देहान्त होगया और इनके पितामह पालीराम ने इनको पाल-पोसकर बड़ा किया। उन दिनों मरहठों की सेना ने राजस्थान में लूट-मार मचा रखी थी। इसलिये सब लोग जहाँ-तहाँ भागते और छिपते फिरा करते थे। अतः अपने दादा पालीराम के साथ उमेदराम भी इधर-उधर भटकते रहते थे। परंतु कुछ काल बाद पालीराम की भी मृत्यु हो गई और घर-गृहस्थी का सारा भार इन पर आ पड़ा। इससे दुःखी होकर ये घर से निकल गये और अपने जन्म-स्थान हर्सूलिया से कोई दस कोस की दूरी पर मालपुर नामक गाँव में एक ब्राह्मण के पास रहने लगे। उमेदराम यद्यपि विपत्ति के समुद्र में डूबे हुए थे, पर उद्योगी थे। इसलिए पंडितजी की सेवा कर उनके स्नेह-भाजन बन गये और विद्याध्ययन करने लगे। यहाँ इन्होंने सारस्वतचंद्रिका, अमरकोष, रघुवंश इत्यादि संस्कृत ग्रंथों तथा भाषा-कविता का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और फिर अपने घर लौट आये। परंतु माता की दरिद्रावस्था देखकर इनका दिल पसीज गया और दूसरे दिन जयपुर चले गये।

इस समय जयपुर में महाराजा माधोसिंह का राज्य था। उन्होंने इनका बड़ा सत्कार किया और एक सिरोपाव तथा पचास रुपैया देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। इसके अनंतर ये राजस्थान के अन्य कई रजवाड़ों में गये जहाँ इनका बड़ा मान-सम्मान हुआ। अंत में ये राजगढ़ (अलवर) के रावराजा बख्तावर-सिंह के पास गये जिन्होंने इनको अपने पास रख लिया। बख्तावरसिंह की कृपा से इनका खूब भाग्योदय हुआ। यहाँ तक कि अलवर राज्य का शासन-प्रबंध भी इन्हीं के हाथ से होता था। इनको दस हजार की जागीर, हाथी, घोड़े, शिविकादि राज्य-चिह्न मिले और इस प्रकार इनका घर बन गया।

रावराजा बख्तावरसिंह के बाद विनयसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए। इनके समय में भी उमेदराम का सम्मान पूर्ववत बना रहा। इनका देहान्त सं० १८७८ में हुआ।[173]

---

172. पुरोहित हरिनारायण, स्व० बारहठ बालाबक्श, पृ० १० ।

173. वही ।

उमेदराम के दो पुत्र थे, चामुंडदान और रूपजी । ये भी बहुत विख्यात थे । रूपजी बड़े दातार थे । उनके विषय में यह कविता प्रसिद्ध है—

रूपा बारठ खूब था, वासी अलवर का ।
दी सतरैसै असरफी, इक टप्पा भरका ॥

परंतु रूपजी दुराचारी और शराबी थे । उन्होंने अपने पिता की संचित की हुई धन-संपत्ति को उड़ा दिया । इनके दुराचरण के कारण इनके दो गाँव भी जब्त कर लिये गये जो बहुत उद्योग करने पर भी इनको वापस न मिले ।

राजस्थान के चारण कवियों में उमेदराम का एक विशिष्ट स्थान है । ये डिंगल और पिंगल दोनों में रचना करते थे । विशेषकर शोक-काव्य लिखने में ये बड़े निपुण थे । इनके लिखे ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) वाणीभूषण (२) राजनीति चाणक्य (३) रामचंद्रजी की राजनीति (४) अवध पच्चीसी (५) मिथिला पच्चीसी (६) जमक-शतक (७) बिहारी-सतसई की टीका (८) कविप्रिया की टीका (९) मरसिया बख्तावरसिंहजी (१०) गीत झमाल (११) सत्योपदेश (१२) ब्रह्मकवच और (१३) रामाश्वमेध ।[174]

उमेदराम संस्कृत, डिंगल, पिंगल आदि कई भाषाओं के पंडित थे । काव्य-शास्त्र का इनको पूर्ण ज्ञान था । इनमें यथेष्ट कवित्व-शक्ति भी थी । इनकी भाषा खूब मँजी हुई ब्रजभाषा है और यह विषय-वस्तु का एकान्त अनुसरण करती है । कविता अलंकारमयी और चित्र-बहुल है ।

(७०) मंडन भट्ट—ये जयपुर के महाराजा जयसिंह (तृतीय) के आश्रित कवि जाति के तैलंग ब्राह्मण थे । इनका जन्म सं० १८३०. में हुआ था ।[175] इनके पिता का नाम ब्रजलाल था जो ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे । मंडनजी अपने समय के बहुत प्रसिद्ध कवि थे और जयपुर के अतिरिक्त बूंदी आदि अन्य राज्यों में भी इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी । इन्होंने कुल मिलाकर ११ ग्रंथ बनाये जिनके नाम ये हैं—

(१) श्रीकृष्णब्रजविहार (२) नवरसरत्नाकर (३) रससमुद्र (४) राम जस चंद्रिका (५) कृष्ण-सुजस-प्रकास (६) सुलोचना-चरित्र (७) राठौड़

174. वही ।
175. श्रीवल्लभ-वंश-वृक्ष, पृ० १२

चरित्र (८) भारतचरित्र (९) रावलचरित्र (१०) जयसाह-सुजस-प्रकाश और (११) बापूचरित्र[176]

(७१) बुधजन—ये जयपुर-निवासी जैन कवि थे। इनका वास्तविक नाम वृद्धिचंद था। ये दीवान अमरचंद के मुख्य मुनीम थे।[178] इनका रचना काल सं० १८७०-९२ है। इनकी अब तक निम्नलिखित चार पद्य-रचनाएँ मिली हैं—

(१) तत्त्वार्थबोध (२) बुधजन-सतसई (३) पंचास्तिकाय और (४) बुधजन-विलास।

बुधजन हिंदी के उन इने-गिने जैन कवियों में से हैं जिनकी रचना में थोड़ी-सी साहित्यिकता पाई जाती। भाव की मौलिकता इनमें विशेष दिखाई नहीं देती पर भाषा इनकी काफी सरस और विषयानुकूल है। उदाहरण—

मेरे अवगुन जिन गिनौ, मैं औगुन को धाम।
पतित उधारक आप हो, करौ पतित को काम॥
पर उपदेस करन निपुन, ते तो लखे अनेक।
करै समिक बोलै समिक, जे हजार में एक॥
दुष्ट मिलत ही साधु जन, नहीं दुष्ट ह्वै जाय।
चंदन तरु को सर्प लगि, विष नहीं देत बनाय॥
दुर्जन सज्जन होत नहिं, राखौ तीरथ वास।
मेलो क्यों न कपूर में, हींग न होय सुवास॥

(७२) कृष्णलाल—ये बूंदी के प्रसिद्ध गोस्वामी गदाधरलाल के वंश में महंत श्रीमोहनलाल के पुत्र थे। इन्होंने सं० १८७२ में नायिका-भेद का एक ग्रंथ 'कृष्ण-विनोद' और सं० १८७४ में दूसरा ग्रंथ अलंकारों का 'रस-भूषण''नाम का बनाया।[179] महाराव राजा विष्णुसिंहजी की राणी राठौड़जी की आज्ञा से भक्तमाल की टीका भी इन्होंने लिखी थी। इनकी भाषा सानुप्रास और कविता मधुर है। एक उदाहरण देखिये—

---

176. राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, पृ० १९०; श्रीवल्लभ-वंश-वृक्ष, पृ० १२

178. कामताप्रसाद जैन; हिंदी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १९७।

179. मंशी देवीप्रसाद· कविरत्नमाला, पृ० ६२।

सूखि सफेद भई बिरहै जरि, सोई गंगे गति ऊरध दैनी।
अंग मलीन अंगार के धूमसी, सो जमुना जग जाहर रैनी॥
ताहि समैं भयो प्यारे को आवन, सो अनुराग गिरा गति लैनी।
कृष्ण कहै तब ही वर वाल कैं, आय कढ़ी ततकाल त्रिवैनी॥

(७३) चंडीदान—ये बूंदी राज्य के आश्रित कवि मिश्रण शाखा के चारण थे। इनका जन्म सं० १८४८ में हुआ था। इनके पिता का नाम वदनजी था जो अपने समय में राजस्थान के बहुसम्मानित कवि थे। डिंगल भाषा के प्रख्यात कवि सूरजमल इनके पुत्र थे। चंडीदान बूंदी के रावराजा विष्णुसिंह के बड़े कृपापात्र थे जिन्होंने इनकी फुटकर कविता और 'विरुद-प्रकाश' नामक ग्रंथ पर रीझकर इनको रोसूंदा नामक एक गांव, लाखपसाव, लक्ष्मणगज हाथी, मकान आदि पुरस्कार में दिये थे।[180]

चंडीदान बड़े मद्यपी थे। परंतु अंत समय में सब व्यसन छोड़कर काशी चले गये थे जहां सं० १८६२ में इनकी मृत्यु हुई थी।

ये संस्कृत, ब्रजभाषा तथा डिंगल के मर्मज्ञ विद्वान और आशुकवि थे। इनके बनाये ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) सारसागर (२) बलविग्रह (३) वंशाभरण (४) तीजतरंग और (५) विरुदप्रकाश।

चंडीदान की कविता सानुप्रास और सरस है। उसमें इन्होंने भाव की अपेक्षा उक्ति-चमत्कार लाने की चेष्टा विशेष की है। उदाहरण—

सुखद सताब डग डारत डगर बीच।
तरल ततायी तुरतायी आवजाव में।
राग क़ीर पेट तें उमंग अंग अंजन मैं
नाचत निकाई तान चाल चितचाव में॥
रामसिंह नृप के तुरंग चतुरंग मोर
ठौर ठौर ठायँ कवि कीरति कहाव मैं।
ऐसी गति नाच में न चपला चलाव में न
भामिनि के भाव में न पातुरी के पाँव में॥

---

180. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० १०८।

(७४) जवानसिंह—ये मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह के पुत्र और महाराणा हंमीरसिंह (द्वितीय) के पौत्र थे। इनका जन्म सं० १८५७ में और देहान्त सं० १८६५ में हुआ था।[181] इतिहास-प्रसिद्ध रूपवती कृष्ण कुमारी इनकी बहिन थी। ये कविता में अपना नाम 'ब्रजराज' लिखा करते थे। इन्होंने ब्रजभाषा में अनेक कवित्त, सवैया, पद आदि बनाए जिनका संग्रह 'ब्रजराज-पद्यावली' के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी भाषा परिमार्जित, कल्पनाएँ सुघड़ और रचना-पद्धति सरस है। इनके काव्य में शृंगार-भक्ति का अच्छा स्फुरण हुआ है। उदाहरण—

> ऊद्धव आय गये व्रज में सुनि गोपिन के तन में सुख छायो।
> आनंद सों उमगी सगरी चलि प्रेमभरी दधि आन बँधायो॥
> पूछनि है मनमोहन की सुधि बोलन ही दृग नीर चलायो।
> देखि सनेह सखा हरि के घनस्याम वियोग कछू न सुनायो॥[182]

(७५) चैनराम—ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण कविवर भोलानाथ के पौत्र और शिवदास के पुत्र थे। इनका रचना-काल सं० १८६० है। ये शाहपुरा (जयपुर) के अधीश हनुमंतसिंह के आश्रित थे।[183] इनका बनाया 'रससमुद्र' ग्रंथ प्रसिद्ध है। यह एक संग्रह-ग्रंथ है पर है बहुत उपयोगी। इसके सिवा इनके बनाये ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) अद्भुत रामायण (२) भाषा भारतसार (३) भारतसार-चंद्रिका और (४) जानकी सहस्रनाम।

(७६) मानसिंह—ये जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के पौत्र और गुमानसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८३९ में हुआ था।[184] इक्कीस वर्ष

---

181. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ७२२ और ७३२।
182. ब्रजराज-पद्यावली की हस्तलिखित प्रति, पत्र १०।
183. चैनराम तिन तनय, ग्रंथ भाषा कुछ पढ्ढिय।
    महाराव हनुमंत मिलत किय कृपा सु गढ्ढिय॥
    साहिपुरा सुखधाम तहाँ बुलवाय सु लिख्यिय।
    हित करि तहाँ बसाय सबै मन वाँछित दिख्यिय॥
    जिहि द्वार भीर जाचक अमित आवत पावत रैन दिन।
    हय गय अनंत भूषण बसनि बिन दिय रहत न एक छिन॥
    —रससमुद्र
184. विश्वेश्वर नाथ रेउ; मारवाड़ का इतिहास, पृ० ४०१।

सूखि सफेद भई बिरहै जरि, सोई गंगे गति ऊरध दैनी।
अंग मलीन अंगार के धूमसी, सो जमुना जग जाहर रैनी॥
ताहि समै भयो प्यारे को आवन, सो अनुराग गिरा गति लैनी।
कृष्ण कहै तब ही वर वाल कै, आय कढ़ी ततकाल त्रिवैनी॥

(७३) चंडीदान—ये बूंदी राज्य के आश्रित कवि मिश्रण शाखा के चारण थे। इनका जन्म सं० १८४८ में हुआ था। इनके पिता का नाम वदनजी था जो अपने समय में राजस्थान के बहुसम्मानित कवि थे। डिंगल भाषा के प्रख्यात कवि सूरजमल इनके पुत्र थे। चंडीदान बूंदी के रावराजा विष्णुसिंह के बड़े कृपापात्र थे जिन्होंने इनकी फुटकर कविता और 'विरुद-प्रकाश' नामक ग्रंथ पर रीझकर इनको रोसूंदा नामक एक गाँव, लाखपसाव, लक्ष्मणगज हाथी, मकान आदि पुरस्कार में दिये थे।[180]

चंडीदान बड़े मद्यपी थे। परंतु अंत समय में सब व्यसन छोड़कर काशी चले गये थे जहाँ सं० १८९२ में इनकी मृत्यु हुई थी।

ये संस्कृत, ब्रजभाषा तथा डिंगल के मर्मज्ञ विद्वान और आशुकवि थे। इनके बनाये ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) सारसागर (२) बलविग्रह (३) वंशाभरण (४) तीजतरंग और (५) विरुदप्रकाश।

चंडीदान की कविता सानुप्रास और सरस है। उसमें इन्होंने भाव की अपेक्षा उक्ति-चमत्कार लाने की चेष्टा विशेष की है। उदाहरण—

सुखद सताव डग डारत डगर बीच।
नरल ततायी तुरतायी आवजाव मैं।
गग क्षीर पेट तैं उमंग अंग अंजन मैं
नाचत निकाई तान चाल चितचाव मैं॥
रामसिंह नृप के तुरंग चतुरंग मोर
ठौर ठौर ठायें कवि कीरनि कहाव मैं।
ऐसी गति नाच में न चपला चलाव मैं न
भामिनि के भाव मैं न पातुरी के पाँव मैं॥

---

180. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० १०८।

(७४) जवानसिंह—ये मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह के पुत्र और महाराणा हमीरसिंह (द्वितीय) के पौत्र थे। इनका जन्म सं० १८५७ में और देहान्त सं० १८९५ में हुआ था।[181] इतिहास-प्रसिद्ध रूपवती कृष्ण कुमारी इनकी बहिन थी। ये कविता में अपना नाम 'व्रजराज' लिखा करते थे। इन्होंने व्रजभाषा में अनेक कवित्त, सवैया, पद आदि बनाए जिनका संग्रह 'व्रजराज-पद्यावली' के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी भाषा परिमार्जित, कल्पनाएं सुघड़ और रचना-पद्धति सरस है। इनके काव्य में शृंगार-भक्ति का अच्छा स्फुरण हुआ है। उदाहरण—

उद्धव आय गये व्रज में सुनि गोपिन के तन में सुख छायो।
आनंद सौं उमगो सगरी चलि प्रेमभरी दधि आन बँधायो॥
पूछनि है मनमोहन की सुधि बोलन ही दृग नीर चलायो।
देखि सनेह सखा हरि कै घनस्याम वियोग कछू न सुनायो॥[182]

(७५) चैनराम—ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण कविवर भोलानाथ के पौत्र और शिवदास के पुत्र थे। इनका रचना-काल सं० १८९० है। ये शाहपुरा (जयपुर) के अधीश हनुमंतसिंह के आश्रित थे।[183] इनका बनाया 'रससमुद्र' ग्रंथ प्रसिद्ध है। यह एक संग्रह-ग्रंथ है पर है बहुत उपयोगी। इसके सिवा इनके बनाये ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) अद्भुत रामायण (२) भाषा भारतसार (३) भारतसार-चंद्रिका और (४) जानकी सहस्रनाम।

(७६) मानसिंह—ये जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के पौत्र और गुमानसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८३९ में हुआ था।[184] इक्कीस वर्ष

---

181. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ७२२ और ७३२।
182. व्रजराज-पद्यावली की हस्तलिखित प्रति, पत्र १०।
183. चैनराम तिन तनय, ग्रंथ भाषा कुछ पढ्ढिय।
 महाराव हनुमंत मिलत किय कृपा सु गढ्ढिय॥
 साहिपुरा सुखधाम तहाँ बुलवाय सु लिन्निय।
 हित करि तहाँ बसाय सबै मन वांछित दिन्निय॥
 जिहि द्वार भीर जाचक अमित आवत पावत रैन दिन।
 हय गय अनंत भूषण धरनि बिन दिय रहत न एक छिन॥
 —रससमुद्र
184. विश्वेश्वर नाथ रेउ; मारवाड़ का इतिहास, पृ० ४०१।

सूखि सफेद भई बिरहै जरि, सोई गंगे गति ऊरध दैनी।
अंग मलीन अंगार के धूमसी, सो जमुना जग जाहर रैनी॥
ताहि समैं भयो प्यारे को आवन, सो अनुराग गिरा गति लैनी।
कृष्ण कहै तब ही वर बाल कैं, आय कढ़ी ततकाल त्रिवैनी॥

(७२) चंडीदान—ये बूंदी राज्य के आश्रित कवि मिश्रण शाखा के चारण थे। इनका जन्म सं० १८४८ में हुआ था। इनके पिता का नाम बदनजी था जो अपने समय में राजस्थान के बहुसम्मानित कवि थे। डिंगल भाषा के प्रख्यात कवि सूरजमल इनके पुत्र थे। चंडीदान बूंदी के रावराजा विष्णुसिंह के बड़े कृपापात्र थे जिन्होंने इनकी फुटकर कविता और 'विरुद-प्रकाश' नामक ग्रंथ पर रीझकर इनको रोसूँदा नामक एक गाँव, लाखपसाव, लक्ष्मणगज हाथी, मकान आदि पुरस्कार में दिये थे।[180]

चंडीदान बड़े मद्यपी थे। परंतु अंत समय में सब व्यसन छोड़कर काशी चले गये थे जहाँ सं० १८६२ में इनकी मृत्यु हुई थी।

ये संस्कृत, ब्रजभाषा तथा डिंगल के मर्मज्ञ विद्वान और आशुकवि थे। इनके बनाये ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) सारसागर (२) बलविग्रह (३) वंशाभरण (४) तीजतरंग और (५) विरुदप्रकाश।

चंडीदान की कविता सानुप्रास और सरस है। उसमें इन्होंने भाव की अपेक्षा उक्ति-चमत्कार लाने की चेष्टा विशेष की है। उदाहरण—

सुखद सताब डग डारत डगर बीच।
तरल ततायी तुरतायी आवजाव में।
राग क़ीर पेट तें उमंग अंग अंजन में
नाचत निकाई तान चाल चितचाव में॥
रामसिंह नृप के तुरंग चतुरंग मोर
ठौर ठौर ठायें कवि कीरति कहाव में।
ऐसी गति नाच में न चपला चलाव में न
भागिनि के भाव में न पातुरी के पाँव में॥

180. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० १०८।

नाम	ग्रंथ
सेणीदान और पीरचंद	नाथस्तुति
गुमानजी	दसमस्कंध भाषा
ताराचंद	नाथानंद-प्रकाशिका
गाडूराम और बागीराम	जलंधरजसभूषण
	मानसिंहजसरूपक
बांकीदास[188]	नाथस्तुति

महाराजा मानसिंह स्वयं अच्छे कवि थे। ये संस्कृत, पिंगल और मारवाड़ी तीनों में रचना करते थे। इनके बनाये पिंगल भाषा के ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) कृष्णविलास (२) चौरासी पदार्थ नामावली (३) नाथचरित्र (४) जलंधरचरित्र (५) जलंधरचंद्रोदय (६) नाथपुराण (७) नाथस्तोत्र (८) सिद्धगंगादि (९) प्रश्नोत्तर (१०) पद-संग्रह (११) शृंगार रस की कविता (१२)परमार्थ विषय की कविता (१३) नाथाष्टक (१४) जलंधर ज्ञानसागर (१५) तेजमंजरी (१६) पंचावली (१७) स्वरूपों के कवित्त (१८) स्वरूपों के दोहे (१९) सेवासार (२०) मानविचार (२१) आराम रोशनी (२२) उद्यान-वर्णन।

महाराजा की कविता का राजस्थान में बहुत प्रचार है। इनकी कविता भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी है। शब्द-चयन की सुघड़ता द्वारा गंभीर से गंभीर दार्शनिक भावों को सरलतापूर्वक चित्रित करने में ये खूब सफल हुए हैं। इन्होंने गेय पद भी प्रचुर परिमाण में लिखे हैं जिनमें कुशल कवि की भाव-प्रवणता एक गतियान प्रवाह की भांति पाठक को अपने साथ बहा ले जाती है।

---

188. ये मुख्यतः डिंगल भाषा में कविता करते थे। इनके ग्रंथों का संग्रह 'बांकीदास-ग्रंथावली' के नाम से ना० प्र० सभा काशी द्वारा तीन भागों में प्रकाशित किया गया है।

की अवस्था में ये जोधपुर की गद्दी पर बैठे। कुछ सरदारों के षड्यंत्रों, नाथों तथा मरहठों के कारण इनके राज्य में बड़ी अव्यवस्था रही और इन्हें बड़े कष्ट झेलने पड़े। मरहठों आदि से तो इन्होंने खूब लोहा लिया और बड़ी चतुराई से उनका दमन किया, पर नाथ-सम्प्रदाय के प्रति अत्यधिक भक्ति होने से नाथों का दमन ये न कर सके। यही नहीं, तत्कालीन पौलिटिकल एजेंट लड्लो ने जब दो-एक उपद्रवी नाथों को पकड़कर अजमेर भेज दिया तब इन्हें भारी दुःख हुआ और उनको छुड़वाने की चेष्टा करने लगे।[185] अन्त में अपने इस प्रयत्न में जब इन्हें सफलता न मिली तब इन्होंने अन्न खाना छोड़ दिया और संन्यास लेकर इधर-उधर भटकने लगे।[186] इनका देहान्त सं० १९०० की भादों सुदी १३ को जोधपुर में हुआ।

महाराजा मानसिंह बड़े कविता-प्रेमी, गुणाढ्य और सरस्वती-सेवक थे।[187] इन्होंने काव्य-कला को बहुत प्रोत्साहन दिया। ये कवि-कोविदों का इतना आदर करते थे कि वे पालकियों में बैठे फिरते थे। इनके आश्रित कुछ बहुत प्रसिद्ध भाषा-कवियों के नाम ये हैं--

नाम	ग्रंथ
चैनाजी चारण	जलंधरस्तुति
शिवनाथ	जलंधरजसवर्णन
मूलचंद यति	मानसागरीमहिमा
मनोहरदास	जस-आभूषणचन्द्रिका
	फूलचरित्र
दौलतराम सेवग	जलंधरगुणरूपक
मीर हैदरअली	जलंधर-स्तुति
मुकालनाथ	नाथ-आरती
पन्नाजी सेवग	नाथ-उत्सवमाला

---

185. वही; पृ० ४३८

186. वही; पृ० ४३८

187. इनकी गुणग्राहिता संबंधी यह दोहा राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है:—

जोध बसाई जोधपुर, व्रज कीनी व्रजपाल।
लखनेऊ कासी दिली, मान करी नयपाल॥

नाम	ग्रंथ
सेणीदान और पीरचंद	नाथस्तुति
गुमानजी	दसमस्कंध भाषा
ताराचंद	नाथानंद-प्रकाशिका
गाडूराम और यागीराम	जलंधरजसभूषण
	मानसिहजसरूपक
बांकीदास[188]	नाथस्तुति

महाराजा मानसिंह स्वयं अच्छे कवि थे। ये संस्कृत, पिंगल और मारवाड़ी तीनों में रचना करते थे। इनके बनाये पिंगल भाषा के ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) कृष्णविलास (२) चौरासी पदार्थ नामावली (३) नाथचरित्र (४) जलंधरचरित्र (५) जलंधरचंद्रोदय (६) नाथपुराण (७) नाथस्तोत्र (८) सिद्धगंगादि (९) प्रश्नोत्तर (१०) पद-संग्रह (११) शृंगार रस की कविता (१२)परमार्थ विषय की कविता (१३) नाथाष्टक (१४) जलंधर ज्ञानसागर (१५) तेजमंजरी (१६) पंचावली (१७) स्वरूपों के कवित्त (१८) स्वरूपों के दोहे (१९) सेवासार (२०) मानविचार (२१) आराम रोशनी (२२) उद्यान-वर्णन।

महाराजा की कविता का राजस्थान में बहुत प्रचार है। इनकी कविता भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी है। शब्द-चयन की सुघड़ता द्वारा गंभीर से गंभीर दार्शनिक भावों को सरलतापूर्वक चित्रित करने में ये खूब सफल हुए हैं। इन्होंने गेय पद भी प्रचुर परिमाण में लिखे हैं जिनमें कुशल कवि की भाव-प्रवणता एक गतिवान प्रवाह की भांति पाठक को अपने साथ बहा ले जाती है।

---

188. ये मुख्यतः डिंगल भाषा में कविता करते थे। इनके ग्रंथों का संग्रह 'बांकीदास-ग्रंथावली' के नाम से ना० प्र० सभा काशी द्वारा तीन भागों में प्रकाशित किया गया है।

तृतीय अध्याय का परिशिष्ट

(७७) जेठमल, नागौर । नि० का० सं० १७००; ग्रं० (१) नारद चरित्र (२) नरसी महता की हुंडी; वि० ये कायस्थ थे ।

(७८) रूपसिंह, किशनगढ़ । नि० का० सं० १७००; र० फुटकर पद; वि० ये किशनगढ़ के महाराजा हरिसिंह के पुत्र थे ।

(७९) हरिदास, जोधपुर । नि० का० सं० १७०१; ग्रं० अमरबत्तीसी; वि० ये जाति के भाट थे ।

(८०) दलपति मिश्र । नि० का० सं० १७०५(?); ग्रं० जसवंत-उद्योत वि० जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) के आश्रित ।

(८१) कर्मच । नि० का० सं० १७०८ के लगभग; र० स्फुट; विशेष वृत्त ज्ञात नहीं ।

(८२) राम कवि, जयपुर । नि० का० सं० १७१० के लगभग । ग्रं० जयसिंहचरित्र; वि० ये मिर्जा राजा जयसिंह के आश्रित थे ।

(८३) श्रीधर । नि० का० सं० १७१०; ग्रं० भवानीछंद; वि० इनका यह ग्रन्थ राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा में है ।

(८४) प्रतापसहाय । नि० का० सं० १७१०; र० स्फुट । वि० ये राव जाति के कवि मेवाड़ के महाराणा राजसिंह (प्रथम) के आश्रित थे । बाद में बूंदी चले गये थे ।

(८५) जेठमल, जयपुर । नि० का० सं० १७१० के आसपास; ग्रं० शालिहोत्र भाषा और फुटकर कवित्त; वि० ये कविता में अपना नाम 'मल' लिखते थ ।

(८६) सूरदत्त । नि० का० सं० १७१२; ग्रं० रसिकहुलास; वि० शेखावाटी-अमरसर के कछवाहा-शेखावत कृष्णचंद्र के आश्रित ।

(८७) जगन्नाथ, जैसलमेर । नि० का० सं० १७१४; ग्रं० रतिभूषण । वि० यह ग्रंथ रावल सबलसिंह के पुत्र अमरसिंह के लिये लिखा गया था ।

(८८) मानसिंह, किशनगढ़ । नि० का० सं० १७१६; र० फुटकर पद; वि० ये किशनगढ़ के राजा थे ।

(८९) कृष्णलाल, जयपुर (?); नि० का० सं० १७१६; ग्रं० बिहारी-सतसई की टीका ।

(९०) नवीन, जोधपुर । नि० का० सं० १७२०; ग्रं० नेहनिधान; वि० महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) के आश्रित ।

(९१) धर्मवर्द्धन । नि० का० सं० १७१६-७३; र० फुटकर; वि० ये जैन कवि मुख्यत: राजस्थानी भाषा में कविता करते थे ।

(९२) लक्ष्मीधर, जयपुर । नि० का० सं० १७२७; ग्रं० भारतसार; वि० जयपुर के महाराजा रामसिंह (प्रथम) के आश्रित; वि० इनका उपनाम 'लाल' था ।

(९३) नंदन कवि, जयपुर । नि० का० सं० १७३२; ग्रं० व्यवहारसार । वि० कहा जाता है कि ये जयपुर के दरबारी कवि थे ।

(९४) सतीदास व्यास, बीकानेर । नि० का० सं० १७३३; ग्रं० रसिक-आराम; वि० देवीदास व्यास के पुत्र और बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह के आश्रित ।

(९५) प्रतापसिंह, प्रतापगढ़ । नि० का० सं० १७३०-६४; र० स्फुट; वि० ये देवलिया प्रतापगढ़ के राजा थे ।

(९६) मान, बीकानेर । ग्रं० संयोगद्वात्रिंशिका (सं० १७३१) कवि-विनोद (सं० १७४५) और कवि-प्रमोद[189] (सं० १७४६) वि० ये खरतर-गच्छीय जैन कवि थे ।

(९७) कुंभकर्ण, जोधपुर । नि० का० सं० १७३२; ग्रं० रतनरासो; वि० ये सांदू शाखा के चारण थे ।

(९८) कमनेह । नि० का० सं० १७३५; र० स्फुट; वि० अलवर अथवा करौली की तरफ के रहने वाले थे ।

(९९) रूपजी, जोधपुर । नि० का० सं० १७३९; ग्रं० रसरूप; वि० ये मेड़ता ग्राम-निवासी पुष्करणा ब्राह्मण रामदास के पुत्र थे ।

(१००) देवीदास, करौली । नि० का० सं० १७४२; ग्रं० (१) प्रेम-रत्नाकर, (२) दामोदर-लीला और (३) राम-नीति; वि० करौली के राजकवि थ ।

(१०१) वल्लभ, किशनगढ़ । नि० का० सं० १७५०; ग्रं० वल्लभ मुक्तावली और वल्लभ-विलास; वि० ये वृंद कवि के पुत्र थे ।

(१०२) शिवराम, नागौर । नि० का० सं० १७५४ । ग्रं० दसकुमार-प्रबंध; वि० बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह के आश्रित ।

---

189. कवि-विनोद और कवि-प्रमोद नाम कुछ भ्रामक हैं । ये कविता के ग्रंथ नहीं हैं जैसा कि इनके नामों से भास होता है । ये वैद्यक के ग्रंथ हैं ।

(१०३) लोकनाथ चौबे, बूंदी। नि० का० सं० १७६०; ग्रं० रसतरंग; वि० ये बूंदी के महाराव राजा बुधसिंह के आश्रित थे।

(१०४) तिलोकराम, जोधपुर। नि० का० सं० १७६७; ग्रं० रसप्रकास।

(१०५) गडू। नि० का० सं० १७७०; र० स्फुट; वि० कूटकाव्य लिखते थे।

(१०६) भोजमिश्र, बूंदी। नि० का० सं० १७७५; ग्रं० मिश्र-शृंगार; वि० महाराव राजा बुधसिंह के आश्रित।

(१०७) मूकजी। नि० का० सं० १७७५; ग्रं० खीची जाति की वंशावली; वि० इनके कुछ फुटकर छंद भी मिलते हैं।

(१०८) नैनसुख, करौली। नि० का० सं० १७८० के लगभग; ग्रं० माणिकपाल बारखड़ी; वि० करौली-नरेश माणिकपाल के आश्रित।

(१०९) बैनीराम, जयपुर। नि० का० सं० १७८०; र० स्फुट।

(११०) रायकवि, किशनगढ़। नि० का० सं० १७८०; र० स्फुट; ये नागरीदास के समकालीन थे।

(१११) भीमचंद, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० ये जैन थे।

(११२) प्रेमचंद, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० ये जाति के सेवक थे।

(११३) प्रयाग, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० ये जाति के सेवक थे।

(११४) अनंदराम, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(११५) विजयराम, किशनगढ़। नि० का० सं० १७८१; र० स्फुट; वि० नागरीदास के आश्रित।

(११६) हीरालाल, सनाढ्य; किशनगढ़। नि० का० सं० १७८१; ग्रं० सरदार-सुयश; वि० नागरीदास के आश्रित।

(११७) देवीचंद, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(११८) माईदास, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(११९) गुलालचंद, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० ये जाति के सेवक थे।

(१२०) रसचंद, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(१२१) कनीराम मुंशी, किशनगढ़। नि० का० सं० १७८१; र० स्फुट। वि० नागरीदास के आश्रित।

(१२२) पन्नालाल, किशनगढ़। नि० का० सं० १७८१; र० स्फुट; वि० नागरीदास के समकालीन।

(१२३) शिवचंद, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० ये जाति के सेवक थे।

(१२४) सावंतसिंह, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(१२५) आतम, जोधपुर। नि० का० सं० १७८२; ग्रं० हरिरस; विशेष वृत्त ज्ञात नहीं।

(१२६) कृष्ण कवि, जयपुर। नि० का० सं० १७८२; ग्रं० विहारी-सतसई की टीका; वि० ये ककोर वंशी माथुर ब्राह्मण थे।

(१२७) नैनसिंह, बीकानेर। नि० का० सं० १७८६; ग्रं० भर्तृहरि-शतक का गद्य-पद्यात्मक अनुवाद। वि० ये जैन यति थे।

(१२८) रसपुंज, जोधपुर। नि० का० सं० १७६०; ग्रं० कवित्त श्री माताजी रा; वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(१२९) सुजानसिंह, करौली। नि० का० सं० १७६०; ग्रं० सुजान-विलास; वि० ये करौली के राजघराने से संबंधित थे।

(१३०) कुंवर कुशल, जोधपुर। नि० का० सं० १७६६; ग्रं० लखपत-यश-सिंधु; वि० ये जैन थे।

(१३१) सरदारसिंह, बनेड़ा। नि० का सं० १८००; ग्रं० सुरतरस; ये बनेड़ा के राजा सुलतानसिंह के पुत्र थे।

(१३२) जदुनाथ भाट, करौली। नि० का० सं० १८००; ग्रं० वृत्तविलास; वि० करौली-नरेश गोपालसिंह के आश्रित।

(१३३) जयकृष्ण, जोधपुर। नि० का० सं० १८००; ग्रं० (१) कवित्त (२) शिवमाहात्म्य और (३) शिव गीता। वि० ये पुष्करणा ब्राह्मण थे।

(१३४) अनुरागीदास, किशनगढ़। नि० का० सं १८०० के लगभग; ग्रं० (१) डगहुंडी (२) दीनविरुदावली (३) जुगल-विरुदावली (४) भक्त विरुदावली और (५) गुरुविरुदावली।

(१३५) पीथल। नि० का० सं० १८०० (?) ग्रं० जुगल-विलास; वि० मानसिंह के पुत्र।

(१३६) वीरां, जोधपुर। नि० का० सं० १८०० से कुछ पहले; र० फुटकर पद; वि० यह स्त्री म० अभयसिंह की समकालीन थी।

(१३७) वीरू कवि, जोधपुर। नि० का० सं० १८०१ के लगभग; र० स्फुट; वि० महाराजा अभयसिंह के समकालीन।

(१३८) गजसिंह, बीकानेर। नि० का० सं० १८०३; र० स्फुट पद; वि० ये बीकानेर के महाराजा जोरावरसिंह के पुत्र थे।

(१३९) बहादुरसिंह, किशनगढ़। नि० का० सं० १८०६; र० स्फुट; वि० ये राठौड़ राजपूत किशनगढ़ के राजा थे।

(१४०) घासीराम, भरतपुर। नि० का० सं० १८१०; ग्रं० (१) काव्यप्रकाश की टीका (२) रसगंगाधर की टीका और (३) भाषा गीतगोविंद।

(१४१) अरिसिंह, मेवाड़। नि० का० सं० १८१७–२१; ग्रं० रसिक-चमन; वि० ये मेवाड़ के महाराणा राजसिंह (द्वितीय) के पुत्र थे।

(१४२) मूलराज, जैसलमेर। नि० का० सं० १८१९–७६; र० स्फुट; वि० ये जैसलमेर के राजा संस्कृत में भी रचना करते थे।

(१४३) मुरलीधर भट्ट, अलवर। ज० सं० १८२०; ग्रं० (१) शृंगार-तरंगिणी और (२) प्रेम-तरंगिणी; वि० ये तैलंग ब्राह्मण कविता में अपना नाम 'प्रेम' रखते थे।

(१४४) रामलाल, जयपुर। नि० का० सं० १८२०; ग्रं० रामभक्ति-सुधा-निधान; वि० ये फुटकर कविता भी लिखते थे।

(१४५) मथुरामल्ल, जयपुर। नि० का० सं० १८२०। ग्रं० समर-भास्कर; वि० ये माथुर चतुर्वेदी थे।

(१४६) हरिराय, नाथद्वारा। नि० का० सं० १८२० के लगभग; ग्रं० नित्यलीला; वि० ये चिम्मनजी के बेटे थे।[190]

(१४७) दौलतराय, किशनगढ़। नि० का० सं० १८२० के लगभग; ग्रं० रसप्रबोध; वि० ये वृंद कवि के वंशज थे।

(१४८) गणेशदास, मेवाड़। नि० का० सं० १८२०; ग्रं० सुदामा चरित्र; वि० ये मेवाड़ राज्य के बागोर ठिकाने के एक मंदिर में पुजारी थे।

(१४९) शिवप्रसाद, बीकानेर। नि० का० सं० १८२०; ग्रं० अद्भुत रामायण; वि० ये ब्राह्मण कवि राजाराम के पुत्र थे।

(१५०) शिवराम, जयपुर। नि० का० सं० १८२०; र० स्फुट; वि० महाराजा माधोसिंह (प्रथम) के आश्रित।

---

190. हरिराय एक और कवि नाथद्वारा में हुए हैं। उनका जन्म १६४७ है।

(१५१) सागरजी, जयपुर। नि० का० सं० १८२१; र० स्फुट; वि० ये कविया शाखा के चारण थे।

(१५२) व्रजपाल, जयपुर। नि० का० सं० १८२२ के लगभग; ग्रं० (१) महाभारत का पद्यानुवाद और (२) नीति-संग्रह; वि० ये तैलंग भट्ट द्वारकानाथ के पुत्र थे।

(१५३) कवीन्द्र कवि, जयपुर। नि० का० सं० १८२४; र० स्फुट; वि० जैसलमेर के रावल मूलराज के आश्रित।

(१५४) कल्याण (सिंह) जैसलमेर। नि० का० सं० १८२५; र० स्फुट; वि० जैसलमेर के रावल मूलराज के आश्रित।

(१५५) श्रीनाथ शर्म्मा, जैसलमेर। नि० का० सं० १८२६; ग्रं० (१) मूलराज-विलास (२) अन्योक्ति मंजूषा और (३) लोलिंबराज भाषा वि० रावल मूलराज के आश्रित थे और संस्कृत-हिंदी दोनों में रचना करते थे।

(१५६) हरलाल, जयपुर। नि० का० सं० १८३०; र० स्फुट; वि० महाराजा पृथ्वीसिंह के आश्रित।

(१५७) भीमसिंह, मेवाड़। नि० का० सं० १८३४-८५; र० स्फुट; वि० ये मेवाड़ के महाराणा थे।

(१५८) रसरासि, जयपुर। नि० का० सं० १८३७; ग्रं० कवित्तरत्न मालिका; वि० ये म० प्रतापसिंह के आश्रित थे; फुटकर कविता भी करते थे।

(१५९) श्रीकृष्ण भट्ट, अलवर। ज० सं० १८४०; ग्रं० आलीजा-प्रकाश, वि० ये तैलंग ब्राह्मण मुरलीधर भट्ट के पुत्र थे और जन्मान्ध थे।

(१६०) दयालाल, किशनगढ़। नि० का० सं० १८४० के लगभग; ग्रं० (१) भक्तिचंद्रिका और (२) कीर्तिप्रकास; वि० ये गौड़ ब्राह्मण थे।

(१६१) दामोदरजी, किशनगढ़। नि० का० सं० १८४०; र० स्फुट; वि० वृन्द कवि के वंशज थे।

(१६२) अदारंग, जयपुर। नि० का० सं० १८४०; र० फुटकर पद; वि० महाराजा प्रतापसिंह के आश्रित।

(१६३) मनभावनजी, जयपुर। नि० का० सं० १८४०; र० फुटकर पद; वि० ये दूदू गाँव के रहनेवाले पारीक ब्राह्मण थे।

(१६४) शेरसिंह, जोधपुर। नि० का० सं० १८४६; ग्रं० रामकृष्णजस; वि० महाराजा विजयसिंह के पुत्र थे।

(१६५) पूर्णमल, अलवर। ज० का० सं० १८४७; र० स्फुट; वि० ये जाति के राव थे।

(१६६) पंगु कवि, करौली। नि० का० सं० १८४७; ग्रं० घूस-बत्तीसी; वि० ये जाति के चारण थे।

(१६७) अलीभगवान, जयपुर। नि० का० सं० १८५०; र० फुटकर पद; वि० ये म० प्रतापसिंह के संगीताध्यापक थे।

(१६८) तुलसी। नि० का० सं० १८५० के लगभग; ग्रं० (१) नयना-भक्ति (२) अष्टांगयोग (३) वेदान्त-ग्रंथ (४) चौक्षरी ग्रंथ (५) करनी सार-जोगग्रंथ (६) साधु-लक्षण और (७) तत्त्व-गुन-भेद; वि० ये कोई साधु थे।

(१६९) फतहराम चौबे, बूंदी। नि० का० सं० १८५०; र० स्फुट; वि० ये लोकनाथ चौबे की वंश-परंपरा में स्वरूपचंद के बेटे थे।

(१७०) बखतेश, जयपुर। नि० का० सं० १८५०; र० फुटकर पद; वि० ये कछवाहा राजपूत कविता में अपना नाम 'बख्तावर' भी लिखते थे।

(१७१) शिवदास, जयपुर। नि० का० सं० १८५०; ग्रं० (१) भाषा भारत और (२) अश्वमेध; वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

(१७२) अमृतराम, जयपुर। नि० का० सं० १८५०; र० फुटकर पद; वि० ये पालीवाल ब्राह्मण सारंगधर के पुत्र थे।

(१७३) बंसीअली, जयपुर। नि० का० सं० १८५०; र० फुटकर पद।

(१७४) मनीराम, जयपुर। नि० का० सं० १८५०; ग्रं० बिहारी-सतसई की प्रतापचंद्रिका टीका। वि० महाराजा प्रतापसिंह के आश्रित।

(१७५) खुमाणसिंह, करौली। नि० का० सं० १८५० के लगभग; र० फुटकर; वि० ये राव जाति के कवि करौली-नरेश मदनपाल के आश्रित थे।

(१७६) गुमानीराम, जयपुर। नि० का० सं० १८५०; ग्रं० दीवाने हाफिज़ का छंदोऽनुवाद; वि० ये म० प्रतापसिंह के मीरमुंशी थे।

(१७७) मुरलीधर, जयपुर। नि० का० सं० १८५०; र० स्फुट; वि० ये गौड़ ब्राह्मण थे।

(१७८) राधाकृष्ण, जयपुर। नि० का० सं० १८५३; ग्रं० रागरत्नाकर; वि० ये गौड़ ब्राह्मण थे।

(१७९) नाथूराम, जयपुर । नि० का० सं० १८५४; र० स्फुट; वि० ये राव जाति के कवि रामजीदास के पुत्र थे ।

(१८०) कल्याणसिंह, किशनगढ़ । नि० का० सं० १८५४-६५; र० फुटकर पद; वि० ये राठोड़ राजपूत किशनगढ़ के राजा थे ।

(१८१) रामकर्ण, जोधपुर । नि० का० सं० १८५५; ग्रं० अलंकार-समुच्चय; वि० महाराजा भीमसिंह के आश्रित ।

(१८२) अनंतराम, जयपुर । नि० का० सं० १८५५; ग्रं० वैद्यक ग्रंथ भाषा; वि० महाराजा प्रतापसिंह के आश्रित ।

(१८३) दीनदयाल, जयपुर । नि० का० सं० १८६०; ग्रं० बुधजन-सतसैया ।

(१८४) शंभुराम, जयपुर । नि० का० सं० १८६० के लगभग; र० स्फुट; ये जाति के राव थे ।

(१८५) राधावल्लभ, किशनगढ़ । नि० का० सं० १८६० के लगभग; ग्रं० (१) भीष्म-पर्व, (२) गीता भाषा और (३) शालिहोत्र; वि० ये जाति के चारण थे ।

(१८६) गंगादीन, किशनगढ़ । नि० का० सं० १८६०; र० स्फुट; वि० ये जाति के चारण थे ।

(१८७) हरिजी राणी (चावड़ीजी), नि० का० सं० १८६०; र० स्फुट; वि० जोधपुर के म० मानसिंह की राणी थीं ।

(१८८) आयस देवनाथ, जोधपुर । नि० का० सं० १८६०; र० फुटकर दोहा; वि० ये म० मानसिंह के समकालीन थे ।

(१८९) मनोहरदास, सांगानेर । नि० का० सं० १८६६; धर्म-परीक्षा; वि० ये जाति के सोनी थे ।

(१९०) सुन्दरसिंह, भरतपुर । नि० का० सं० १८६६; ग्रं० (१) पंचाध्यायी (२) गोरीबाई की महिमा (३) हुस्न-चमन (४) सुन्दर-सत-शृंगार । वि० ये भरतपुर के राज घराने के थे ।

(१९१) लक्ष्मणदास, जयपुर । नि० का० सं० १८७०; र० स्फुट; वि० महाराजा जगतसिंह के समकालीन थे ।

(१९२) गणेश, करौली । नि० का० सं० १८७५; ग्रं० (१) रसचंद्रोदय (२) कृष्ण-भक्ति-चंद्रिका नाटक (३) सभा-सूर्य (४) फागुन-माहात्म्य और (५) नग्न-शतक; वि० ये जाति के चौबे थे ।

(१६५) पूर्णमल, अलवर । ज० का० सं० १८४७; र० स्फुट; वि० ये जाति के राव थे ।

(१६६) पंगु कवि, करौली । नि० का० सं० १८४७; ग्रं० घूस-बत्तीसी; वि० ये जाति के चारण थे ।

(१६७) अलीभगवान, जयपुर । नि० का० सं० १८५०; र० फुटकर पद; वि० ये म० प्रतापसिंह के संगीताध्यापक थे ।

(१६८) तुलसी । नि० का० सं० १८५० के लगभग; ग्रं० (१) नयना-भास (२) अष्टांगयोग (३) वेदान्त-ग्रंथ (४) चौधरी ग्रंथ (५) करनी सार-जोगग्रंथ (६) साधु-लक्षण और (७) तत्त्व-गुन-भेद; वि० ये कोई साधु थे ।

(१६९) फतहराम चौबे, बूंदी । नि० का० सं० १८५०; र० स्फुट; वि० ये मोहनलाल चौबे की वंश-परंपरा में [illegible] के बेटे थे ।

(१७०) [illegible], जयपुर । नि० का० सं० १८५०; र० फुटकर पद; वि० ये [illegible] अपना नाम '[illegible]' भी लिखते थे ।

(१७१) [illegible], जयपुर । नि० का० सं० १८५०; ग्रं० (१) भाषा [illegible] और (२) [illegible]; वि० ये [illegible] थे ।

(१७२) अमृतराम, जयपुर । नि० का० सं० १८५०; र० फुटकर पद; वि० ये पालीवाल ब्राह्मण सारंगधर के पुत्र थे ।

(१७३) बंसीअली, जयपुर । नि० का० सं० १८५०; र० फुटकर पद ।

(१७४) मनीराम, जयपुर । नि० का० सं० १८५०; ग्रं० विहारी-सतसई की प्रतापचंद्रिका टीका । वि० महाराजा प्रतापसिंह के आश्रित ।

(१७५) खुमाणसिंह, करौली । नि० का० सं० १८५० के लगभग; र० फुटकर; वि० ये राव जाति के कवि करौली-नरेश मदनपाल के आश्रित थे ।

(१७६) गुमानीराम, जयपुर । नि० का० सं० १८५०; ग्रं० दीवाने हाफिज़ का छंदोऽनुवाद; वि० ये म० प्रतापसिंह के मीरमुंशी थे ।

(१७७) मुरलीधर, जयपुर । नि० का० सं० १८५०; र० स्फुट; वि० ये गौड़ ब्राह्मण थे ।

(१७८) राधाकृष्ण, जयपुर । नि० का० सं० १८५३; ग्रं० रागरत्नाकर; वि० ये गौड़ ब्राह्मण थे ।

(१७९) नाथूराम, जयपुर। नि० का० सं० १८५४; र० स्फुट; वि० ये राव जाति के कवि रामजीदास के पुत्र थे।

(१८०) कल्याणसिंह, किशनगढ़। नि० का० सं० १८५४-६५; र० फुटकर पद; वि० ये राठौड़ राजपूत किशनगढ़ के राजा थे।

(१८१) रामकर्ण, जोधपुर। नि० का० सं० १८५५; ग्रं० अलंकार-समुच्चय; वि० महाराजा भीमसिंह के आश्रित।

(१८२) अनंतराम, जयपुर। नि० का० सं० १८५५; ग्रं० वैद्यक ग्रंथ भाषा; वि० महाराजा प्रतापसिंह के आश्रित।

(१८३) दीनदयाल, जयपुर। नि० का० सं० १८६०; ग्रं० बुधजन-सतसैया।

(१८४) शंभुराम, जयपुर। नि० का० सं० १८६० के लगभग; र० स्फुट; ये जाति के राव थे।

(१८५) राधावल्लभ, किशनगढ़। नि० का० सं० १८६० के लगभग; ग्रं० (१) भीष्म-पर्व, (२) गीता भाषा और (३) शालिहोत्र; वि० ये जाति के चारण थे।

(१८६) गंगादीन, किशनगढ़। नि० का० सं० १८६०; र० स्फुट; वि० ये जाति के चारण थे।

(१८७) हरिजी राणी (चावड़ीजी), नि० का० सं० १८६०; र० स्फुट; वि० जोधपुर के म० मानसिंह की राणी थीं।

(१८८) आयस देवनाथ, जोधपुर। नि० का० सं० १८६०; र० फुटकर दोहा; वि० ये म० मानसिंह के समकालीन थे।

(१८९) मनोहरदास, सांगानेर। नि० का० सं० १८६६; धर्म-परीक्षा; वि० ये जाति के सोनी थे।

(१९०) सुन्दरसिंह, भरतपुर। नि० का० सं० १८६६; ग्रं० (१) पंचाध्यायी (२) गोरीबाई की महिमा (३) हुस्न-चमन (४) सुन्दर-सत-शृंगार। वि० ये भरतपुर के राज घराने के थे।

(१९१) लक्ष्मणदास, जयपुर। नि० का० सं० १८७०; र० स्फुट; वि० महाराजा जगतसिंह के समकालीन थे।

(१९२) गणेश, करौली। नि० का० सं० १८७५; ग्रं० (१) रसचंद्रोदय (२) कृष्ण-भक्ति-चंद्रिका नाटक (३) सभा-सूर्य (४) फागुन-माहात्म्य और (५) नख-शतक; वि० ये जाति के चौबे थे।

(१९३) अनंदराम, जयपुर। नि० का० सं० १८७६; ग्रं० रामसागर।

(१९४) किशनजी, मेवाड़। नि० का० सं० १८८०; र० फुटकर; वि० ये राजस्थान के प्रसिद्ध चारण कवि दुरसाजी की वंश-परंपरा में दूलहाजी के वेटे थे।[190]

(१९५) श्यामराम, जयपुर। नि० का० सं० १८८०; ग्रं० दुर्गा-विनोद; वि० ये जाति के कायस्थ थे।

(१९६) अमरसिंह, उदयपुर। नि०का० सं० १८८०; र० स्फुट; वि० ये मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे।

(१९७) गोपालजी, जयपुर। नि० का० सं० १८८०; र० स्फुट; वि० ये रामलाल के पुत्र थे।

(१९८) हरलाल, वूंदी। नि० का० सं० १८८०; र० स्फुट; वि० ये राव जाति के कवि वूंदी दरबार के पोलपात थे।

(१९९) जसराम, जोधपुर। नि० का० सं० १८८०; ग्रं० राजनीति; वि० ये जाति के चारण थे।

(२००) सुखलाल, जयपुर। नि० का० सं० १८८०; र० स्फुट; वि० ये राव शंभुराम के पुत्र थे।

(२०१) चंद्रसखी, जयपुर (?)। नि० का० सं० १८८०; फुटकर पद;

(२०२) बदनजी, वूंदी। नि० का० सं० १८८२; ग्रं० होलकर-पचीसी और रसगुलजार; वि० ये मिश्रण शाखा के चारण थे।

(२०३) लक्ष्मीनाथ, जोधपुर (?) नि० का० सं० १८८३; ग्रं० भजन-विलास; वि० महाराजा मानसिंह के आश्रित पुष्करणा ब्राह्मण।

(२०४) हरि, कोटा राज्य। नि० का० सं० १८८३; ग्रं० रस मंजरी।

(२०५) लाडूनाथ, जोधपुर। नि० का० सं० १८८४; ग्रं० सिद्धान्त-सार की टीका; वि० ये म० मानसिंह के समकालीन नाथसंप्रदाय के जोगी थे।

(२०६) चैनराम, जयपुर। नि० का० सं० १८८५; ग्रं० भारतसार भाषा।

---

190. इनके 'भीमविलास' और 'रघुवरजसप्रकास' नामक डिंगल भाषा के दो ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं।

(२०७) रसनिधि, जयपुर। नि० का० सं० १८८५; ग्रं० जयसाह-विवाह उत्सव।

(२०८) उदयचंद, जोधपुर। नि० का० सं० १८९०; ग्रं० (१) रसनिवास (२) रसशृंगार (३) दूषण-दर्पण (४) ब्रह्मप्रबोध (५) ब्रह्मविलास और (६) ब्रह्मविहुंडन; वि० जाति के ओसवाल महाजन।

(२०९) मिहीलाल, जयपुर। नि० का० सं० १८९०; र० स्फुट; वि० ये तैलंग भट्ट पद्माकर के ज्येष्ठ पुत्र थे।

(२१०) अम्बाधर, जयपुर। नि० का० सं० १८९०; स्फुट; वि० पद्माकर के द्वितीय पुत्र।

(२११) तुलछराय, जोधपुर। नि० का० सं० १८९०; र० फुटकर पद; वि० महाराजा मानसिंह की उपपत्नी।

(२१२) चतुरदान, जोधपुर। नि० का० सं० १८९० के लगभग; ग्रं० चतुर-रसाल; वि० ये जाति के चारण थे।

(२१३) निश्चलदास, बूंदी। नि० का० सं० १८९०; ग्रं० (१) विचार-सागर और (२) वृत्त-प्रभाकर; वि० बूंदी के म० रामसिंह के आश्रित।

(२१४) कान्हड़दास। नि० का० सं० १८९०; र० फुटकर पद; वि० ये जयपुर राज्यान्तर्गत जसरापुर के रहनेवाले थे।

(२१५) भगतीराम, किशनगढ़। नि० का० सं० १८९० के लगभग; र० स्फुट; वि० वृन्द कवि के वंशज थे। इनका उपनाम खुशराम था।

(२१६) ब्रजेन्द्र, भरतपुर। नि० का० सं० १८९१; ग्रं० रसानंद।

(२१७) भारतदान, जोधपुर। नि० का० सं० १८९८; र० स्फुट; वि० ये आशिया शाखा के चारण थे।

(२१८) दुलीचंद, जयपुर। नि० का० १८९८; ग्रं० महाभारत भाषा।

(२१९) रसानंद, भरतपुर। नि० का० सं० १८९९; ग्रं० संग्राम-रत्नाकर; वि० भरतपुर-नरेश बलवंतसिंह के आश्रित।

(२२०) चतुर्भुज मिश्र, भरतपुर। नि० का० सं० १८९९; ग्रं० अलंकार-आभा; वि० भरतपुर के महाराजा बलवंतसिंह के आश्रित।

(१९३) अनंदराम, जयपुर। नि० का० सं० १८७६; ग्रं० रामसागर।

(१९४) किशनजी, मेवाड़। नि० का० सं० १८८०; र० फुटकर; वि० ये राजस्थान के प्रसिद्ध चारण कवि दुरसाजी की वंश-परंपरा में दूलहाजी के बेटे थे।[190]

(१९५) श्यामराम, जयपुर। नि० का० सं० १८८०; ग्रं० दुर्गा-विनोद; वि० ये जाति के कायस्थ थे।

(१९६) अमरसिंह, उदयपुर। नि०का० सं० १८८०; र० स्फुट; वि० ये मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे।

(१९७) गोपालजी, जयपुर। नि० का० सं० १८८०; र० स्फुट; वि० ये रामलाल के पुत्र थे।

(१९८) हरलाल, बूंदी। नि० का० सं० १८८०; र० स्फुट; वि० ये राव जाति के कवि बूंदी दरबार के पोलपात थे।

(१९९) जसराम, जोधपुर। नि० का० सं० १८८०; ग्रं० राजनीति; वि० ये जाति के चारण थे।

(२००) सुखलाल, जयपुर। नि० का० सं० १८८०; र० स्फुट; वि० ये राव शंभुराम के पुत्र थे।

(२०१) चंद्रसखी, जयपुर (?)। नि० का० सं० १८८०; फुटकर पद;

(२०२) वदनजी, बूँदी। नि० का० सं० १८८२; ग्रं० होलकर-पचीसी और रसगुलजार; वि० ये मिश्रण शाखा के चारण थे।

(२०३) लक्ष्मीनाथ, जोधपुर (?) नि० का० सं० १८८३; ग्रं० भजन-विलास; वि० महाराजा मानसिंह के आश्रित पुष्करणा ब्राह्मण।

(२०४) हरि, कोटा राज्य। नि० का० सं० १८८३; ग्रं० रस मंजरी।

(२०५) लाडूनाथ, जोधपुर। नि० का० सं० १८८४; ग्रं० सिद्धान्त-सार की टीका; वि० ये म० मानसिंह के समकालीन नाथसंप्रदाय के जोगी थे।

(२०६) चैनराम, जयपुर। नि० का० सं० १८८५; ग्रं० भारतसार भाषा।

190. इनके 'भीमविलास' और 'रघुवरजसप्रकास' नामक डिंगल भाषा के दो ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं।

दृष्टि से देखने तथा निर्गुण-उपासना पर जोर दिया है।[1] लेकिन कबीर पंथ की अपेक्षा हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का प्रभाव इस पर कुछ विशेष दिखाई देता है। इस दृष्टि से कबीर पंथ की अपेक्षा दादूपंथ हिन्दू धर्म के अधिक निकट है।

दादूपंथी समाज इस समय मुख्यतः चार भागों में विभाजित है—खालसा, विरक्त, उत्तराधा और नागा।

(१) खालसा—दादूजी की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र गरीबदास उनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे। गरीबदास के बाद उनके छोटे भाई मसकीनदास आचार्य गद्दी पर बैठे। इस प्रकार यह आचार्य-परंपरा चलती रही और अभी तक जारी है। इस आचार्य-परंपरा के शिष्य-प्रशिष्य 'खालसा' कहलाते हैं। इनका मुख्य स्थान नरैना है। आचार्य गद्दी के पास के होने से अन्य पंथवाले इनको कुछ विशेष आदर की दृष्टि से देखते हैं। इनका वेष पहले चौकोनी टोपी, चोला और कटि-वस्त्र था। किंतु अब उसमें थोड़ा-सा परिवर्तन हो गया है। टोपी की जगह बहुत से साफा बाँधने लगे हैं। कटि-वस्त्र का स्थान धोती ने और चोले का कोट अथवा कमीज ने ले लिया है।

(२) विरक्त—ये रमते-फिरते साधु दादूपंथी गृहस्थों को दादूजी की 'बानी' का उपदेश देते हैं और भिक्षान्न पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। ये किसी थाँभे अथवा स्थान का आश्रय नहीं लेते। केवल शरीर-रक्षा के लिये कषाय वस्त्र तथा जल का पात्र, और दो-चार पुस्तकें अपने पास रखते हैं। इनमें कुछ अकेले और कुछ मंडलियाँ बाँधकर घूमते हैं। ये चातुर्मास में भ्रमण नहीं करते। पर जिस स्थान पर ठहरते हैं वहाँ नित्य नियम से दिन में एक बार दादूजी की 'बानी' का पाठ अवश्य करते हैं।

---

1. भाई रे ऐसा पंथ हमारा।
   द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अबरन एक अधारा।
   बाद बिबाद काहु सौं नाहीं मैं हूँ जग थैं न्यारा॥
   समदृष्टि सूं भाई सहज मैं आपहि आप बिचारा।
   मैं, तैं, मेरी यह मति नाहीं निर्वैरी निरविकारा॥
   काम कल्पना कदे न कीजै पूरन ब्रह्म पियारा।
   एहि पथ पहुँचि पार गहि दादू सो तत सहज हमारा॥

चतुर्थ अध्याय

संत-साहित्य

राजस्थान के पिंगल साहित्य का एक बहुत बड़ा अंश निर्गुणोपासक संत कवियों का रचा हुआ है और 'संत-साहित्य' कहलाता है। यह साहित्य अधिकतर शान्त रस में लिखा गया है और इसका मुख्य स्वर है, विश्वकल्याण। इसी को इन संतों ने अपनी वाणियों में प्रकारान्तर से दोहराया है। वैसे यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इन मध्ययुगीन संतों का यह विश्वकल्याण का संदेश कोई नितान्त नया संदेश नहीं है। इसकी अभिव्यक्ति हमारे प्राचीन संस्कृत-साहित्य में किसी न किसी रूप में हो चुकी है। इन संतों ने केवल यही किया है कि उसे लोकभाषा में और लोकोपयोगी ढंग से व्यक्त किया है और यह इनकी भारतीय वाङ्मय को अपनी एक नवीन देन है।

संत-साहित्य में जितने भी संत हुए है वे पहले भक्त, फिर उपदेशक और फिर कवि थे और जहां तक बन सकता अपने विचारों को सरल से रूप में जनसाधारण के समक्ष रखने की चेष्टा करते थे। काव्य-कला संबंधी नियमों के निर्वाह तथा भाषा की प्रांजलता आदि की अपेक्षा इनका ध्यान लोक-कल्याण की ओर विशेष रहता था। अतएव उनकी रचनाओं में भाव-पक्ष का प्राधान्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन संतों में कुछ ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने भाव-प्रदर्शन के साथ-साथ काव्य-चमत्कार का भी ध्यान रक्खा है। परन्तु ऐसे संतों की संख्या बहुत अधिक नहीं है।

राजस्थान में संत-साहित्य का निर्माण दादू पंथ, चरणदासी पंथ, रामसनेही पंथ, निरंजनी पंथ और लालदासी पंथ के अनुयायी संत-महात्माओं ने विशेष किया है। कुछ ऐसे संत भी यहां हुए हैं जो किसी संप्रदाय अथवा पंथ विशेष से संबंधित न थे। इन सब का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

दादूपंथ

दादूपंथ के जन्मदाता संत दादूजी थे। इस पंथ के अनुयायी जयपुर राज्य में अधिक पाये जाते हैं। इस पंथ का कबीर पंथ से बहुत साम्य है। कबीर की भांति दादू ने भी 'मैं' और 'तू' के भेदभाव को छोड़कर सब को समान

दृष्टि से देखने तथा निर्गुण-उपासना पर जोर दिया है।[1] लेकिन कबीर पंथ की अपेक्षा हिंदू धर्म के सिद्धान्तों का प्रभाव इस पर कुछ विशेष दिखाई देता है। इस दृष्टि से कबीर पंथ की अपेक्षा दादूपंथ हिंदू धर्म के अधिक निकट है।

दादूपंथी समाज इस समय मुख्यतः चार भागों में विभाजित है—खालसा, विरक्त, उतराधा और नागा।

(१) खालसा—दादूजी की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र गरीबदास उनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे। गरीबदास के बाद उनके छोटे भाई मसकीनदास आचार्य गद्दी पर बैठे। इस प्रकार यह आचार्य-परंपरा चलती रही और अभी तक जारी है। इस आचार्य-परंपरा के शिष्य-प्रशिष्य 'खालसा' कहलाते हैं। इनका मुख्य स्थान नरेना है। आचार्य गद्दी के थांभे के होने से अन्य थांभेवाले इनको कुछ विशेष आदर की दृष्टि से देखते हैं। इनका भेष पहले कपाली टोपी, चोला और कटि-वस्त्र था। किंतु अब उसमें थोड़ा-सा परिवर्तन हो गया है। टोपी की जगह बहुत से साफा बांधने लगे हैं। कटि-वस्त्र का स्थान धोती ने और चोले का कोट अथवा कमीज ने ले लिया है।

(२) विरक्त—ये रमते-फिरते साधु दादूपंथी गृहस्थों को दादूजी की 'वाणी' का उपदेश देते हैं और भिक्षान्न पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। ये किसी थांभे अथवा स्थान का आश्रय नहीं लेते। केवल शरीर-रक्षा के लिये कषाय वस्त्र तथा जल का पात्र, और दो-चार पुस्तकें अपने पास रखते हैं। इनमें कुछ अकेले और कुछ मंडलियां बांधकर घूमते हैं। ये चातुर्मास में भ्रमण नहीं करते। पर जिस स्थान पर ठहरते हैं वहां नित्य नियम से दिन में एक बार दादूजी की 'वाणी' का पाठ अवश्य करते हैं।

(३) उतराधा—दादूजी के शिष्यों में से जो राजस्थान को छोड़कर उत्तर की तरफ पंजाब में चले गये और वहाँ उनके उपदेशों का प्रचार करने लगे वे उतराधा कहलाये। इस समय इस वर्ग के लोग हरियाना, हिसार, रोहतक, दिल्ली, भटिंडा, नाभा, पटियाला आदि स्थानों में विशेष पाये जाते हैं। इनका मुख्य केन्द्र हिसार जिले का रतिया गाँव है।

(४) नागा—दादूपंथियों का यह वर्ग इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी सात जमातें हैं। इस वर्ग के साधु अस्त्र-शस्त्र-संचालन, युद्ध-कौशल और मल्ल-विद्या में बहुत निपुण पाये गये हैं और इन्होंने समय-समय पर तलवार बजाकर जयपुर राज्य की बड़ी सेवाएँ की हैं। भारतीय स्वतंत्रता के पूर्व जयपुर के सैन्य-विभाग में इनकी भी एक टुकड़ी थी जो अब तोड़ दी गई है। परंतु राजाश्रय न होने पर भी यह वर्ग पूर्ववत संगठित रूप में विद्यमान है। इस वर्ग के कुछ लोग खेती और वाणिज्य-व्यवसाय भी करते हैं।

दादूपंथी महात्माओं की राजस्थान में बड़ी प्रतिष्ठा है। ये प्रायः बड़े विद्याव्यसनी, चरित्रवान और संयमी होते हैं। ये विवाह नहीं करते। दादूद्वारों में रहते हैं और गृहस्थों के लड़कों को चेले बनाकर अपना पंथ चलाते हैं। ये न तिलक लगाते हैं, न चोटी रखते हैं और न गले में कंठी पहनते हैं। ये प्रायः हाथ में सुमिरनी रखते हैं और जब मिलते हैं तब 'सत्यराम' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं।

जयपुर से ४१ मील पश्चिम में नरेना नाम का एक छोटा-सा नगर है। इसी के पास भैराणे की पहाड़ी है, जिसकी खोल (गर्त्त) में दादूजी के शव को रखा गया था। दादूपंथी लोग इस स्थान को बहुत पवित्र मानते हैं और यही इनका मुख्य तीर्थ है।[2] नरेना में दादूजी के वस्त्र, उनकी पोथियाँ आदि सुरक्षित हैं जिनकी पूजा होती है। प्रतिवर्ष फाल्गुन शुक्ला

---

2. हमारे तीरथ रूप नरानो।
दादू दास बसै तिहि ठाहर वैकुंठ तें अधिकानो ॥
गंगाजल छाया निकट सरोवर विच में चौक रमानो ॥
हरि जन हंस रहें तिहि ठाहर सुख-सागर मनमानो ॥
भैराणो है मणिकर्णिका कहै कासी प्रस्थानो ॥
गरीबदास जहाँ आप विराजै अनभै अंग गनानो ॥

(३) उतराधा—दादूजी के शिष्यों में से जो राजस्थान को छोड़कर उत्तर की तरफ पंजाब में चले गये और वहाँ उनके उपदेशों का प्रचार करने लगे वे उतराधा कहलाये। इस समय इस वर्ग के लोग हरियाना, हिसार, रोहतक, दिल्ली, भटिंडा, नाभा, पटियाला आदि स्थानों में विशेष पाये जाते हैं। इनका मुख्य केन्द्र हिसार जिले का रतिया गाँव है।

(४) नागा—दादूपंथियों का यह वर्ग इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी सात जमातें हैं। इस वर्ग के साधु अस्त्र-शस्त्र-संचालन, युद्ध-कौशल और मल्ल-विद्या में बहुत निपुण पाये गये हैं और इन्होंने समय-समय पर तलवार बजाकर जयपुर राज्य की बड़ी सेवाएँ की हैं। भारतीय स्वतंत्रता के पूर्व जयपुर के सैन्य-विभाग में इनकी भी एक टुकड़ी थी जो अब तोड़ दी गई है। परंतु राजाश्रय न होने पर भी यह वर्ग पूर्ववत संगठित रूप में विद्यमान है। इस वर्ग के कुछ लोग खेती और वाणिज्य-व्यवसाय भी करते हैं।

दादूपंथी महात्माओं की राजस्थान में बड़ी प्रतिष्ठा है। ये प्रायः बड़े विद्याव्यसनी, चरित्रवान और संयमी होते हैं। ये विवाह नहीं करते। दादूद्वारों में रहते हैं और गृहस्थों के लड़कों को चेले बनाकर अपना पंथ चलाते हैं। ये न तिलक लगाते हैं, न चोटी रखते हैं और न गले में कंठी पहनते हैं। ये प्रायः हाथ में सुमिरनी रखते हैं और जब मिलते हैं तब 'सत्यराम' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं।

जयपुर से ४१ मील पश्चिम में नरेना नाम का एक छोटा-सा नगर है। इसी के पास भैराणे की पहाड़ी है, जिसकी खोल (गर्त्त) में दादूजी के शव को रखा गया था। दादूपंथी लोग इस स्थान को बहुत पवित्र मानते हैं और यही इनका मुख्य तीर्थ है।[2] नरेना में दादूजी के वस्त्र, उनकी पोथियाँ आदि सुरक्षित हैं जिनकी पूजा होती है। प्रतिवर्ष फाल्गुन शुक्ला

---

2. हमारे तीरथ रूप नरानो।
 दादू दास बसै तिहि ठाहर बैकुंठ तें अधिकानो ॥
 संतन छाया निकट सरोवर बिच में चौक रमानो ॥
 हरि जन हंस रहै तिहि ठाहर सुख-सागर मनमानो ॥
 भैराणो है मणिकाणिका क्है कासी प्रस्थानो ॥
 गरीबदास जहाँ आप बिराजै अनभ अंग गनानो ॥

दो बातें कहते हैं। एक तो यह कि सेन महोदय ने बाउलों की जिस वंदना से उक्त वाक्य लिया है वह वंदना मौखिक परंपरा से प्राप्त हुई है और इसलिए संदेहास्पद है। दूसरे इस वंदना में दाऊद नामक जिन व्यक्ति का उल्लेख किया गया है वे संत दादू दयाल से भिन्न कोई दूसरे व्यक्ति हो सकते हैं। ये दोनों तर्क संगत हैं। लेकिन दादूपंथी साहित्य में ही एक ऐसा प्रमाण मौजूद है जिससे सेन महोदय के मत का पूरा-पूरा समर्थन होता है। दादूपंथ में बालकराम नाम के एक संत हुए हैं जो छोटे सुन्दरदास के शिष्य थे।[5] इन का रचना-काल सं० १७१० के आसपास है। इन्होंने अपनी रचना में एक स्थान पर दादूजी का 'असुर कुल' में आविर्भूत होना लिखा है—

भक्ति विपै नहिं भेद, वेद यूँ बोले बानी।
अंत्यज ब्राह्मण आदि, जाति जगदीस न मानी॥
कलि कबीर कुल असुर, असुर कुल प्रगटे दादू॥
भगत विभीपण भये, असुर कुल बलि प्रहलादू॥
पुनि गणिका कुब्जा भीलनी, गोपी द्रिढ गोविंद गहै।
कहै बालकराम हरि भजन बिनु, अभिमानी न्यारे रहै॥[6]

यह 'असुर' शब्द मुसलमान जाति का स्पष्ट द्योतक है और इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग राजस्थानी-साहित्य में अनेक स्थानों पर हुआ है और राजस्थानी-कोष में भी मिलता है। नीचे हम मुरारिदान कृत डिंगल-कोष से वह अंश उद्धृत करते हैं जिसमें 'मुसलमान' शब्द के २२ पर्यायवाची शब्द बताये गये हैं—

रोद रवद ग्वदड़ो तुरक, मीर मेछ कलमाण।
मुगल असुर बीबा मियाँ, रोजायत खुरसाण॥
कलम जवन तणमीट कह, खुरासाण अर खान।
चगथा आसुर फेर चव, मानहु मूसलमान॥[7]

इस प्रसंग में एक खास बात याद रखने की यह है कि ये बालकराम

---

5. स्वामी मंगलदास; पंचामृत, पृ० ए (भूमिका)
6. वही; पृ० ३५।
7. पृ० १०६।

दादूजी के नाती थे और इसलिये उनकी लिखी हुई बात अन्यथा नहीं हो सकती। वास्तव में दादूजी मुसलमान ही थे। दादूपंथी विद्वानों को यह सत्य स्वीकार करना चाहिए।

दादूजी की जन्मभूमि के विषय में निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नहीं हो पाया है। इनके अहमदाबाद में उत्पन्न होने की जो कथा दादूपंथियों में प्रचलित है वह निस्सार है और दादूजी की जाति को छिपाने, उनको दिव्य पुरुष सिद्ध करने आदि उद्देश्यों से प्रेरित होकर गढ़ी गई जान पड़ती है। परन्तु जनगोपाल कृत 'श्रीदादूजन्मलीलापरची,' माधवदास कृत 'संतगुणसागर,' राघवदास कृत 'भक्तमाल' इत्यादि ग्रंथों में दादूजी का जो इतिवृत्त दिया हुआ है उसके अध्ययन से ऐसा अनुमान होता है कि वे साँभर अथवा साँभर के निकटवर्त्ती किसी छोटे-मोटे गाँव के रहनेवाले थे। इस अनुमान का आधार यह है कि उक्त ग्रंथों में दादूजी के अहमदाबाद में जन्म लेने की कथा, जो कपोल–कल्पित है, समाप्त करते ही कथा-सूत्र को मिलाने के लिये उनको साँभर में ला बिठाया है और इस बीच का इतिहास प्रायः गायब है। सं० १६२५ में अर्थात् २४ वर्ष की वयस्था में दादूजी साँभर में थे ऐसा उल्लेख मिलता है।[9] इससे पहले वे पाठाभ्यास आदि कार्यों में व्यस्त रहे होंगे और एक संत के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर पाये होंगे। अतः साँभर, जिसे दादूपंथी विद्वान दादूजी की प्रथम यात्रा का स्थान बता रहे हैं, वास्तव में दादूजी के जीवन-प्रवेश का स्थान है। और वही अथवा उसी के आसपास का कोई गाँव उनकी जन्मभूमि होनी चाहिए।

8, करै हंस ज्युं अंस, सार असार नियारे।
आन देव को त्याग, एक परब्रह्म संभारे॥

किये कवित्त षट तुकी, बहुरि मनहर अर इंदव।
कुंडलिया पुनि साखि, भक्ति विमुखन को निंदव॥
राघो गुरु पद में निपुन, सत गुरु सुन्दर नाम।
दादू दीन दयाल के, नाती बालकराम॥

—राघवीय भगतमाल

9. बारह बरस बालपन गयऊ। गुरु भेटत तब सनमुख भयऊ॥
सांभर आये समै पचीसा। गरीबदास जनमें बत्तीसा॥

—श्रीदादूजन्मलीलापरची

कहा जाता है कि दादूजी जब ग्यारह वर्ष के थे तब भगवान ने वृद्धानंद नामक एक साधु के रूप में प्रगट होकर उनको गुरुमंत्र दिया था और वही उनके गुरु थे।[10]

दादूजी ने विवाह भी किया था। इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। पुत्रों के नाम गरीबदास और मिसकीनदास थे। पुत्रियों के नाम रामकुंवरि और शोभाकुंवरि बताये जाते हैं।[11]

इनके योग-चमत्कार और मुगल सम्राट् अकबर से भेंट करने आदि की कथाएँ दादूपंथी विद्वानों के ग्रंथों में मिलती हैं पर उनका ऐतिहासिक महत्त्व विशेष नहीं है।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में दादूजी नरेना में निवास करते थे जहाँ सं० १६६० में इनका स्वर्गवास हुआ था।[12]

दादूजी बड़े क्षमाशील एवं व्यक्तित्व-सम्पन्न पुरुष थे और स्वभाव के बड़े कोमल थे। इन गुणों के कारण ये बहुत लोकप्रिय हो गये थे और जहाँ जाते वहाँ छोटे-बड़े अमीर-गरीब सभी द्वारा समान रूप से आदृत होते थे। ये अपने पीछे हजारों शिष्य-प्रशिष्य छोड़कर मरे जिनमें ५२ मुख्य थे। इन ५२ मुख्य शिष्यों में से कुछ की गद्दियाँ अभी तक चल रही हैं।

हिंदी के संत-साहित्य में दादूजी की 'वाणी' का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके छः संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और सातवाँ प्रेस में है। यह दो भागों में विभक्त है, अंग-भाग और राग-भाग। अंग-भाग ३७ उपांगों में बँटा हुआ है जिनमें कुल मिलाकर २६५२ साखियाँ हैं। राग भाग में २७ राग-रागिनियों में बंधे हुए ४४५ पद हैं। वाणी का यह क्रम दादूजी के शिष्य रज्जबजी आदि द्वारा पीछे से किया गया है। पहले यह एक संग्रह मात्र था।

---

10. जनगोपाल; श्री दादूजन्मलीलापरची, प्रथम विश्राम, पद्य ४१
11. स्वामी मंगलदास; गरीबदास की वाणी, पृ० ठ (भूमिका)
12. गये गुनसठे नगर नराने, साठे स्वामी राम समाने।

—श्रीदादूजन्मलीलापरची

गुनसठ वर्ष दिन गुन पक्षहि, जेठ वदी वसुहि सनि जाने।
दादु दयाल मिले भगवंतहि माधवदास कथा गुन गाने॥

—संतगुणसागर

कहा जाता है कि दादूजी जब ग्यारह वर्ष के थे तब भगवान ने वृद्धानंद नामक एक साधु के रूप में प्रगट होकर उनको गुरुमंत्र दिया था और वही उनके गुरु थे।[10]

दादूजी ने विवाह भी किया था। इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। पुत्रों के नाम गरीबदास और मिसकीनदास थे। पुत्रियों के नाम रामकुंवरि और शोभाकुंवरि बताये जाते हैं।[11]

इनके योग-चमत्कार और मुग़ल सम्राट् अकबर से भेंट करने आदि की कथाएँ दादूपंथी विद्वानों के ग्रंथों में मिलती हैं पर उनका ऐतिहासिक महत्त्व विशेष नहीं है।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में दादूजी नरेना में निवास करते थे जहां सं० १६६० में इनका स्वर्गवास हुआ था।[12]

दादूजी बड़े क्षमाशील एवं व्यक्तित्व-सम्पन्न पुरुष थे और स्वभाव के बड़े कोमल थे। इन गुणों के कारण ये बहुत लोकप्रिय हो गये थे और जहाँ जाते वहाँ छोटे-बड़े अमीर-गरीब सभी द्वारा समान रूप से आदृत होते थे। ये अपने पीछे हजारों शिष्य-प्रशिष्य छोड़कर मरे जिनमें ५२ मुख्य थे। इन ५२ मुख्य शिष्यों में से कुछ की गद्दियाँ अभी तक चल रही हैं।

हिंदी के संत-साहित्य में दादूजी की 'वाणी' का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके छः संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और सातवाँ प्रेस में है। यह दो भागों में विभक्त है, अंग-भाग और राग-भाग। अंग-भाग ३७ उपांगों में बँटा हुआ है जिनमें कुल मिलाकर २६५२ साखियाँ हैं। राग भाग में २७ राग-रागिनियों में बंधे हुए ४४५ पद हैं। वाणी का यह क्रम दादूजी के शिष्य रज्जबजी आदि द्वारा पीछे से किया गया है। पहले यह एक संग्रह मात्र था।

---

10. जनगोपाल; श्री दादूजन्मलीलापरची, प्रथम विश्राम, पद्य ४१
11. स्वामी मंगलदास; गरीबदास की वाणी, पृ० ठ (भूमिका)
12. समै गुनसठे नगर नराने, साठे स्वामी राम समानें।

—श्रीदादूजन्मलीलापरची

गुनसठ वर्ष दिन गुन पक्षहि, जेठ वदी वसुहि सनि जाने।
दादू दयाल मिलै भगवंतहि माधवदास कथा गुन गाने ।।

—संतगुणसागर

दादूजी बहुत पढ़े-लिखे न थे, पर बहुश्रुत थे और कवि तो माँ के पेट से बने हुए थे। इनकी कविता बहुत सरस, भावपूर्ण और कोमल है; वर्णन-शैली स्पष्ट और स्वाभाविक है। इनकी तुलना प्रायः कबीर से की जाती है। इसलिए कि इन दोनों में भाव-साम्य अधिक है। यह ठीक है। परन्तु दोनों की भाव-व्यंजना में अंतर है। कबीर के शब्दों में उग्रता विशेष है। वे तीखे तीरों की तरह मर्मान्तक घाव करते हैं, तड़पाते हैं। परंतु दादू के शब्दों में पैनापन उतना नहीं है। इनके शब्द-बाण घाव नहीं करते; केवल छू देते हैं जिससे पाठक सावधान हो जाय।

(२२२) गरीबदास—ये दादूजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी हुए थे। इनका जन्म सं० १६३२ में और देहान्त सं० १६६३ के आसपास हुआ था।[13] इनके विषय में थोड़ा-सा मतभेद है। स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायण आदि विद्वानों का कथन है कि ये दादूजी के औरस पुत्र थे। अपने कथन का आधार इन्होंने नहीं बताया पर यह आधार जनगोपाल कृत 'श्रीदादूजन्मलीलापरची' ग्रंथ मालूम पड़ता है जिसमें ऐसा ही लिखा मिलता है—

> "नर की साखी फल न जानैं, कन्या की गति कौन बखानैं।
> ज्यों कबीर के भये कमाला, त्यों स्वामी के उपजे बाला॥
> सोलह सौ ज्यू गयो बतीसा, सावन जन्म दियो जगदीसा।
> दादू पिता प्रगट है जाकै, गरीबदास सुत उपज्यो ताकै॥"[14]

ऐसा ही मत जैमलजी, चैनजी, राघवदास इत्यादि दादूपंथ के कुछ अन्य संतों का भी है—

> मेर के न मेर होइ सेस के न सेस होइ
> चंद के न चंद सूर सूर दीप देखिये।
> बाप की भगति गति ज्ञान तैं गरीबदास
> जैमल सुजन जस मो मन उमेलिये॥
>
> —जैमलजी

---

13. स्वामी मंगलदास; गरीबदासजी की वाणी, पृ० ६ (भूमिका)
14. नवम विश्राम, पद्य १ और ४

औतरे दयाल घर दियौ दत्त कृपा करि
सनमुख भये हरिराम की निवाज है ।
—चैनजी

दादूजी सुवन सूरवीर धीर सा पुरुष
गरीबनिवाज यों गरीबदास गाइये ।
—राघवदास

परंतु दादूपंथी कुछ आधुनिक विद्वानों का मत इसके विरुद्ध है । उनका कहना है कि उपर्युक्त पद्यों में जो 'सुत' 'सुवन' इत्यादि शब्द आये हैं उनसे अभिप्राय वरद अथवा पोष्य पुत्र से है, न कि औरस पुत्र से ।[15] अपने इस कथन की पुष्टि में ये माधौदास कृत 'संतगुणसागर' को आगे करते हैं जिसमें गरीबदास का साँभर के दामोदरजी नामक एक व्यक्ति के घर में जन्म लेना बताया गया है । दामोदरजी के कोई संतान नहीं थी । उनके मन में परम लालसा थी कि यदि किसी प्रकार दादूजी महाराज उन पर कृपा कर दें तो उनके भी संतति हो जाय । दादूजी को उनकी लालसा का पता लग गया । उन्होंने दो लौंग और दो इलायची दामोदरजी को दिये । इससे उनके दो पुत्र और दो कन्याएँ हुईं । पुत्रों के नाम गरीबदास और मसकीनदास थे । इन चारों संतानों को दामोदरजी ने दादूजी को भेंट कर दिया ।[16]

उनका दूसरा तर्क यह है कि दादूजी के समकालीन और उनके बाद के कई दादूपंथी ग्रंथकारों ने गरीबदास को दादूजी का शिष्य लिखा है और दादूजी के नाम के आगे 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया है । यदि गरीबदास दादूजी के औरस पुत्र होते तो ये ग्रंथकर्त्ता उनके लिये 'शिष्य' शब्द का प्रयोग कदापि न करते, पुत्र ही लिखते ।[17]

ये दोनों युक्तियाँ मान्य नहीं हैं । कारण, माधौदास कृत 'संत-गुणसागर' में वर्णित दामोदरजी संबंधी लौंग-इलायची वाली उपरोक्त कहानी केवल मनगढ़ंत है । ऐसी बातों को इतिहास में स्थान नहीं मिल सकता । दूसरी दलील भी उतनी ही निरर्थक है । दादूजी एक संत थे और गरीबदास एक शिष्य की हैसियत से उनकी गद्दी पर बैठे थे ।

---

15. स्वामी मंगलदास: गरीबदासजी की वाणी, पृ० ६ (भूमिका)
16. वही; पृ० ८ (भूमिका)
17. वही पृ० ८ (भूमिका)

औतरे दयाल घर दियौ दत्त कृपा करि
सनमुख भये हरिराम की निवाज है ।
—चैनजी

दादूजी सुवन सूरवीर धीर सा पुरुष
गरीबनिवाज यों गरीबदास गाइये ।
—राघवदास

परंतु दादूपंथी कुछ आधुनिक विद्वानों का मत इसके विरुद्ध है । उनका कहना है कि उपर्युक्त पद्यों में जो 'सुत' 'सुवन' इत्यादि शब्द आये हैं उनसे अभिप्राय वरद अथवा पोष्य पुत्र से है, न कि औरस पुत्र से ।[15] अपने इस कथन की पुष्टि में ये माधौदास कृत 'संतगुणसागर' को आगे करते हैं जिसमें गरीबदास का साँभर के दामोदरजी नामक एक व्यक्ति के घर में जन्म लेना बताया गया है । दामोदरजी के कोई संतान नहीं थी । उनके मन में परम लालसा थी कि यदि किसी प्रकार दादूजी महाराज उन पर कृपा कर दें तो उनके भी संतति हो जाय । दादूजी को उनकी लालसा का पता लग गया । उन्होंने दो लौंग और दो इलायची दामोदरजी को दिये । इससे उनके दो पुत्र और दो कन्याएँ हुईं । पुत्रों के नाम गरीबदास और मसकीनदास थे । इन चारों संतानों को दामोदरजी ने दादूजी को भेंट कर दिया ।[16]

उनका दूसरा तर्क यह है कि दादूजी के समकालीन और उनके बाद के कई दादूपंथी ग्रंथकारों ने गरीबदास को दादूजी का शिष्य लिखा है और दादूजी के नाम के आगे 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया है । यदि गरीबदास दादूजी के औरस पुत्र होते तो ये ग्रंथकर्त्ता उनके लिये 'शिष्य' शब्द का प्रयोग कदापि न करते, पुत्र ही लिखते ।[17]

ये दोनों युक्तियाँ मान्य नहीं हैं । कारण, माधौदास कृत 'संत-गुणसागर' में वर्णित दामोदरजी संबंधी लौंग-इलायची वाली उपरोक्त कहानी केवल मनगढ़ंत है । ऐसी बातों को इतिहास में स्थान नहीं मिल सकता । दूसरी दलील भी उतनी ही निरर्थक है । दादूजी एक संत थे और गरीबदास एक शिष्य की हैसियत से उनकी गद्दी पर बैठे थे ।

---

15. स्वामी मंगलदास: गरीबदासजी की वाणी, पृ० ६ (भूमिका)
16. वही; पृ० ठ (भूमिका)
17. वही पृ० ट (भूमिका)

बखनाजी की 'वाणी' का दादूपंथियों के अतिरिक्त अन्य लोगों में भी अच्छा आदर है। इन्होंने गेय पद अधिक लिखे हैं जिनमें बड़ी स्वाभाविकता और तल्लीनता पाई जाती है। भाषा इनकी ढूंढाड़ी से बहुत प्रभावित है।

(२२४) जगजीवन—ये दादूजी के शिष्य किसी ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे।[21] इनका रचना-काल सं० १६४० के आसपास है। ये दौसा के निवासी थे। कहा जाता है कि इन्होंने काशी में विद्याभ्यास किया था और दादूजी की महिमा सुनकर उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए ये आमेर में गये थे। कई दिनों तक शास्त्रार्थ होता रहा। अंत में ये हार गये। इन्होंने अपनी सब पुस्तकें तालाब में फेंक दीं और दादूजी का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।[22]

ये बड़े पंडित और ज्ञानी साधु थे और हरिभजन में अपना समय व्यतीत करते थे। इनको काव्य-रचना का अच्छा अभ्यास था और इन्होंने सुन्दरदास आदि अपने कई गुरु भाइयों को कविता करना सिखाया था इनके दो ग्रंथ मिलते हैं; (१) वाणी और (२) दृष्टान्त-साखी-संग्रह। ये दोनों सुघड़ रचनाएँ हैं और अप्रकाशित हैं। इनकी हस्तलिखित प्रतियां जयपुर के पुरोहित हरिनारायणजी के संग्रह में हैं।

(२२५) जनगोपाल—ये वैश्य जाति के संत राहोरी (जयपुर) के अधिवासी थे। इनका रचना-काल सं० १६५० है। ये दादूजी के ५२ प्रधान शिष्यों में से थे। दादूजी का शिष्यत्व स्वीकार करने के पूर्व ये सीकर में संन्यासी के रूप में घूमते फिरते थे और वहीं उनके चेले हुए थे।[23] इसके बाद ये दादूजी के पास रहने लगे और आमेर, सांभर, नरेना, दौसा, भैराणा आदि स्थानों में जहां कहीं दादूजी पधारते उनके साथ जाते थे। ये उच्च कोटि के पंडित एवं पहुँचे हुए महात्मा थे। स्वामी राघवदास ने इनके व्यक्तित्व की बड़ी सराहना की है—

> दादूजी के पंथ में चतुर बुद्धि वातन को,
> जानिये गोपालजन सर्व ही को भाव तो।

---

21. पुरोहित हरिनारायण; सुन्दर-ग्रंथावली, पृ० ८१ (जीवनचरित्र)।
22. वही; पृ० ८२।
23. मंगलदास स्वामी ; श्रीदादूजन्मलीलापरची, पृ० ग (भूमिका)

मीठी वाणी निकसत मीठी गुरु-ज्ञानन सौं,
ज्ञानन में होत सुन्न अर्थ को गुमानसो ।।
सब तन सूं रति साहिब की स्वामी सो,
सहज सहित सब-सानिधान मानसो ।
गावौ मन मुख नाम और ओंकार मन,
सूंत गुरुदेवजी को ध्यान धार मानसो ।।

जनगोपाल-रचित तेरह ग्रंथों का पता है जिनके नाम ये हैं—

(१) श्रीदादू-जन्म-लीला-परची (२) ध्रुव-चरित्र (३) प्रह्लाद-चरित्र (४) जड़भरत-चरित्र (५) मोह-विवेक-संवाद (६) गुरु-संवाद (७) काया-प्राण-संवाद (८) अनन्तलीला (९) चौबीस गुरुओं की लीला (१०) बारह-मासिया (११) भेद के सवैये (१२) पद और (१३) साखी।[24]

(२२६) रज्जबजी—ये सांगानेर के एक प्रतिष्ठित पठान-वंश में सं० १६२४ में उत्पन्न हुए थे।[25] इनका जन्म-नाम रज्जबअली खाँ था। बीस वर्ष की आयु में जब ये अपना विवाह करने के लिये दूल्हा बनकर सांगानेर से आमेर गये हुए थे तब वहाँ इनका दादूजी से साक्षात्कार हुआ और विवाह करने का विचार छोड़ उनके शिष्य बन गये। तभी से ये दादूजी के साथ रहने तथा कथा-कीर्तन, सत्संग आदि में अपना समय व्यतीत करने लगे। ये दादूजी के परम भक्त एवं विश्वास-भाजन थे और उनकी वाणी को वेदवाक्य समझते थे। कहते हैं कि दादूजी की मृत्यु से संसार इनको सूना-सा प्रतीत होता था और जिस दिन उन्होंने अपना शरीर छोड़ा उसी दिन से इन्होंने भी अपनी आँखें बंद करलीं और आजन्म न खोलीं। इनका देहान्त सं० १७४६ में हुआ था।[26]

इनके कई शिष्य थे जिनमें गोविंददास, खेमदास इत्यादि दस शिष्य मुख्य थे।[27] इनकी शिष्य-परंपरा के साधु रज्जबावत अथवा रज्जबपंथी कहलाते हैं और काफी बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। इनका मुख्य स्थान सांगानेर है।

रज्जबजी के 'वाणी' और 'सर्वंगी' नामक दो ग्रंथ मिलते हैं जो राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा में हैं। इनको दृष्टान्त बहुत प्रिय थे जिनके द्वारा इन्होंने

24. वही; पृ० ग।
25. 'राजस्थान', सं० १९९२, अंक १, में प्रकाशित स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायण का 'महात्मा रज्जबजी' शीर्षक लेख, पृ० ६९।
26. वही; पृ० ७९।
27. वही; पृ० ८०।

प्रेम-भक्ति का मार्मिक विश्लेषण किया है । इनकी उक्तियाँ कहीं-कहीं सूफियों के ढंग की हैं पर वे दादूजी के मत का समर्थन करती हैं ।

(२२७) जगन्नाथदास—ये जाति के कायस्थ थे और आमेर में दादूजी के शिष्य हुए थे ।[28] इनका निर्माण-काल सं० १६५० के लगभग है । ये दादूजी के बड़े कृपापात्र थे । यहाँ तक कि उन्होंने इनको अपनी छड़ी, गुदड़ी आदि चिह्न प्रदान किये थे । ये अच्छे कवि थे । इनके 'वाणी' और 'गुणगंजनामा' ग्रंथ प्रसिद्ध हैं । इनके अतिरिक्त इनके 'गीतासार' और 'योगवासिष्ठसार' नामक दो ग्रंथ और बताये जाते हैं ।[29]

(२२८) भीखजन—ये फतहपुर-निवासी जाति के महाब्राह्मण अथवा आचार्य थे । इनके पिता का नाम देवीसहाय था ।[30] दादूजी के शिष्य संतदास इनके गुरु थे । ये बड़े भजनानंदी और गुणवान साधु थे । इनके बनाये दो ग्रंथ मिले हैं, सर्वांगबावनी और भारती-नाममाला । 'सर्वांगबावनी' में ५४ कवित्त (छप्पय) हैं । यह सं० १६८३ में लिखी गई थी ।[31] इसमें नीति और लोक-व्यवहार की बातों का वर्णन है । 'भारती-नाममाला' में ५२५ पद्य हैं, ५१७ दोहे और ८ कवित्त । इसका निर्माण सं० १६८५ में फतहपुर में हुआ था ।[32] यह 'अमरकोष' का पद्यानुवाद है ।

ये दोनों साहित्यिक रचनाएँ हैं और अच्छे ढंग से लिखी गई हैं । इनकी भाषा भी बहुत मँजी हुई और ललित है ।

(२२९) माधोदास—ये दादूजी के ५२ प्रधान शिष्यों में से थे और मारवाड़ राज्य के गूलर नामक गाँव में रहते थे ।[33] इनका लिखा हुआ 'संत

---

28. पुरोहित हरिनारायण ; सुन्दर-ग्रंथावली, पृ० ९२ (जीवनचरित्र) ।
29. वही ; पृ० ९३ ।
30. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, द्वितीय भाग, पृ० १५३ ।
31. सम्वत सोलह सै जु बरस, जब हुती तियासी ।
    कातिग मास पख सेत, छेत दिन पूरणमासी ॥
    —सर्वांगबावनी, पद्य ५३ ।
32. सोलहसै पच्चासियै, संवत कहूँ विचार ।
    सेत पाखि राका तिथू, कवि दिन मास कुवार ॥
    —भारतीनाममाला, पद्य २० ।
33. पु० हरिनारायण ; सुन्दर-ग्रंथावली, पृ० ९३ (जीवन-चरित्र) ।

मिश्रबंधु-विनोद में वाजिन्दजी का जन्म-काल संवत १७०८ लिखा है[37] जो अशुद्ध मालूम देता है। क्योंकि ये दादूजी के शिष्य थे जैसा कि राघवदास कृत भक्तमाल से स्पष्ट है। अतएव इनका जन्म-समय दादूजी की मृत्यु अर्थात् सं० १६६० के पहले का होना चाहिये।

वाजिन्दजी के बनाये निम्नलिखित १६ ग्रन्थ मिलते हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये इनके स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं, बल्कि इनकी 'वाणी' के अवयव-हैं। यह अनुमान ठीक जान पड़ता है। क्योंकि इन ग्रंथों के नामों से कुछ ऐसा ही आभास होता है।

(१) अरिल्ल (२) गुण कठियारानामा (३) गुण उत्पत्तिनामा (४) गुण श्रीमुखनामा (५) गुण छरियानामा (६) गुण हरिजननामा (७) गुण नाम-माला (८) गुण गंजनामा (९) गुण निरमोहीनामा (१०) गुण प्रेमकहानी (११) गुण विरह-अंग (१२) गुण नीसानी (१३) गुण छंद (१४) गुण हितोपदेश (१५) पद और (१६) राजकीर्तन।

इनके अतिरिक्त इनकी फुटकर साखियाँ भी इधर-उधर संग्रह-ग्रंथों में बहुत देखने में आती हैं। कुछ का संकलन संत जगन्नाथ के 'गुणगंजनामा' और रज्जबजी के 'सर्वंगी' ग्रंथों में भी हुआ है।

(२३२) सुन्दरदास—ये दौसा के रहनेवाले खंडेलवाल महाजन थे। इनका जन्म सं० १६५३ में हुआ था।[38] इनके पिता का नाम चोखा उपनाम परमानन्द और माता का सती था।[39] कहा जाता है कि टहटड़ा गाँव की ओर से घूमते हुए एक दिन दादूजी जब दौसा में आये और इनके माता-पिता इनको साथ लेकर उनके दर्शन करने को उनके निवास-स्थान पर गये तब होनहार समझकर उन्होंने इन्हें अपना शिष्य बना लिया। उस समय इनकी आयु छः वर्ष की थी। उसी दिन से इन्होंने अपना जन्म-स्थान तथा पारिवार छोड़ दिया और दादूजी के साथ रहने लगे। दादूजी की मृत्यु तक ये उनके पास रहे। तदनंतर काशी चले गये। वहाँ इन्होंने साहित्य, व्याकरण, दर्शन आदि विभिन्न विषयों का अध्ययन किया और कविता करना भी सीखा। फिर फतहपुर चले आये और अपने गुरु भाई प्रयागदास के साथ रहने लगे।[40]

---

37. पृ० ५०६
38. पं० रामचंद्र शुक्ल; हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ७५
39. हरिनारायण; सुन्दर-ग्रंथावली, पृ० १ (जीवन चरित्र)
40. वही, पृ० २६

सुन्दरदास बड़े मधुरभाषी, स्वरूपवान और बालब्रह्मचारी थे। इनके स्वभाव में बालकों का सा भोलापन था। इनको देशाटन का बड़ा शौक था और बिना विशेष कारण के किसी एक स्थान पर नहीं ठहरते थे। इन्होंने प्रायः समस्त उत्तरी भारत, गुजरात, मालवा आदि का कई बार पर्यटन किया था। इससे इनके ज्ञान-भंडार की अच्छी वृद्धि हुई और पंजाबी, गुजराती आदि कई भाषाओं का अच्छा अभ्यास हो गया। इनका नियम था कि जिस किसी स्थान पर जाते वहाँ के साधु-महात्माओं और विद्वानों से अवश्य मिलते थे। उनके सत्संग से लाभ उठाते और अपने सदुपदेशों से उनको लाभान्वित करते थे। इन गुणों के कारण दादूपंथियों के अतिरिक्त इतर धर्मावलम्बी भी इन्हें पूज्य दृष्टि से देखते और इनकी साधुता, ज्ञान-गरिमा एवं काव्य-रचना-चातुरी की बड़ी सराहना करते थे।

स्वामीजी कभी फतहपुर में, कभी कुसारने में और कभी आमेर में रहे। परन्तु अन्त समय में ये साँगानेर में थे जहाँ सं० १७४६ में इनका बैकुंठवास हुआ था। साँगानेर में जिस स्थान पर इनकी दाह-क्रिया हुई वहाँ इनके शिष्यों ने एक छोटा-सा चबूतरा बनाकर उस पर एक गुमटी खड़ी कर दी थी। यह गुमटी सं० १९६५ तक अच्छी दशा में रही पर बाद में न मालूम किसी ने उसे तोड़-फोड़ डाला और स्वामीजी के चरण-चिह्नों को भी उखाड़कर फेंक दिया। उस छतरी में यह चौपाई खुदी हुई थी——

संवत सत्रासै छीयाला। कातिक सुदि अष्टमी उजाला॥
तीजै पहर भरस्पतिवार। सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥[41]

सुन्दरदास के कई शिष्य थे जिनमें दयालदास, श्यामदास, दामोदरदास, निर्मलदास और नारायणदास ये पाँच मुख्य थे। इन पाँचों के थाँभे बड़े थाँभे माने जाते हैं। इनमें भी फतहपुर का थाँभा प्रधान गिना जाता है। इसलिये ये 'सुन्दरदास फतहपुरिया' भी कहलाते हैं। इनके हाथ की लिखी हुई पुस्तकें, इनका पलंग, टोपा आदि फतहपुर में इनके थाँभाधारियों के पास सुरक्षित हैं।

सुन्दरदास सत्साहित्य के उद्भावक, पोषक और उन्नायक थे। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं।

---

41. वही: पृ० ११९

(१) ज्ञान-समुद्र (२) सर्वाङ्गयोग प्रदीपिका (३) पंचेन्द्रिय-चरित्र (४) सुख-समाधि (५) स्वप्न-प्रबोध (६) वेद-विचार (७) उक्त-अनूप (८) अद्भुत-उपदेश (९) पंचप्रभाव (१०) गुरु-सम्प्रदाय (११) गुन-उत्पत्ति-नीसानी (१२) सद्गुरु-महिमा नीसांनी (१३) बावनी (१४) गुरु दया षट्पदी (१५) भ्रम-विध्वंस-अष्टक (१६) गुरु-कृपा-अष्टक (१७) गुरु-उपदेश ज्ञानाष्टक (१८) गुरुदेव-महिमा स्तोत्राष्टक (१९) रामाष्टक (२०) नामाष्टक (२१) आत्मा-अचलाष्टक (२२) पंजाबी भाषा अष्टक (२३) ब्रह्म स्तोत्र अष्टक (२४) पीरमुरीद अष्टक (२५) अजब ख्याल अष्टक (२६) ज्ञान झूलनाष्टक (२७) सहजानंद (२८) गृह-वैराग्य बोध (२९) हरिबोल चितावनी (३०) तर्क चितावनी (३१) विवेक चितावनी (३२) पवंगम छंद (३३) अडिला छंद (३४) मडिला छंद (३५) बारहमासा (३६) आयुर्बल भेद-आत्मा विचार (३७) त्रिविध अंतःकरण भेद (३८) पूरबी भाषा बरवै (३९) सुन्दरविलास (४०) साखी (४१) पद और (४२) फुटकर काव्य ।

हिंदी के निर्गुणोपासक भक्त कवियों में सुन्दरदास का एक विशिष्ट स्थान है । शान्त रस और वेदान्त विषयक कविता इनकी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है । ये साहित्य-शास्त्र के प्रौढ़ विद्वान थे और पद-साखियों के अतिरिक्त कवित्त-सवैया भी लिखते थे । अतः रीतिकालीन कवियों की अभिव्यंजना पद्धति पर लिखी हुई इनकी कविताओं का जितना बौद्धिक मूल्य है उतना ही साहित्यिक भी है । और यही कारण है कि उन्हें पढ़ कर ज्ञान-पिपासु भक्तजन ही परितृप्त नहीं होते, किन्तु काव्य-कौशल के प्रेमी पाठक भी आनंदित होते और झूमने लगते हैं ।

(२३३) खेमदास—ये रज्जबजी के शिष्य थे[42] और सरवाड़ में रहते थे । इनका रचना-काल सं० १७०० के आसपास है । अपने 'भक्तमाल' में राघवदास ने इनके विषय में एक कवित्त लिखा है जिससे इनके स्वभाव और चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । उस कवित्त को यहां उद्धृत किया जाता है:—

महंत रज्जब के अज्जब शिष्य खेमदास,
जाके नेम नितप्रति व्रत निराकार को ।
पंथ में प्रसिद्ध अति देखिये दैदीप्यमान,
बाणी को बिनाणी अति मांझिन में भार को ।।

42. स्वामी मंगलदास: पंचामृत, पृ० श्री (भूमिका)

रामत मेवाड़ में मेवा सी मुख सोहे बात,
बोलन खरो सुहात वेतवा विचार को ।
राघौ मारो रहणी को कहणी सुकृति अति,
चेतन चतुरमति भेदी सुख सार को ॥

खेमदास के रचे हुए सत्रह ग्रंथ उपलब्ध हैं । उनके नाम ये हैं—

(१) शुक-संवाद (२) भयानक चितावणी (३) गोपीचंद—वैराग्य-बोध (४) धर्म-संवाद (५) ज्ञान चितावणी (६) रावियां विसरे का पद्धतिनामा (७) नसीहतनामा (८) ज्ञानजोग (९) संदेहदवण (१०) जुगतिजोग भेद (११) सिधसंकेत आतमासाधन (१२) कसणी (१३) विप्रबोध (१४) गुण ज्ञान गंगा (१५) जोग संग्राम (१६) विड़दावली और (१७) बावनी ।

इनकी रचना सद्भावोत्पादक और भाषा प्रौढ़ है, पर उस में उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग आवश्यकता से अधिक हुआ है जिससे कुछ अटपटापन आ गया है । उदाहरण—

हिन्दू अरु तुरक खुदाइ का जहान सब,
बेगाना न कोई भाई खेस करि जानियै ।
दोइ फरजंद एक बाप करि जाने कोई,
दोनों का दरद दुई दिल में न आनियै ॥
राखि इखलास सब सच्चे की सगाई साधि
मिहर मुहब्बत सों बंदगी बखानियै ।
बेपीर बेराह बदनजर औ बदफैल,
खेमदास सोई जाति वेईमान रानियै ॥[43]

(२३४) राघवदास—ये पीपावंशी चांगलगोत शाखा के क्षत्रिय थे ।[44] इनके गुरु का नाम प्रहलाददास था । ये पहले वैष्णव मतानुयायी थे, फिर दादूपंथी हो गये थे । इन्होंने अपने गुरु की आज्ञा से 'भक्तमाल' नामक एक ग्रंथ सं० १७१७ में बनाया था—

संवत सत्रहसै सत्रहोतरा, सुकल पक्ष सनिवार ।
तिथि त्रितिया आषाढ़ की, राघौ कियो विचार ॥

---

43. वही: पृ० ६१

44. पु० हरिनारायण; सुन्दर-ग्रंथावली, पृ० ८८

यह ग्रंथ नाभादास के 'भक्तमाल' की रचना-शैली पर लिखा गया है, पर उसकी अपेक्षा इसका दृष्टिकोण कुछ अधिक व्यापक और उदार है। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में केवल वैष्णव भक्तों को स्थान दिया है। परंतु इन्होंने दादूपंथी संतों के अतिरिक्त रामानुज, विष्णुस्वामी, कबीर, नानक आदि अन्य मतावलंबियों का भी वर्णन किया है। और यह इसकी एक प्रधान विशेषता है। बहुत प्रौढ़ और उपयोगी रचना है।

(२३५) **रसपुंजदास**—ये छोटे सुन्दरदास की शिष्य-परंपरा में थे। इनका असली नाम मोतीराम था। मिश्रबंधुओं ने इनका कविता काल सं० १७८७ बताया है[45] जो अशुद्ध है। इनके बनाये चमत्कार-चन्द्रोदय, प्रस्तार प्रभाकर और वृत्तविनोद नामक तीन ग्रंथ मिलते हैं जो क्रमशः सं० १८६६,[46] सं० १८७१[47] और सं० १८७८[48] में रचे गये थे। मिश्रबंधु-विनोद में इनके एक और ग्रंथ का उल्लेख किया गया है। उसका नाम है, कवित्त श्रीमाताजी रा।[49] परंतु यह इनकी रचना नहीं है। रसपुंज नाम के एक दूसरे कवि की कृति है जो जोधपुर-निवासी थे, जाति के सेवक थे और जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के आश्रित थे।[50]

(२३६) **स्वरूपदास**—ये चारण थे। इनके पिता का नाम मिश्रीदान था। इनका रचना काल सं० १८८०—१९२० है। इनके पूर्वज उमरकोट के रहनेवाले थे जहाँ से आकर इनके पिता अजमेर प्रान्त के बड़ली गांव में बस गये थे। इनका बचपन का नाम शंकरदान था। इनको शिक्षा इनके चचा परमानंद से मिली थी। परंतु शिक्षा प्राप्त करते ही इन्होंने दादूपंथ को स्वीकार कर लिया। इससे इनके चचा को बड़ी निराशा हुई। क्योंकि अच्छा विद्वान बनाकर वे इनके द्वारा कहीं से अच्छी जीविका प्राप्त करना चाहते थे। इस बात पर दुख प्रकट करते हुए उन्होंने इन्हें एक पत्र में लिखा—

---

45. मिश्रबंधु-विनोद, भाग दूसरा, पृ० ५०६

46. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, पृ० ३०

47. संमत ससि मुनि वसु मही, चैत्र कृष्ण पछ सार।
    पंचमी गुरु पूरण भयो, प्रभाकर सु प्रस्तार॥

48. राजस्थान के हिंदी-साहित्यकार, पृ० २४६।

49. पृ० ६२१

50. रा० श्यामसुन्दरदास; हस्तलिखित हिंदी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १३१

कीधी थो कुण कौल, कह पाछो का सूं कियो ।
वेटा थारी वोल, मालै निसदिन संकरा[51] ॥

ये संस्कृत, पिंगल, डिंगल आदि भाषाओं के अच्छे विद्वान थे । रतलाम, सीतामऊ आदि रियासतों के राजदरबारों में इनका बड़ा मान था । सीतामऊ के तत्कालीन नरेश राजसिंह के पुत्र महाराज कुमार रत्नसिंह की तो इनके प्रति इतनी गहरी भक्ति थी कि उन्होंने अपने ग्रंथ 'नटनागर-विनोद' के प्रारंभ में ईश्वर की वंदना न कर पहले इन्हीं की वंदना की है ।

कहा जाता है कि स्वरूपदास ने छः ग्रंथ बनाये थे । परंतु अभी तक इनके केवल तीन ग्रंथ मिले हैं—पांडवयशेन्दुचंद्रिका, वृत्तिबोध[52] और हृदयनंजन । इनमें 'पांडवयशेंदुचंद्रिका' राजस्थान के साहित्य-समाज की बहुत लोकप्रिय रचना है । यह महाभारत की कथा का सारांश है और सोलह अध्यायों में विभक्त है । इसकी भाषा-शैली बहुत प्रौढ़ एवं परिमार्जित है और हृदयस्पर्शी भाव-सौष्ठव तथा विषयगत लालित्य का इसमें बहुत सुन्दर संमिलन हुआ है ।

(२३७) मंगलदास—ये नागा जमात के मुखिया जाति के चारण थे और जयपुर राज्यान्तर्गत जावल गांव के पास ढाणी में रहते थे ।[53] इनके रचना-काल का निश्चित पता नहीं है । परंतु इनके ग्रंथों से ऐसा ज्ञात होता है कि ये सं० १६१० तक वर्तमान थे । इन्होंने गुरु-पद्धति, तर्क-खंडन इत्यादि छोटे-मोटे कई ग्रंथ बनाये जिनमें 'सुंदरोदय' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है ।

चरणदासी-पंथ

यह पंथ मेवात-निवासी संत चरणदास से चला है । राजस्थान में इसके माननेवाले अधिकतर उत्तर-पूर्वी भाग में पाये जाते हैं । इस पंथ में निष्काम प्रेम तथा सदाचरण पर विशेष जोर दिया गया है और गुरु-भक्ति को मोक्ष-प्राप्ति का प्रमुख साधन माना गया है । संत चरणदास की श्रीमद्भागवत में बड़ी आस्था थी जिसकी सच्ची भावना को इन्होंने अपनी कृतियों में ला उतारा है । एक तरफ ये कबीर, दादू आदि निर्गुणी संतों के अनुवर्त्ती थे और दूसरी तरफ श्रीकृष्ण को समस्त कारणों का कारण मानते थे । अतएव इनके मत-सिद्धान्तों में निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति दोनों के तत्त्वों का सम्मिलन हुआ है, यद्यपि झुकाव निर्गुण भक्ति की ओर कुछ अधिक है ।

---

51. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २२४
52. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग दूसरा, पृ० १४
53. राजस्थान के हिंदी-साहित्यकार, पृ० २४६

चरणदासी पंथ में विरक्त और घरबारी दोनों तरह के अनुयायी मिलते हैं। विरक्त पीले वस्त्र पहिनते हैं और ललाट पर गोपीचंदन का पतला तिलक लगाते हैं। ये सिर पर चार-पाँच हाथ लंबा पीले रंग का एक छोटा साफा बाँधते हैं जिसके नीचे पीले रंग की एक नोकदार टोपी होती है।

(२३८) चरणदास—ये जाति के ढूसर बनिया थे। इनका जन्म मेवात प्रदेश के डेहरा नामक गाँव में सं० १७६० में हुआ था।[54] यह गाँव वर्तमान अलवर से कोई आठ मील उत्तर में है। इनके पिता का नाम मुरलीधर और माता का कुंजो था। इनके गुरु का नाम शुकदेव था जिन्होंने इनको शब्द-मार्ग का उपदेश दिया था[55] और इनका रणजीत नाम बदलकर चरणदास रखा था। कहा जाता है कि जब ये सात वर्ष के थे तब इनके पिता मुरली-धर अपना घर छोड़ जंगल में चले गये थे। इसलिये इनकी किशोरावस्था इनके नाना के घर दिल्ली में व्यतीत हुई थी।

लगभग तीस वर्ष की अवस्था में चरणदास ने अपने मत का प्रचार प्रारंभ किया था और थोड़े ही समय में उसे दूर-दूर तक फैला दिया था। इनके अनुयायियों में उस समय के अनेक धनी-मानी लोग थे जिनमें एक नाम मुग़ल बादशाह मुहम्मदशाह का भी लिया जाता है।

इनका देहान्त सं० १८३८ के लगभग दिल्ली नगर में हुआ था।[56] दिल्ली में इनके निधन-स्थान पर एक समाधि बनी हुई है। इनकी एक छतरी इनकी जन्मभूमि डेहरा में भी है। वहाँ प्रतिवर्ष वसंत पंचमी को एक मेला लगता है।

चरणदास की रचना के संबंध में हिंदी के विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इनके ग्रंथों की संख्या कोई २१, कोई १५ और कोई १२ बतलाते हैं।[57] स्वयं चरणदास ने इस विषय में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा है। उन्होंने केवल इतना ही लिखा है कि पहले पहल मैंने पाँच हजार बानियाँ लिखीं जिनको गंगाजी में बहा दिया। तदंतर पाँच हज़ार और बनाईं। उनको हरि-नाम की अग्नि में जलाया। अंत में पाँच हजार फिर रचीं जिनको संत-समुदाय के भेंट किया:—

---

54. डा० श्यामसुन्दरदास; हस्तलिखित हिंदी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० ४३
55. डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल; हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ० ८६
56. वही; पृ० ८७
57. परशुराम चतुर्वेदी; उत्तरी भारत की संत-परंपरा, पृ० ६००

संवत सत्रहसै इक्यासी। चैत सुदी तिथि पूरनवासी ॥
सुकल पक्ष दिन सोमहिवारा। रचू ग्रंथ यों कियो विचारा ॥
तव ही सूं अस्थापन धरिया। कछु वक वानी वा दिन करिया ॥
ऐस हि पाँच हजार वनाई। नांव गुरु के गंग वहाई ॥
फिर भई वानी पाँच हजारा। हरि के नांव अगन में जारा ॥
तीजै गुरु अग्या सूं कीन्ही। सो अपने संताण कौ दीन्हीं ॥[58]

—भक्तिसागर

उदयपुर के सरस्वती भंडार में चरणदास के समस्त ग्रंथों का एक प्रामाणिक संग्रह सुरक्षित है जिसका लेखन-काल सं० १८७६ है।[59] इसमें इनके ग्यारह ग्रंथ संगृहीत हैं जिनकी छंद-संख्या (अनुष्टुप श्लोक) पाँच हजार के लगभग है। इससे मालूम पड़ता है कि चरणदास ने यही ११ ग्रंथ लिखे थे और इनके अलावा जो भी ग्रंथ हिंदी-साहित्य में इनके नाम से चल रहे हैं वे वस्तुतः इन के नहीं हैं। इन ग्यारह ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है:—

१ ब्रजचरित्र

पद्य संख्या	६५
विषय	श्रीकृष्ण व ब्रज का वर्णन

२ अमरलोक-अखंडधाम-वर्णन

पद्य संख्या	५३
विषय	स्वर्गलोक व प्रेम-वर्णन

३ धर्मजहाज

पद्य संख्या	१७७
विषय	कर्मवाद

४ ज्ञानस्वरोदय

पद्य संख्या	२२७
विषय	योग-क्रिया

५ अष्टांग जोग

पद्य संख्या	३३१
विषय	योगाभ्यास

---

58. सरस्वती भंडार, उदयपुर, की हस्तलिखित प्रति, पत्र १२८

59. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, पृ० ६४

(२) वेद, श्रुति, स्मृति, गुरुवाणी, शास्त्र, आर्षग्रंथ, पुराण, आप्तवाक्यों को मानना और सद्विद्या का प्रचार करना।

(३) पाठ-पूजन, संध्या वंदनादि नित्य कर्मों का पालन करना और शरीर के समस्त सुखों को छोड़कर निरंतर राम-स्मरण पूर्वक योगाभ्यासी होना।

(४) सद्गुरु और संतों की आज्ञा मानना। उनको ईश्वर रूप जानना और सत्संग को परम लाभ समझना।

(५) अपने सब व्यवहारों को ईश्वराधीन जानना और हिंसा रहित सत्य धर्मयुक्त सात्विक उद्यमी होना।

(६) ईश्वर को अर्पण किया हुआ प्रसाद ग्रहण करना; अन्य देवताओं के प्रसाद को स्पर्श न करना और न अन्य देवताओं को देवत्व बुद्धिकर मानना।

(७) भोजनाच्छादन की चिन्ता न करना और न किसी से याचना करना। केवल सर्वशक्तिमान एक ईश्वर से ही आशा-विश्वास रखना।

(८) शील, संतोष, त्याग, वैराग्य, क्षमा, सरलता, धृति आदि धारण करना और सत्यभाषी होना।

(९) काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, अभिमान, ईर्ष्या, निंदा आदि का त्याग कर अन्तःकरण को शुद्ध रखना तथा संयम-नियम से रहना और स्त्री मात्र को माता-बहिन समझना।

(१०) जल छानकर पीना, रात्रि में भोजन न करना, जीव रक्षार्थ पाँव देखकर धरना और चातुर्मास में विहार न करना अर्थात् एक जगह रहना।

(११) दूसरों के सुख, दुख, हानि, लाभ को अपनी ही तरह समझना और सब की उन्नति में अपनी उन्नति मानना।

(१२) मानापमान रहित होकर तन, मन और वचन से परोपकार करना और संपूर्ण प्राणी मात्र को एक ही आत्मरूप से देखना।

(१३) मांस, मदिरा, भांग, तम्बाकू, अफीम, जुवा आदि व्यसनों से बचना और व्यसनी लोगों की संगति न करना।

(१४) बाह्याडंबर में रत न होकर सात्विक रंग रंजित वस्त्र धारण करना और हर समय ईश्वर को याद करते रहना।

(१५) भ्रमात्मक भीरुता में न फँसकर सद्गुरु द्वारा प्राप्त वेदानुकूल सत्पथ का अनुसरण करना।

राजस्थान में रामसनेहियों की तीन शाखाएं हैं जिनके आचार्य शाहपुरा, खेड़ापा और रेण इन तीन केन्द्रों में अवस्थित हैं । इन तीनों शाखाओं के मूल सिद्धान्तों में विशेष अंतर नहीं है पर इनके आचार्य भिन्न होने से इनके अनुयायी अपने को एक दूसरे से भिन्न मानते हैं ।

शाहपुरा की शाखा रामचरणजी से चली है । इसके अनुयायी साधु रामद्वारों में रहते हैं और भिक्षा मांग कर अपनी उदरपूर्त्ति करते हैं । ये कपड़े नहीं पहिनते. लंगोट बांधे रहते हैं और ऊपर से कषाय चादर ओढ़ लेते हैं । पहले कोई-कोई साधु नंगे भी रहते थे जो परमहंस कहलाते थे । ये प्रायः कमंडल, लंगोट, चादर, माला और पोथी के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु अपने पास नहीं रखते और न किसी से रुपया-पैसा लेते हैं । ये विवाह नहीं करते । किसी उच्च वर्ण के लड़के को अपना चेला मूंड़ लेते हैं और जो चेला सबसे पहले मूंड़ा जाता है उसी का गुरु की गद्दी पर अधिकार होता है । बड़े चेले को छोटे चेले नमस्कार करते और गुरुवत मानते हैं । ये साधु रामद्वारों में रहते हैं जहां कथा बांचते तथा भजन गाते हैं । ये शाहपुरा को अपना गुरुद्वारा समझते हैं जहां प्रति वर्ष फाल्गुन सुदी १ से चैत्र वदि ६ तक मेला लगता है ।

(२४१) रामचरण—ये रामसनेहियों की शाहपुरा शाखा के प्रवर्त्तक थे और जयपुर के सोड़ा नामक गांव के रहनेवाले बीजावरगी महाजन थे । इनका जन्म सं० १७७६ में माघ शुक्ला चतुर्दशी शनिवार को हुआ था । इनके गुरु का नाम कृपाराम था जिनसे इन्होंने सं० १८०८ में दीक्षा ग्रहण की थी ।[65] । दीक्षा के पूर्व ये जयपुर दरबार की नौकरी में थे जैसा कि इन्होंने अपने 'अमृत-उपदेश' ग्रंथ में प्रकट किया है:

जन्म वैश्य घर पाइयो, पुनि सेवत राजद्वार ।
रामचरण जन ना मिलै, होता बहुत खवार ।।[66]

सं० १८२६ में ये जयपुर से भीलवाड़ा (मेवाड़) पहुंचे और कुछ समय-तक वहां रहकर फिर शाहपुरा गये । वहां के स्वामी रणसिंह ने इनका अच्छा स्वागत किया और इनकी गद्दी स्थापित करवाई ।

---

65. श्रीरामरचणजी की 'अणभैवाणी'; पृ० २ (भूमिका)

66. वही; पृ० ४५६

इनका देहान्त सं० १८५५ में शाहपुरा में हुआ था।[67] इनके २२५ शिष्य थे जिनमें से रामजन इनकी गद्दी पर बैठे।

रामचरण की 'अणभै वाणी' एक भारी ग्रंथ है। यह प्रकाशित भी हो चुका है। इसमें इनके फुटकर पद, दोहा आदि के अतिरिक्त निम्नलिखित २१ रचनाएँ संगृहीत हैं :—

(१) गुरुमहिमा (२) नामप्रताप (३) शब्दप्रकाश (४) अणभै-विलास (५) सुखविलास (६) अमृत-उपदेश (७) जिज्ञास बोध (८) विश्वासबोध (९) विश्रामबोध (१०) समतानिवास (११) रामरसायणबोध (१२) चितावणी (१३) मनखंडन (१४) गुरु-शिष्य-गोष्टी (१५) ठिगपारख्या (१६) जिदपारख्या (१७) पंडित संवाद (१८) लच्छ-अलच्छ जोग (१९) वेजुक्ति तिरस्कार (२०) काफरबोध और (२१) दृष्टान्तसागर।[68]

रामचरण की कविता बहुत सरल और स्वाभाविक है। इनकी भाषा प्रवाहयुक्त तथा विषयानुकूल है और उस पर राजस्थानी की पूर्ण छाया है। छंदोभंग इनकी कविता में कुछ विशेष दृष्टिगोचर होता है। इसके सिवाय विषय-वस्तु की पुनरावृत्ति भी उसमें बहुत हुई है। लेकिन उसमें शक्ति और सचाई दोनों विद्यमान हैं और उसके इन्हीं दो गुणों ने इनके पंथ को अभी तक जीवित रखा है।

(२४२) रामजन—ये रामचरण के पाटवी शिष्य थे और उनके बाद शाहपुरा की गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे। इनका रचना-काल सं० १८३९ है।[69] इनके बनाये 'रामपद्धति' और 'दृष्टान्तसागर की टीका' ये दो ग्रंथ मिलते हैं। इन्होंने फुटकर वाणियाँ भी लिखी थीं जिनकी संख्या १८००० बताई जाती है।

(२४३) जगन्नाथ—ये रामचरण के २२५ प्रधान शिष्यों में से थे। इनका 'ब्रह्म-समाधि-विलीनजोग' नाम का एक ग्रंथ मिलता है जो सं० १८५५ में रचा गया था।[70] इसमें रामचरणजी का जीवनचरित्र वर्णित है।

---

67. वही; पृ० ३ (भूमिका)
68. वही; पृ० १०७१
69. वही; पृ० १०६७
70. अठारामैं पचपन बरस, रवि चवदस वैसाख।
    ग्रंथ संपूरण जगन्नाथ, पुनि जानो सुदि पाख॥

—पद्य २७६

छंदों की यह एक छोटी पर उपयोगी रचना है। इसकी भाषा भी बहुत सरस और कोमल है।

खेड़ापा की शाखा हरिरामदास से निकली है। हरिरामदास का जन्म-स्थान सिहयल (बीकानेर) था और इन्होंने सं० १८०० में बीकानेर राज्य के दुलचासर गाँव में जैमलदास नाम के एक रामानंदी वैष्णव साधु से दीक्षा ली थी।[71] इनके एक शिष्य रामदास हुए जिन्होंने खेड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की। अतएव खेड़ापे के रामसनेही रामदास को अपना आदि गुरु, हरिरामदास को अपना आदि प्रवर्त्तक और जैमलदास को अपना आदि आचार्य मानते हैं। इनके अनुयायियों की संख्या जोधपुर-बीकानेर में अधिक पाई जाती है। रामदास स्वयं गृहस्थ थे और अपने चेलों को भी उन्होंने गृहस्थ-धर्म के पालन का आदेश दिया था। अपने शिष्यों के लिए किसी प्रकार का स्वरूप व बाना भी उन्होंने नियत नहीं किया। पर बाद में इनके बेटे दयालदास और पोते पूरणदास ने रामसनेहियों के विरक्त, विदेही, परमहंस, घरबारी और प्रवृत्ति ये पाँच भेद कर दिये जो आज तक चले आते हैं। शाहपुरा के रामसनेहियों की भाँति ये भी मूर्त्ति-पूजा नहीं करते। रामद्वारों में अपने गुरु का चित्र अवश्य रखते हैं पर यह प्रथा भी हरिरामदास से बहुत पीछे से चली है। खेड़ापे का गुरुद्वारा सिहयल है। इन दोनों स्थानों पर होली के दूसरे दिन भारी मेला लगता है और साधु लोग भजन-कीर्तन तथा 'पंचवाणी'[72] की कथा करते हैं।

(२४४) हरिरामदास—ये बीकानेर राज्यांतर्गत सिहयल नामक ग्राम के एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम भाग्य-चंद था।[73] ये बड़े कुशाग्रबुद्धि तथा मेधावी थे और बहुत थोड़ी आयु में वेदान्त, ज्योतिष आदि में पारंगत हो गये थे। इन्होंने सं० १८०० में दुलचासर ग्राम में आकर जैमलदास से दीक्षा ग्रहण की थी।[74] इनके योग-चमत्कार की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इन्होंने स्वरूपसिंह नामक एक निर्धन व्यक्ति को धनवान बना दिया था। इनका स्वर्गवास सं० १८३५ में हुआ था।[75] इनके सैकड़ों शिष्य-प्रशिष्य हुए

---

71. श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश, पृ० ५ (परिचय)
72. कबीर, दादू, हरिदास, रामदास और दयालदास की वाणी 'पंचवाणी' कहलाती है।
73. श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश, पृ० ४ (परिचय)
74. वही; पृ० ३९१
75. वही; पृ० ८

था[85] जिनसे इन्होंने सं० १७६६ में दीक्षा ली थी ।[86] गुरु-मंत्र ग्रहण करने के कुछ वर्ष पश्चात् दरियावजी जैतारण से रैण नामक गाँव में चले गये और वहाँ पर इन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की जो अभी तक विद्यमान है । जोधपुर के सिवा राजस्थान की दूसरी रियासतों में भी दरियावजी के रामसनेहियों की संख्या काफी है । इनका स्वर्गवास सं० १८०५ में हुआ था ।[87]

दरियावजी को हिंदी, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था और काव्य-रचना में भी ये निपुण थे । कहते हैं कि इन्होंने 'वाणी' नामक एक बहुत बड़ा ग्रंथ लिखा था जिसमें १०००० के लगभग पद, दोहा आदि थे । पर आजकल तो इनकी बहुत कम कविताएँ मिलती हैं । रामसनेहियों में यही एक ऐसे कवि हुए हैं जिनकी भाषा सुव्यवस्थित और रचना साहित्यिक कही जा सकती है ।

निरंजनी-पंथ

यह पंथ संत हरिदास से चला है । इसके अनुयायी निरंजन निराकार परब्रह्म की आराधना करते हैं जिसको वे आकाश की भाँति सब कहीं व्याप्त मानते हैं । इस पंथ के माननेवालों में घरबारी और निहंग दोनों पाये जाते हैं । घरबारी गृहस्थियों के से कपड़े पहिनते और रामानंदी तिलक लगाते हैं । निहंग खाकी रंग की गुदड़ी गले में डाले रहते हैं और भिक्षा माँगकर खाते हैं । कोई-कोई निरंजनी साधु गले में सेली भी बाँधते हैं । प्रारंभ में ये लोग मूर्त्ति-पूजा नहीं करते थे पर अब करने लग गये हैं । जोधपुर राज्य में डीडवाणे के पास गाढ़ा नामक एक छोटा-सा गाँव है । वहाँ प्रतिवर्ष फाल्गुन सुदी १ से १२ तक मेला भरता है । इस अवसर पर इस पंथ के अनुयायियों की भारी भीड़ लगती है जिनको हरिदास की गुदड़ी के दर्शन कराये जाते हैं । गाढ़ा निरंजनियों का मुख्य केन्द्र है । वहाँ इनके महंत और साधु रहते हैं ।

हरिदास के ५२ शिष्य थे जिनसे हरिदासोत, पूर्णदासोत, अमरदासोत, नारायणदासोत आदि कई थाँभे स्थापित हुए । उनमें से कुछ थाँभे अभी तक वर्तमान हैं ।

---

85. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज्य मारवाड़, सन् १८९१, पृ० २८८
86. श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश, पृ० ३९१
87. वही; पृ० ३९१

(२८८) हरिदास—ये जोधपुर राज्यान्तर्गत कापड़ोद गाँव में पैदा हुए थे।[88] इनके अनुयायी इनको सांखला शाखा के क्षत्रिय बतलाते हैं। परन्तु कुछ अन्य लोगों का कहना है कि ये बीदा राठौड़ थे। कोई कोई इनकी जाति जाट मानते हैं। ये ४५ वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे। कहते हैं कि एक बार दुर्भिक्ष पड़ जाने के कारण ये जंगल में साथियों के साथ जाकर एक यात्री को लूटने लगे। उस समय भगवान ने गुरु गोरख-स्वरूप में प्रकट होकर इन्हें डकैती करने से रोका और मंत्रोपदेश दिया। तब से इनके जीवन में परिवर्तन आ गया और ये घरबार छोड़-कर ईश्वर की अराधना में लीन रहने लगे। इनका गोलोकवास सं० १७०० में हुआ था।

हरिदास एक व्यक्तित्वसंपन्न महात्मा और जन्मसिद्ध कवि थे। इनके रचे निम्नलिखित नौ ग्रंथों का पता है:—

(१) भक्तविरदावली (२) भरथरी-संवाद (३) साखी (४) पद (५) नाममाला (६) नामनिरूपण (७) व्याहलो (८) जोगग्रंथ और (९) टोटरमल जोगग्रंथ।[89]

संत हरिदास की कविता का राजस्थान में बड़ा मान है। इनकी भाषा बहुत सीधी सादी और कविता ज्ञानवर्द्धक तथा मार्मिक है। इन्होंने प्रेम पर बड़ी सरस कविताएँ लिखी हैं। अध्यात्मवाद की दृष्टि से इनकी कविता गोरखनाथ की कविता से बहुत साम्य रखती है।

लालदासी-पंथ

इस पंथ के प्रवर्त्तक संत लालदास थे। इनके अनुयायियों में मेव जाति के लोग अधिक हैं जो अलवर और उसके पास के स्थानों में पाये जाते हैं। यह कबीर-पंथ से मिलता-जुलता पंथ है। इसमें कुछ विशेषताएँ दादूपंथ की भी पाई जाती है। इस पंथ के माननेवाले राम-नाम के जप एवं कीर्तन को बहुत प्रधानता देते हैं और परमात्मा को 'राम' ही कहते हैं।

(२८९) लालदास—ये अलवर राज्यान्तर्गत धोलीधूप गाँव-निवासी मेव थे। इनका जन्म सं० १५९७ में हुआ था।[90] ये लकड़हारे का काम करते थे। ये पढ़े लिखे न थे पर सत्संग के प्रभाव से ज्ञान, भक्ति, सदाचार संबंधी

88. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज्य मारवाड़, सन् १८९१, पृ० २८०
89. पुरोहित हरिनारायण; सुन्दर-ग्रंथावली, पृ० ९२ (जीवन-चरित्र)
90. परशुराम चतुर्वेदी; उत्तरी भारत की संत-परंपरा, पृ० ४०४

था[85] जिनसे इन्होंने सं० १७६९ में दीक्षा ली थी।[86] गुरु-मंत्र ग्रहण करने के कुछ वर्ष पश्चात् दरियावजी जैतारण से रैण नामक गाँव में चले गये और वहाँ पर इन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की जो अभी तक विद्यमान है। जोधपुर के सिवा राजस्थान की दूसरी रियासतों में भी दरियावजी के रामसनेहियों की संख्या काफी है। इनका स्वर्गवास सं० १८०५ में हुआ था।[87]

दरियावजी को हिंदी, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था और काव्य-रचना में भी ये निपुण थे। कहते हैं कि इन्होंने 'वाणी' नामक एक बहुत बड़ा ग्रंथ लिखा था जिसमें १०००० के लगभग पद, दोहा आदि थे। पर आजकल तो इनकी बहुत कम कविताएँ मिलती हैं। रामसनेहियों में यही एक ऐसे कवि हुए हैं जिनकी भाषा सुव्यवस्थित और रचना साहित्यिक कही जा सकती है।

निरंजनी-पंथ

यह पंथ संत हरिदास से चला है। इसके अनुयायी निरंजन निराकार परब्रह्म की आराधना करते हैं जिसको वे आकाश की भाँति सब कहीं व्याप्त मानते हैं। इस पंथ के माननेवालों में घरवारी और निहंग दोनों पाये जाते हैं। घरवारी गृहस्थियों के से कपड़े पहिनते और रामानंदी तिलक लगाते हैं। निहंग खाकी रंग की गुदड़ी गले में डाले रहते हैं और भिक्षा माँगकर खाते हैं। कोई-कोई निरंजनी साधु गले में सेली भी बाँधते हैं। प्रारंभ में ये लोग मूर्त्ति-पूजा नहीं करते थे पर अब करने लग गये हैं। जोधपुर राज्य में डीडवाणे के पास गाढ़ा नामक एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ प्रतिवर्ष फाल्गुन सुदी १ से १२ तक मेला भरता है। इस अवसर पर इस पंथ के अनुयायियों की भारी भीड़ लगती है जिनको हरिदास की गुदड़ी के दर्शन कराये जाते हैं। गाढ़ा निरंजनियों का मुख्य केन्द्र है। वहाँ इनके महंत और साधु रहते हैं।

हरिदास के ५२ शिष्य थे जिनसे हरिदासोत, पूर्णदासोत, अमरदासोत, नारायणदासोत आदि कई थाँभे स्थापित हुए। उनमें से कुछ थाँभे अभी तक वर्तमान हैं।

---

85. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज्य मारवाड़, सन् १८९१, पृ० २८८
86. श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश, पृ० ३९१
87. वही; पृ० ३९१

(२४८) हरिदास—ये जोधपुर राज्यान्तर्गत कापड़ोद गाँव में पैदा हुए थे।[88] इनके अनुयायी इनको सांखला शाखा के क्षत्रिय बतलाते हैं। परन्तु कुछ अन्य लोगों का कहना है कि ये बीदा राठौड़ थे। कोई कोई इनकी जाति जाट मानते हैं। ये ४५ वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे। कहते हैं कि एक बार दुर्भिक्ष पड़ जाने के कारण ये जंगल में साथियों के साथ जाकर एक यात्री को लूटने लगे। उस समय भगवान ने गुरु गोरख-स्वरूप में प्रकट होकर इन्हें डकैती करने से रोका और मंत्रोपदेश दिया। तब से इनके जीवन मे परिवर्तन आ गया और ये घरबार छोड़कर ईश्वर की अराधना में लीन रहने लगे। इनका गोलोकवास सं० १७०० में हुआ था।

हरिदास एक व्यक्तित्वसंपन्न महात्मा और जन्मसिद्ध कवि थे। इनके रचे निम्नलिखित नौ ग्रंथों का पता है:—

(१) भक्तविरदावली (२) भरथरी-संवाद (३) साखी (४) पद (५) नाममाला (६) नामनिरूपण (७) व्याहलो (८) जोगग्रंथ और (९) टोडरमल जोगग्रंथ।[89]

संत हरिदास की कविता का राजस्थान में बड़ा मान है। इनकी भाषा बहुत सीधी सादी और कविता ज्ञानवर्द्धक तथा मार्मिक है। इन्होंने प्रेम पर बड़ी सरस कविताएँ लिखी हैं। अध्यात्मवाद की दृष्टि से इनकी कविता गोरखनाथ की कविता से बहुत साम्य रखती है।

लालदासी-पंथ

इस पंथ के प्रवर्त्तक संत लालदास थे। इनके अनुयायियों में मेव जाति के लोग अधिक हैं जो अलवर और उसके पास के स्थानों में पाये जाते हैं। यह कबीर-पंथ से मिलता-जुलता पंथ है। इसमें कुछ विशेषताएँ दादूपंथ की भी पाई जाती हैं। इस पंथ के माननेवाले राम-नाम के जप एवं कीर्तन को बहुत प्रधानता देते हैं और परमात्मा को 'राम' ही कहते हैं।

(२४९) लालदास—ये अलवर राज्यान्तर्गत धौलीधूप गाँव-निवासी मेव थे। इनका जन्म सं० १५९७ में हुआ था।[90] ये लकड़हारे का काम करते थे। ये पढ़े लिखे न थे पर सत्संग के प्रभाव से ज्ञान, भक्ति, सदाचार संबंधी

---

88. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज्य मारवाड़, सन् १८९१, पृ० २८०
89. पुरोहित हरिनारायण; सुन्दर-ग्रंथावली, पृ० ९२ (जीवन-चरित्र)
90. परशुराम चतुर्वेदी; उत्तरी भारत की संत-परंपरा, पृ० ४०४

अनेक बातें सीख गये थे जिनका जनसाधारण में प्रचार किया करते थे। इन्होंने विवाह भी किया था। इनके एक पुत्र और एक कन्या हुई थी। ये सं० १७०६ में परलोक वासी हुए थे।[91] इनका शव नगला नामक गाँव में समाधिस्थ किया गया था। उस स्थान को इनके अनुयायी बहुत पवित्र मानते हैं।

संत लालदास काव्य-रचना भी करते थे। इनकी 'वाणी' के कुछ अंश इधर-उधर संग्रह-ग्रंथों में देखने में आते हैं। इन्होंने गेय पद अधिक लिखे हैं जो इनकी सूक्ष्म बुद्धि और गहन अनुभूति के परिचायक हैं।

फुटकर संत

(२५०) **संतदास**—ये स्वामी रामानंद की शिष्य-परंपरा में नारायणदास के चेले थे।[92] इनका जन्म मेवाड़ राज्य के दांतड़ा नामक गाँव में सं० १६८६ में हुआ था[93] और दीक्षा इनकी सं० १७४२ में हुई थी।[94] ये अच्छी गति के महात्मा और कुशल उपदेशक थे। इनका स्वर्गवास सं० १८०६ में हुआ था।[95] उस समय इनकी आयु १२० वर्ष की थी।

इनकी 'वाणी' मिलती है। इसको नवलराम नामक इनके एक शिष्य ने सं० १८३० में अंगबद्ध किया था।[96] इसमें दोहा, पद, रेखता आदि सब मिला-कर १४४३ छंद हैं। इनकी भाषा सीधी और भावना स्पष्ट है।

(२५१) **बालकराम**—ये संतदासोत साधु मीठाराम के शिष्य थे। नाभादास कृत भक्तमाल पर इनकी लिखी एक टीका उपलब्ध है जिसमें इन्होंने अपनी गुरु-परंपरा इस प्रकार बताई है :—

---

91. वही; पृ० ४०६
92. रामानंद–कृष्णदास पैहारी–अग्रदास–नारायणदास (बड़े)–प्रेमपठाजी–प्रेमभूराजी–वनखंडी रामदास–नारायणदास (छोटे)–संतदास।
93. श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश, पृ० ३६१
94. वही; पृ० ३६१
95. अठारासै षट वर्ष में, संत भये निरकार।
    बुध फागुन तिथि सप्तमी, वार सनीसर वार॥
    —श्रीरामचरणजी की वाणी, पृ० ६३
96. शाहपुरे सतसंग में, गुरु अग्या उर धार।
    नवलराम अंग बाँधिया, वाणी सोध विचार॥
    —श्रीरामचरणजी की वाणी, पृ० ६३

नारायण अंग धरा ईंदराय धतिराज
ताकी पद्धति में रामानुज प्रतिकास है।
तास पद्धति में रामानंद ता कौ पौत्र सिष्य
श्रीपैहारी की प्रनाली में भयौ संतदास है॥
ताही कौ बालकदास तास प्रेम जाको खेम
खेम कौ प्रह्लाददास मिष्टराम तास है।
मिष्टराम जू कौ सिष्य सौ बालकराम रची
टीका भक्तदाम-गुण-चित्रनी विलास है ॥[97]

'मिश्रबंधु-विनोद' में बालकराम का रचना काल सं० १८३३ बताया गया है जो[98] अशुद्ध है। वास्तव में इनका रचना काल सं० १९३२ है जैसा कि उपरोक्त टीका से प्रकट है :—

"भक्तदामचित्रनी सौं टीका अद्य मिध होत
संमत द्वि नव वर्ष त्रिग बिताइयै।[99]"

"संमत उगणीसी र बतीसा। चौदस भादू दीत को वासा"[100]

उल्लिखित भक्तदाम-गुण-चित्रनी टीका ब्रजभाषा की एक वृहत् रचना है। यह अभी तक अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। एक उदयपुर के सरस्वती भंडार में है और दूसरी यहां के बड़े रामद्वारे में। टीका यह कहने मात्र को है। वास्तव में यह एक स्वतंत्र रचना है। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में कबीरदास पर केवल एक छंद लिखा है। परंतु बालकराम ने १०८ छंदों में उनका जीवन-वृत्तान्त दिया है और उनके विषय की कतिपय नवीन बातों पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार अन्य सभी संतों का इसमें बड़े विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें दोहा, छप्पय, घनाक्षरी इत्यादि अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है पर प्रधानता चौपाई छन्द की है। इसकी भाषा अत्यंत सरस एवं प्रवाहयुक्त और वर्णन-शैली चित्रोपम है। पढ़ते-पढ़ते वर्ण्य विषय का चित्र आँखों के सामने आ जाता है। रचना का नमूना देखिये—

---

97. स० भं० उ० की हस्तलिखित प्रति, पत्र ४६४
98. पृ० ८१३
99. स० भं० उ० की हस्तलिखित प्रति, पत्र ४६६
100. वही; पत्र ४६७

तब मीराँ रणछौड़ सकासा । विदा हौन कूं अरिजि प्रकासा ।।
प्रभु में न्यून तिया तनधारी । पैं आई अब सरन तिहारी ।।६८।।
तजि पीहर सासुर गृह वासा । चहत तिहारी चरननि वासा ।।
उही तौ भक्ति हीन है देवा । वृथा पटै द्विज मौकूं लेवा ।।६९।।
राणा संग न मौहि सुहावहि । अब कैसे तुम मौहि पठावहि ।।
तजौ किधौं प्रभू राखौ मोही । अस कहि मीराँ दृग जल रोही ।।७०।।
प्रेम मगिन ताकूं प्रभु जानी । करी लीन्ह हरि देह समानी ।।
पुनि मीराँ कूं काहु न पाई । ऐसी हरि रति प्रगट दिखाई ।।७१।।[101]

(२५२) **संत मावजी**—ये डूंगरपुर राज्यान्तर्गत साबला नामक गाँव के रहनेवाले औदीच्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १७७१ में हुआ था।[102] इनके पिता एक कर्तव्यनिष्ठ और भगवद्भक्त ब्राह्मण थे। मावजी पर भी उनका प्रभाव पड़ा और ये बारह वर्ष की आयु में घर छोड़कर सोम और मही नदी के संगम पर एक गुफ़ा में तपस्या करने लगे। तपस्या के पश्चात् इन्होंने धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया। ये लोकसेवा और ईश-भक्ति का उपदेश देते थे। धीरे-धीरे इनके अनुयायी बढ़ने लगे और इनका एक पंथ-सा बन गया जिसके माननेवाले इस समय भी वागड़ प्रान्त में दस हजार के लगभग हैं। इनमें सुतार, छीपी आदि जातियों के लोग अधिक हैं। ये सभी गृहस्थ हैं। मावजी का देहान्त सं० १८०१ में हुआ था।[103]

मावजी बड़े ज्ञानी और योगी थे। ये थोड़ा पढ़-लिख भी लेते थे। इनकी भी 'वाणी' है जो चौपड़ा कहलाती है। यह अभी तक अमुद्रित है। इसमें इन्होंने ज्ञान-शिक्षा के अतिरिक्त अनेक भविष्यवाणियाँ की हैं। इसकी भाषा वागड़ी अथवा भीली भाषा से प्रभावित पिंगल है।

(२५३) **दीन दरवेश**—उदयपुर से १४ मील उत्तर दिशा में मेवाड़ के महाराणाओं के इष्टदेव श्रीएकलिंगजी का मंदिर है। जिस गाँव में यह मंदिर अवस्थित है उसे कैलाशपुरी कहते हैं। दीनजी इसी गाँव के रहनेवाले थे। ये जाति के लोहार थे। इनका जन्मकाल अज्ञात है। इनकी रचना से इनका निर्माण-काल सं० १८६३—८८ निश्चित होता है।

---

101. वही; पत्र ३५६
102. कल्याण, अगस्त १९३५, पृ० ८१७
103. वही; पृ० ८१८

मिश्रबंधु-विनोद में दीनजी को कांकरोली का निवासी लिखा है।[104] कुछ अन्य विद्वानों ने इनको पाटन अथवा रामपुर का निवासी बतलाया है। परंतु ये सब उनकी भ्रान्त धारणाएँ हैं। वास्तव में दीनजी कांकरोली के नहीं थे। कांकरोली में इनके गुरु श्री गिरधारी के रहते थे और इनका गाम रामपुर था। इस विषय में दीनजी ने एक स्थान पर स्पष्ट लिखा है—

गाम रामपुर गिरधारन गो ढूंढ़ूं देस दास-रमवासी।[105]

दीनजी एक योगी और चमत्कारी पुरुष थे। ये जात-पांत, छुआ-छूत आदि के घोर विरोधी थे और हिन्दू-मुसलमानों के भेदभाव को बुरा समझते थे। ये थे तो साधु पर अपनी रहन सहन और वेश-भूषा से पूरे रईस मालूम पड़ते थे। ये बढ़िया खाते, बढ़िया पहिनते और बढ़िया घोड़े पर सवार होकर घर से बाहर निकलते थे।

मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह (सं० १८३४—८४) दीनजी को बहुत आदर भाव से देखते थे। अतएव महाराणा भीमसिंह जब तक जीवित रहे दीनजी ने उदयपुर में निवास किया। परंतु बाद में कोटा चले गये। वहाँ एक दिन जब ये चंबल नदी में स्नान करने गये हुए थे पानी में डूबकर मर गये। यह घटना सं० १८९० के आसपास हुई थी।

ये बहुत लिखे-पढ़े न थे। अधिकतर इधर-उधर से सुन-सुनाकर ज्ञानोपार्जन करते थे। इन्होंने तीन हजार से कुछ ऊपर फुटकर छंद लिखे हैं। इनकी भाषा कुछ उखड़ी हुई और वाक्यावली अव्यवस्थित है। परंतु इनके भाव गंभीर और हृदय की सचाई को लिये हुए हैं।

(२५७) गुमानसिंह—ये मेवाड़ राज्य के बाठरड़ा ठिकाने के रावत बख्तावरसिंह के तीसरे पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८९७ में हुआ था। ये सारंगदेवोत शाखा के राजपूत थे। ये बड़े योगी एवं भक्त थे और कविता करने में निपुण थे। इनका देहान्त सं० १९७१ में हुआ था।

ये मेवाड़ी और ब्रजभाषा दोनों में रचना करते थे और अधिकतर आध्यात्मिक कविताएँ लिखते थे। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) मोक्षपंथ (२) मनोपाल्हादचंद्रिका (३) योगभानुप्रकाशिका (४) गीतासार (५) योगांग शतक (६) गुणबोधिनी (७) रत्नसार (८) तत्त्व-

---

104. पृ० ८६८ (चतुर्थ भाग)

105. दीनजी के काव्य-संग्रह की माला, जोधसिंह-पुस्तकालय, उदयपुर, की हस्तलिखित प्रति, पत्र १७९

बोध (९) रामरत्नमाला (१०) लययोगबत्तीसी (११) समयसार बावनी (१२) अद्वैतबावनी और (१३) राजनीति।

इनमें से दो-एक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, शेष अप्रकाशित हैं। इनकी रचना इस ढंग की है।

है प्रियवादित सील वहै नित बोलत सत्य सु अमृत बानी।
एक हि सत्य उचारि निखाल्स ना करि डारत मान की हानी॥
जो वह मिष्ट कहै सब ही दिन औगुन की तिहिं होय बढ़ानी।
है कहनो द्वय साथ गुमान जु मानहु दूध में मिश्री मिलानी॥

चतुर्थ अध्याय का परिशिष्ट

(२५५) मसकीनदास, नरेना। नि० का० सं० १६५०; र० वाणी; वि० दादूजी के पुत्र।

(२५६) टीलाजी, मेवाड़। नि० का० सं० १६५०; र० वाणी; वि० दादूजी के शिष्य।

(२५७) प्रयागदास, डीडवाणा। नि० का० सं० १६५०; र० वाणी; वि० दादूजी के शिष्य।

(२५८) मोहनदास, मारोठ। नि० का० सं० १६५०; ग्रं० (१) ब्रह्म-लीला और (२) शब्द; वि० दादूजी के शिष्य।

(२५९) जैमलजी जोगी, सांभर। नि० का० सं० १६५०, र० वाणी; वि० दादूजी के शिष्य।

(२६०) पूरणदास। नि० का० सं० १६५०; र० वाणी; वि० दादूजी के शिष्य।

(२६१) हरिसिंह, विद्याद; नि० का० सं० १६५०; र० वाणी; वि० दादूजी के शिष्य।

(२६२) माखूजी। नि० का० सं० १६५०; र० वाणी; वि० दादूजी के शिष्य।

(२६३) जैमलजी चौहाण, बौंली। नि० का० सं० १६५०; ग्रं० (१) वाणी (२) भक्त विरदावली और (३) रामरक्षा आदि; वि० दादूजी के शिष्य।

(२६४) दूजणदास, ईडवा। नि० का० सं० १६५०; र० वाणी; वि० दादूजी के शिष्य।

(२६५) तेजानंद, जोधपुर। नि० का० सं० १६५०; ग्रं० वाणी और षटप्रमोद-ग्रंथावली। वि० दादूजी के शिष्य।

(२६६) लालदास, सिरोही । ० का० सं० १६५०; र० वाणी; ० दादूजी के शिष्य ।

(२६७) मोहनदास, मेवाड़ । नि० का० सं० १६५०; ग्रं० आदिबोध ौर साधमहिमा नाममाला; वि० ादूजी के शिष्य ।

(२६८) चतरदास । नि० का० सं० १६६२; ग्रं० भागवत एकादश कंध का पद्यानुवाद; वि० दादूपंथी ंतदास के शिष्य ।

(२६९) कल्याणदास । नि० का० सं० १६६३; ग्रं० गोपीचंद-वैराग; वि० दादूपंथी रज्जबजी के शिष्य ।

(२७०) चैनजी । नि० का० सं० १७००; र० वाणी; वि० दादूपंथी नगोपाल के शिष्य ।

(२७१) जनगरीब । नि० का० सं० १७००; र० वाणी; वि० दादूपंथी ।

(२७२) प्रहलाददास । नि० का० सं० १७००; र० वाणी; वि० दादूपंथी बड़े सुंदरदास के शिष्य ।

(२७३) माधोदास । नि० का० सं० १७१०; ग्रं० जनरायलीला, मंदालसा आख्यान और कवित्त; वि० दादूपंथी जगजीवन के शिष्य ।

(२७४) दामोदरदास । नि० का० सं० १७१०; ग्रं० मार्कण्डेय पुराण भाषा; वि० दादूपंथी ।

(२७५) बालकराम । नि० का० सं० १७१०; र० कवित्त; वि० दादूपंथी छोटे सुन्दरदास के शिष्य ।

(२७६) दासजी । नि० का० सं० १७२०-३०; ग्रं० (१) गुणनाटक (२) पंथ-परीक्षा, (३) भक्त विरुदावली और (४) अजामेल चरित्र; वि० दादूपंथी लालदास के शिष्य ।

(२७७) छीतरजी । नि० का० सं० १७३०; र० कवित्त; वि० दादूपंथी रज्जबजी के शिष्य ।

(२७८) दयालदास । नि० का० सं० १७३४; ग्रं० नासकेत आख्यान; वि० दादूपंथी जगन्नाथ के शिष्य ।

(२७९) जैमलदास, बीकानेर । नि० का० सं० १७६०; र० अनुभव वाणी; वि० रामानंदी वैष्णव चरणदास के शिष्य ।

(२८०) नारायणदास । नि० का० सं० १८०६-५३; ग्रं० साखी, चेतावनी और प्राणपरचा; वि० रामसनेही ।

(२८१) परसराम । नि० का० सं० १८२४-९६; र० वाणी; वि० रामसनेही ।

(२८२) लालदास । नि० का०

सं० १८३५; ग्रं० नाममाला और चितावनी; वि० दादूपंथी ।

(२८३) हरदेवदास । नि० का० सं० १८३५-६८; ग्रं० करुणानिधान प्रश्नोत्तर और आत्मकृत; वि० रामसनेही ।

(२८४) जनगोपाल, शाहपुरा । नि० का० सं० १८५०; ग्रं० प्रहलाद चरित्र; वि० ये रामसनेही साधु रामचरण के शिष्य थे ।

(२८५) घाटमदास । नि० का० सं० १८५० के लगभग; र० फुटकर पद; वि० ये कोई रमते-फिरते साधु थे ।

(२८६) चतरदास । नि० का० सं० १८५७; ग्रं० राघवदास कृत भक्तमाल पर टीका; वि० दादूपंथी छोटे सुन्दरदास की शिष्य-परंपरा में थे ।

(२८७) हिरदेराम, सियाणा । नि० का० सं० १८६०; ग्रं० नाममाला; वि० दादूपंथी ।

(२८८) सहजराम । नि० का० सं० १८७५; ग्रं० सुरतिविलास । वि० दादूपंथी ।

(२८९) दूल्हैराम, शाहपुरा । मृ० सं० १८८५; र० फुटकर वाणी; वि० ये रामसनेही साधु रामजन के शिष्य थे ।

(२९०) पूरणदास । नि० का० सं० १८८५; ग्रं० जन्मलीला और चित्तइलोल; वि० रामसनेही ।

(२९१) चतरदास, शाहपुरा । मृ० सं० १८८८; र० फुटकर वाणी; वि० ये रामसनेही साधु दूल्हैराम के शिष्य थे ।

(२९२) आत्मविहारी । नि० का० सं० १८९०; ग्रं० गूढार्थ अष्टपदी; वि० दादूपंथी ।

(२९३) देवदास । नि० का० सं० १८९०; ग्रं० जम्बूसरप्रसंगवर्णन; वि० दादूपंथी ।

(२९४) रतनभजन । नि० का० सं० १८९०; ग्रं० छंदरत्नमाला; वि० दादूपंथी ।

(२९५) ध्यानदास । नि० का० सं० १८९०; ग्रं० सत्य हरिश्चन्द्र की कथा; वि० दादूपंथी ।

(२९६) चतरदास । नि० का० सं० १८९० के लगभग; र० फुटकर पद; वि० दादूपंथी ।

(२९७) चंपाराम । नि० का० सं० १८९६; ग्रं० क्षीरार्णव; वि० दादूपंथी ।

(२९८) मधुपदास । नि० का० सं० १८९७; ग्रं० नागरलता; वि० दादूपंथी ।

(२९९) निगमदास । नि० का० सं० १८९८; र० फुटकर पद; वि० दादूपंथी ।

(३००) हरिदास । नि० का० सं० १८९८; ग्रं० वाणी; वि० दादूपंथी ।

(३०१) लाल कवि, जयपुर । नि० का० सं० १८९८; ग्रं० विवेकरस; वि० विशेष वृत्त ज्ञात नहीं ।

(३०२) सेवगराम । नि० का० सं० १९००; र० अनुभव वाणी; वि० रामसनेही ।

(३०३) चंदनदास । जयपुर; ज० सं० १९०१; ग्रं० छंदोविद्‌मंडन; वि० दादूपंथी ।

(३०४) नारायणदास । नि० का० सं० १९३५; ग्रं० दादूचरित्र; वि० ये दादूपंथी जनगरीव की शिष्य-परंपरा में थे ।

(३०५) अर्जुनदास । नि० का० सं० १९४०; ग्रं० पूर्वजन्म और परची-सार; वि० रामसनेही ।

(३०६) अमृतनाथ, बीकानेर; नि० का० सं० १९७०; र० फुटकर पद; वि० नाथपंथी ।

पाँचवाँ अध्याय

आधुनिक काल (सं० १९००-२००९)

पिंगल साहित्य का आधुनिक काल सं० १९०० से प्रारंभ होता है। विषय-वस्तु की दृष्टि से इस काल के कवियों ने कोई विशेष नवीनता प्रदर्शित नहीं की। अधिकांश कवि प्रेम, भक्ति, शृंगार आदि मध्यकालीन विषयों पर ही लिखते रहे। कुछ सुधारवादी कवियों ने सामाजिक कुरीतियों तथा मदिरा, माँस, भंग, तमाखू, विदेशी वेशभूषा आदि की बुराइयों पर रचनाएँ कीं, पर वे स्थायित्व प्राप्त न कर सकीं। एक वार सुन लेने के बाद उनको दूसरी बार सुनने का उत्साह लोगों ने नहीं दिखाया। इनमें से जो रचानाएँ प्रकाशित हुई वे पोथियों ही में रह गईं; शिक्षित अथवा अशिक्षित वर्ग में से किसी को प्रभावित न कर सकीं।

इस काल में सब से बड़े कवि बूंदी के कविराजा सूरजमल मिश्रण हुए जिनको चारण लोग अपनी जाति का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। सूरजल एक प्रतिभासम्पन्न पुरुष थे। अपने समकालीन कवियों पर इनका उतना ही गहरा प्रभाव था जितना रवीन्द्रनाथ के जीवन-काल में रवीन्द्रनाथ का बंगाली कवियों पर रहा। रवीन्द्रनाथ की तरह सूरजमल की प्रखर प्रतिभा ने भी राजस्थान के कवियों की मौलिकता कुंठित करदी और उन्हें स्वतंत्र रूप से नहीं पनपने दिया। छोटे-मोटे सैकड़ों कवि सूरजमल की काव्य-धारा के प्रचंड प्रवाह में बह गये। सूरजमल की कविता इतनी भावपूर्ण, इतनी सजीव और इतनी सुन्दर होती थी कि कुछ कवियों ने तो इन्हीं के भावों को ला-लाकर अपनी रचनाओं में उतारना प्रारंभ किया और कुछ स्वतंत्र कविता करना छोड़ इनकी कविता को सुना-सुनाकर वाहवाही लूटने लगे। छोटे-छोटे कई सूरजमल उस समय पैदा हो गये थे। कवि-गोष्ठियों में, राज-दरबारों में, साहित्य-सभाओं में जहाँ देखो वहाँ सूरजमल की कीर्ति सुनाई पड़ती थी।

सूरजमल के पश्चात् व्रजभाषा-साहित्य-रचना की गति राजस्थान में मंद पड़ गई और उत्तरोत्तर मंद होती गई। इस गति-मंदता के दो मुख्य कारण थे—खड़ी बोली की उन्नति और राजस्थानी का पुनरुत्थान।

इस समय राजस्थान का कवि-समुदाय तीन भागों में बँटा हुआ है। पहला दल उन कवियों का है जिन्होंने स्कूल-कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त की

है। ये अधिकतर खड़ी बोली में लिखते हैं। और नवीन विषयों पर एवं नवीन छंदों में काव्य-रचना करते हैं। दूसरे दल में राजस्थानी भाषा के कवि हैं। इनके मुख्य विषय हैं, राजस्थान का प्राचीन गौरव और राजस्थान की वर्तमान राजनीतिक दुर्दशा। तीसरा दल ब्रजभाषा के कवियों का है। ये कवि दोहा, कवित्त, सवैया आदि प्राचीन छंदों का प्रयोग करते हैं और इनके विषय भी वही पुराने हैं। जैसे राम-कृष्ण की भक्ति, ऋतु-वर्णन, होरी, फाग आदि। ये कवि संख्या में कम हैं और इनके प्रशंसक भी अब थोड़े रह गये हैं। कवि-सम्मेलनों के रंग-मंच से तो प्रायः इनका निष्कासन हो गया है। लेकिन जहाँ तक काव्य-कला का संबंध है ये कवि उक्त दोनों दलों के कवियों की तुलना में पिछड़े हुए नहीं हैं, बल्कि उनसे बहुत आगे हैं। और इनका यही गुण ब्रजभाषा-काव्य को राजस्थान में अभी तक जीवित रखे हुए है, यद्यपि समय उसके पक्ष में नहीं है।

(३०७) सूरजमल—ये मिश्रण शाखा के चारण बूंदी के निवासी थे। इनका जन्म सं० १८७२ में हुआ था।[1] इनके पिता का नाम बदनजी और दादा का चंडीदान था।[2] ये दोनों बूंदी दरबार के बहुत प्रतिष्ठावान कवि थे। बदनजी को बूंदी के महराव राजा विष्णुसिंह ने रोसूंदा गाँव, लाखपसाव और कविराजा की पदवी प्रदान की थी।[3] सूरजमल के छः स्त्रियाँ थीं।[4] परंतु इनके कोई संतान नहीं हुई। इसलिये इन्होंने मुरारिदान को गोद लिया था। इनका देहान्त सं० १९२५ में हुआ था।[5]

सूरजमल षड्भाषा के पंडित तथा न्याय, योगशास्त्र, शालिहोत्र आदि अनेक विषयों के तलस्पर्शी विद्वान थे।[6] ये डिंगल और पिंगल दोनों में रचना करते थे। इनके बनाये पिंगल भाषा के तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—वंशभास्कर, बलवंतविलास और छंदोमयूख। कहा जाता है कि इन्होंने सतीरासो और धातुरूपावली नामक दो ग्रन्थ और भी रचे थे। परंतु ये ग्रन्थ देखने में नहीं आये।

---

1. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ६३४
2. मुरारिदान; डिंगल-कोश, पृ० १६
3. वंशभास्कर; पृ० ३६
4. वही; पृ० ४०
5. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० १११
6. मुरारिदान; डिंगल-कोश, पृ० १६

सूरजमल के उपरोक्त तीनों ग्रन्थ पिंगल अथवा ब्रजभाषा में हैं। परंतु इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा नहीं है। उस पर राजस्थानी का भी कुछ प्रभाव पाया जाता है। इनकी भाषा कठिन बहुत है। सूरजमल ने कहीं-कहीं अपने निज के गढ़े हुए शब्द रख दिये हैं और कहीं-कहीं ऐसे क्लिष्ट एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है कि एक साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति के लिये इनके ग्रन्थों को समझना तो दूर रहा उनको हाथ में लेने का साहस ही कम होता है। इनकी कठिन भाषा का नमूना देखिये:—

> वितंड वाटिकान दंत हस्ति दंत उप्पारें।
> फिरें सुकुम्भ कोह लेप लांडु घंट निक्करें॥
> कटंत सुंडि कक्करी प्रवृत्ति पाथ पीन के
> किलास नास ईपिकारु आलु अंगि कीन के॥ २५॥
> कटिल्ल कर्णिकावली भटा हृदावली भये।
> अरिष्ठ के अपष्ठ वृन्द वलोम कंद उन्नये॥
> बनै अरी पलास कान अंदु नाग वल्लरी।
> कलेजु पीलु कर्णिका कसेरु तोरई करी[7]॥ २६॥

ये वीर रस की कविता लिखने में सिद्धहस्त थे। इनके जैसी वीर रस की सुन्दर कविता करनेवाला कवि हिंदी में कोई दूसरा नहीं हुआ। हिंदी में भूषण वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। वास्तव में भूषण की कविता बहुत उत्तम कोटि की है और वह अपने युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती है। परंतु उसमें अधिकतर काव्य के कला-पक्ष का निर्वाह हुआ है। उसका भाव-पक्ष बहुत निर्बल है। लेकिन सूरजमल की कविता में इन दोनों की सुन्दर योजना हुई है। इन्होंने वीर-वीरांगनाओं की मनोदशाओं का भाव-प्रधान वर्णन भी किया है और उनके युद्ध-पराक्रम आतंक आदि का कलात्मक वर्णन भी। विशेषकर रणभूमि की विकरालता, युद्ध की भयंकरता और सैन्य समूह की हाय-हत्या का वर्णन इनका ऐसा मार्मिक, सजीव और स्वाभाविक हुआ है कि पढ़कर दिल दहल जाता है।

(३०८) जीवनलाल—ये बूंदी-निवासी नागर ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८७० में हुआ था।[8] इनके पिता का नाम तुलाराम था। जीवनलाल बूंदी के महाराव राजा रामसिंह के प्रीतिपात्र थे। कई वर्षों तक बूंदी के प्रधान

---

7. उमेदसिंह-चरित्र, पृ० ३१३
8. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० १०२४

मंत्री रहे और अपनी कार्य-कुशलता तथा ईमानदारी से राज्य को बहुत लाभ पहुँचाया। सं० १९१४ के गदर में इन्होंने बूंदी राज्य का बहुत चतुराई से प्रबंध किया जिससे प्रसन्न होकर उक्त महाराव राजा ने इन्हें ताजीम, कटार, हाथी आदि प्रदान कर गौरवान्वित किया।[9] इनका देहान्त सं० १९२६ में हुआ।[10]

ये संस्कृत, हिंदी तथा फ़ारसी के प्रौढ़ विद्वान थें। सोलह वर्ष की अवस्था में इन्होंने बारह हजार श्लोकों का 'कृष्णखंड' नामक एक ग्रंथ बनाया था। इसके बाद इन्होंने संस्कृत-हिंदी के सात ग्रंथ और भी रचे थे। उपाहरण, दुर्गाचरित्र, भागवत भाषा, रामायण, गंगाशतक, अवतारमाला और संहिता-भाष्य।[11]

इनकी रचना में भक्ति तथा शृंगार की प्रधानता है। भाषा सरल एवं कविता रोचक और मधुर है।

(३०९) बख्तावरजी—ये जाति के राव थे। इनका जन्म मेवाड़ राज्य के बसी नामक गाँव में सं० १८७० के लगभग हुआ था[12]। इनके पिता का नाम सुखराम था। ये जब बालक थे तब इनके पिता की मृत्यु हो गई थी। इसलिए बसी के ठाकुर अर्जुनसिंह ने इनको पढ़ा-लिखाकर होशियार किया था। ये सं० १९०९ में पहली बार उदयपुर आये थे। उस समय यहाँ महाराणा स्वरूप सिंह राज्य करते थे। उन्होंने इनको अपने पास रख लिया और मिहारी तथा डाँगरी नामक दो गाँव, पाँव में सोना, बैठक और रहने के लिये मकान देकर इनका मान बढ़ाया।[13] महाराणा स्वरूपसिंह के बाद के तीन महाराणाओं के शासन समय में भी इनकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् बनी रही। इनकी मृत्यु सं० १९५१ में हुई थी।[14] उदयपुर के राजकीय दग्ध-स्थान महासतियों में महाराणा अमरसिंह (प्रथम) की छतरी के सामने इनका भी स्मारक बना हुआ है।

ये ब्रजभाषा और राजस्थानी दोनों में कविता करते थे। इनके बनाये ब्रजभाषा के ग्रंथों के नाम ये हैं—

---

9. वही; पृ० १०२५
10. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला. पृ० ७२
11. मिश्रबंधु-विनोद पृ० १०८४
12. केहरप्रकाश, पृ० १
13. वही; पृ० २
14. वही; पृ० ३

(१) रसोत्पत्ति (२) स्वरूप-यश-प्रकाश (३) शंभु-यश-प्रकाश (४) सज्जन-यश-प्रकाश (५) फतह-यश-प्रकाश (६) सज्जन-चित्र-चंद्रिका (७) संचार्णव (८) अन्योक्ति-प्रकाश (९) सामंत-यश-प्रकाश और (१०) राग-रागिनियों की पुस्तक।[15]

बख़्तावरजी की कविता अत्यन्त मधुर, सानुप्रास तथा सरस है। वर्णन सौन्दर्य्य भी उसमें यथेष्ट है। इन्होंने दीनदयाल गिरि की भाँति अन्योक्तियाँ भी कही हैं जिनमें बड़ी मार्मिकता और स्वाभाविकता पाई जाती है।

(३१०) गोपाल—ये जयपुर राज्य के उदयपुरा गाँव के निवासी कविया शाखा के चारण थे। इनका जन्म सं० १८७२ के आसपास हुआ था।[16] इनके पिता का नाम खुमाण और दादा का नाम ज्ञानजी था।[17] ये सीकर के राव राजा माधोसिंह के आश्रित थे।[18] इनकी मृत्यु सं० १९४२ में हुई थी।[19]

ये पिंगल भाषा के उत्कृष्ट कवि और इतिहास के प्रौढ़ विद्वान थे। विशेषकर जयपुर राज्य के इतिहास का इनको भारी ज्ञान था। इनके बनाये तीन ग्रंथ मिलते हैं—कृष्णविलास, लावारासी और शिखर-वंशोत्पत्ति। य तीनों इतिहास-विषयक पद्यात्मक रचनाएँ हैं। इनकी भाषा में ढूँढाड़ी बोली का मेल पाया जाता है जो स्वाभाविक है। पर इन तीनों की रचना-शैली समान रूप से सजीव और चमत्कारपूर्ण है। इनकी रचना का नमूना देखिये—

फैलि रह्यौ एक सो प्रकास भुवमंडल में
कंज कविराजन कै आनंद घनेरो है।
कहत गुपालदान वाकौ सठौर ताप
विप्रन के मंदिर वचाय ताप तेरो है॥
केते जग मानत न मांनत है वाहि केते
तेरो सब ही के सीस आतप घनेरो है।

15. वही; पृ० ४
16. पुरोहित हरिनारायण; शिखर-वंशोत्पत्ति, पृ० ५।
17. वही; पृ० २।
18. वही; पृ० ७।
19. वही; पृ० ५।

भान को उजेरों दिन मान में पिछान्यौ जात
माधौ भान तेरो निसि-वासर उजेरो है ।।[20]

(३११) प्रतापकुंवरि बाई—इनका जन्म सं० १८७३ के लगभग जोधपुर राज्य के जाखण ग्राम के एक सुप्रसिद्ध भाटी परिवार में हुआ था ।[21] इनके पिता का नाम गोयंददास था ।[22] सोलह वर्ष की उम्र में इनका विवाह जोधपुर के महाराजा मानसिंह के साथ हुआ । वैसे ईश्वर-भक्ति की ओर इनका झुकाव बाल्यावस्था ही से था, पर पति की मृत्यु (सं० १९००) के बाद से इनका मन सांसारिक कार्यों से बिलकुल उचट गया और अपना अधिक समय भगवद्-भजन और और पूजा-पाठ में व्यतीत करने लगीं । इनकी रहन-सहन सादी और प्रकृति सरल थी । राज्य की ओर से इन्हें कई गांव मिले हुए थे जिनकी आय का अधिकांश ये दान-पुण्य तथा साधु-सेवा में खर्च किया करती थीं । कवियों, विद्वानों और चारण-भाटों को भी इन्होंने प्रचुर धन-दान दिया । इनका देहान्त सं० १९४९ में हुआ था ।[23]

प्रतापकुँवरि बाई ने कुल मिलाकर १५ ग्रन्थों का निर्माण किया जिनके नाम ये हैं—

(१) ज्ञानसागर (२) ज्ञानप्रकाश (३) प्रतापपच्चीसी (४) प्रेमसागर (५) रामचंद्रनाममहिमा (६) रामगुणसागर (७) रघुवरस्नेहलीला (८) रामप्रेम सुखसागर (९) रामसुजस पच्चीसी (१०) रघुनाथजी के कवित्त (११) भजन पद हरिजस (१२) प्रतापविनय (१३) रामचंद्रविनय (१४) हरिजस-गायन और (१५) पत्रिका ।[24]

इनकी भाषा में मँजे हुए और प्रतिदिन उपयोग में आनेवाले उर्दू-फारसी के शब्द स्वतंत्रता के साथ प्रयुक्त हुए हैं । कविता इनकी राम-भक्ति-पूर्ण और प्रसाद गुण से ओतप्रोत है ।

(३१२) गणेशपुरी—ये पदमजी चारण के पुत्र थे और सं० १८८३ में जोधपुर राज्य के चारवास गाँव में पैदा हुए थे ।[25] इनका जन्म-नाम गुप्तजी

20, वही; पृ० ११९ ।
21. मुंशी देवीप्रसाद; महिलामृदुवाणी, पृ० ३७
22. वही; पृ० ३८
23. वही; पृ० २
24. वही; पृ० ४६
25. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० १११२

था। प्रसिद्धि है कि 'वंशभास्कर' के रचयिता कविराजा सूरजमल का नाम सुनकर ये उनसे मिलने के लिये एक बार बूंदी गये। जिस समय ये उनके घर पहुँचे उस समय उनका एक नौकर द्वार पर बैठा हुआ था। उसने जाकर सूरजमल को सूचना दी कि एक चारण दरवाजे पर खड़ा है और आपसे मिलना चाहता है। सूरजमल अपढ़ व्यक्तियों से प्रायः कम मिलते थे। उन्होंने नौकर से कहा-'जाकर पूछो कि वह पढ़ा हुआ है या नहीं'। नौकर लपका हुआ बाहर आया और वही प्रश्न गुप्तजी से किया। सुनकर वे सुन्न रह गये। कुछ क्षण तक प्रस्तर-मूर्ति की तरह खड़े रहे। फिर गर्दन हिलाकर बोले-'नहीं'। इस 'नहीं' की ध्वनि अंदर कविराजा के कानों में पड़ी। वहीं से चिल्लाकर उन्होंने कहा-'सूरजमल अपढ़ चारण का मुंह देखना नहीं चाहता। तुम यहाँ से चले जाओ'। ये शब्द गुप्तजी को घाव कर गये। उन्हें लज्जा भी आई। फौरन वहाँ से लौट पड़े। यह घटना उस समय की है जब इनकी उम्र २७ वर्ष की थी। यहीं से इनके जीवन का नया अध्याय शुरु हुआ। ये साधु हो गए और अपना नाम बदलकर गणेशपुरी रख लिया। फिर काशी पहुँचे और लगभग दस वर्ष तक वहाँ रह कर हिन्दी-संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया।

काशी से लौटने के पश्चात् गणेशपुरी कुछ वर्षों तक राजस्थान में इधर-उधर घूमते रहे और अंत में मेवाड़ के गुणग्राही महाराणा सज्जनसिंह के आग्रह से मेवाड़ को स्थायी रूप से अपना निवास-स्थान बना लिया। गणेशपुरी एक सुयोग्य साहित्य-सेवी और काव्य-कुशल व्यक्ति थे। इनके संपर्क से महाराणा सज्जनसिंह भी अच्छी कविता करने लग गए थे। संस्कृत, व्रजभाषा एवं डिंगल का उच्चारण गणेशपुरी का बहुत शुद्ध तथा स्पष्ट होता था और कविता पढ़ने का ढंग ऐसा प्रभावशाली होता था कि सुननेवाले झूमने लग जाते थे। साधारण कोटि की कविता भी जब इनकी जबान से निकलती तब उच्च कोटि की प्रतीत होती थी।

इनके रचे फुटकर कवित्त-सवैये और 'वीरविनोद' नामक एक ग्रंथ राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है। वीर-विनोद महाभारत के कर्ण-पर्व का पद्यानुवाद है। अनुवाद में मौलिकता, भावों की स्पष्टता और शब्द-योजना के सौष्ठव का अच्छा आनंद मिलता है पर क्लिष्ट शब्दों की बहुलता के कारण प्रसाद गुण को कहीं-कहीं बड़ा आघात पहुँचा है। इनकी फुटकर कविताएँ भी बड़ी जोरदार, चमत्कारपूर्ण एंव मार्मिक बन पड़ी हैं पर प्रसाद की कमी इनमें भी है और शायद यही कारण है कि काव्य-कला-कलित होते हुए

भी इनका इतना प्रचार नहीं है जितना होना चाहिए। वास्तविक बात यह है कि गणेशपुरी की कविता के पीछे चेष्टा है; वह उनके हृदय की अनुभूति नहीं, मस्तिष्क की उपज है। अतः उनके भाव तक पहुँचने के लिए पाठक को भी काफी मानसिक श्रम करना पड़ता है।

(२१.३) गुलावजी—ये बूंदी के दरबारी कवि थे। इनका जन्म सं० १८८७ में अलवर राज्यान्तर्गत राजगढ़ में हुआ था।[26] जाति के राव थे। जब ये ४१ वर्ष के थे तब अलवर से बूंदी चले गये और आजीवन वहीं रहे। बूंदी के महाराव राजा रामसिंह ने इन्हें दो गांव प्रदान किये थे और दुशाला, हाथी ताजीम इत्यादि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। ये बूंदी स्टेट कौंसिल तथा वॉल्टर कृत राजपूत-हितकारिणी सभा के सदस्य थे और महकमा रजिस्टरी के भी हाकिम थे। इनका देहान्त सं० १९५८ में हुआ था।

गुलावजी सिद्धहस्त कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। इनके संसर्ग से कई लोग अच्छी कविता करना सीख गये थे, जिनमें बिश्दसिंह और चंद्रकला बाई के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी कविताएँ सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में छपा करती थीं जिससे राजस्थान के बाहर के लोग भी इन्हें जानते थे। कानपुर की 'रसिक-सभा' ने इन्हें 'साहित्य-भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था।[27]

इनका ब्रजभाषा और डिंगल दोनों भाषाओं पर समतुल्य अधिकार था। परन्तु अधिकतर ये ब्रजभाषा में लिखा करते थे। इनके रचे ग्रंथों के के नाम ये हैं—

(१) रुद्राष्टक (२) रामाष्टक (३) गंगाष्टक (४) बालाष्टक (५) पावसपच्चीसी (६) प्रश्नपच्चीसी (७) रसपच्चीसी (८) समस्या पच्चीसी (९) गुलावकोष (१०) नामचंद्रिका (११) नामसिंधु कोष (१२) व्यंग्यार्थ चंद्रिका (१३) वृहत् व्यंग्यार्थ चंद्रिका (१४) भूषण चंद्रिका (१५) ललित कौमुदी (१६) नीतिसिंधु (१७) नीति मंजरी (१८) नीतिचन्द्र (१९) काव्य-नियम (२०) वनिता-भूषण (२१) वृहत् वनिताभूषण (२२) चिंता-तंत्र (२३) मूर्ख-शतक (२४) ध्यान रूप सवतिका बद्ध कृष्णचरित्र (२५) आदित्यहृदय (२६) कृष्णलीला (२७) रामलीला (२८) सुलोचना लीला (२९) विभीषण

---

26. राजस्थान के हिन्दी-साहित्यकार, पृ० २९।

27. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ८७।

लीला (३०) दुर्गास्तुति (३१) लक्षण कौमुदी (३२) कृष्णचरित्र (३३) शारदाष्टक और (३४) कृष्णचरित्र सूची ।[28]

गुलावजी की रचना भाषा और कविता दोनों ही दृष्टियों से प्रशंसनीय है । इनकी भाषा बहुत सरल, कोमल और विशुद्ध ब्रजभाषा है । कविता कर्णप्रिय, सुरुचिपूर्ण और प्रभावोत्पादक है ।

(३१४) मुरारिदान—ये बूंदी के सुप्रसिद्ध कवि सूरजमल के दत्तक पुत्र थे ।[29] इनका जन्म सं० १८९५ में और देहान्त सं० १९६४ में हुआ था ।[30] अपने पिता सूरजमल की तरह ये भी षड्भाषा-प्रवीण और प्रतिभावान कवि थे । 'वंशभास्कर' लिखते समय जब सूरजमल ने रावराजा रामसिंह के गुण-दोषों का विवेचन करना प्रारम्भ किया तब रावराजा उनसे सहमत न हुए और विवश होकर उन्हें अपना ग्रंथ अधूरा छोड़ना पड़ा । इसे सूरजमल की मृत्यु के बाद मुरारिदान ने पूरा किया । इनके अतिरिक्त इन्होंने दो ग्रंथ और भी बनाए थे, डिंगल-कोष और वंशसमुच्चय । ये डिंगल और पिंगल दोनों में रचना करते थे । कविता इनकी गम्भीर और सानुप्रास होती थी ।

(३१५) विड़दसिंह—ये चौहाण राजपूत अलवर राज्य के किशनपुर गाँव के जागीरदार थे । इनका जन्म सं० १८९७ में हुआ था ।[31] कविता करना इन्होंने बूंदी के राव गुलाबजी से सीखा था । ये बहुत अच्छे कवि एवं गुणग्राही पुरुष थे । इनके यहाँ कवि-कोविदों का जमघट लगा रहता था । ग्रंथ तो इन्होंने कोई नहीं लिखा पर फुटकर कवित्त, सवैये सैकड़ों की संख्या में रचे हैं । कविता में ये अपना नाम 'माधव' लिखा करते थे । इनकी कविता शृंगार रस प्रधान है और उसमें कला-पक्ष का निर्वाह खूब हुआ है ।

(३१६) ऊमरदान—ये जोधपुर राज्य के ढाढरवाड़ा ग्राम में सं० १९०८ में पैदा हुए थे[32] और जाति के चारण थे । इनके पिता का नाम बख्शीराम और दादा का मेघराज था । ये तीन भाई थे ; नवलदान, ऊमरदान और शोभादान । बाल्यावस्था में माता-पिता का देहान्त हो जाने से घर पर इनकी ठीक तरह से देख-रेख करनेवाला कोई नहीं रह गया

28. वही; पृ० ८८ ।

29. मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० ११३० ।

30. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ११९ ।

31. वही; पृ०८ ।

32. ऊमर-काव्य, पृ० २९ ।

था जिससे ये बहुत उद्दंड हो गये और मोजीराम नामक एक रामसनेही साधु के बहकाने में आकर इन्होंने रामसनेही पंथ को अंगीकार कर लिया। कोई १६ वर्ष की उम्र तक ये रामसनेहियों की मंडली में रहे[33]। बाद में उनका साथ छोड़कर वापस गृहस्थ बन गये और रामसनेही पंथ का छिद्रोद्घाटन करने लगे।

ऊमरदान बहुत सरल प्रकृति के पुरुष थे और वेश-भूषा से पूरे किसान दिखाई पड़ते थे। ये खूब प्रसन्न रहते और सब से हँसकर मिलते-जुलते थे। यदि कोई इन्हें पूछता कि तुम्हारा मकान कहाँ है तो ये कहते—

दुकान है दुकान मां, मकान ना मकान मां।
उठाय लट्ठ अट्ठ जाम, में फिरां घमां-घमां।।

ऊमरदान अच्छे कवि थे। इसलिये जोधपुर, उदयपुर आदि राज्यों के राज-दरबारों में इनका अच्छा आदर होता था। इनका देहान्त सं० १९६० में हुआ था[34]।

इनकी रचनाओं का संग्रह 'ऊमर-काव्य' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसमें ४० से अधिक फुटकर प्रसंग हैं। बाल्यावस्था में जब मनुष्य के संस्कार बनते और दृढ़ होते हैं तब ऊमरदान रामसनेहियों के साथ रहे। इसलिए इनकी भाषा, रचना-शैली और विषय-सामग्री सभी पर रामसनेही पंथ का रंग है। रचना इनकी बुरी नहीं है, पर थोड़ी-सी फूहड़ता उसमें अवश्य है। और यही कारण है कि शिक्षित समुदाय की अपेक्षा निम्न वर्ग के लोगों में उसका प्रचार अधिक है।

(३१७) फतहकरण—ये नाथूराम चारण के पुत्र सं० १९०९ में पैदा हुए थे।[35] इनका जन्म-स्थान जोधपुर राज्य का उजाला गांव था जहाँ से मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह (सं० १९३१–४१) के समय में ये उदयपुर चले आये थे।[36] ये बड़े विद्या-व्यसनी, सभाचतुर और काव्य-कला में निपुण थे। इन गुणों के कारण ये महाराणा सज्जसिंह के बड़े कृपा-पात्र हो गये थे और उनके दाहिने हाथ समझे जाते थे। इनका देहान्त सं० १९७८ में हुआ था।[37]

---

33. वही, पृ० २०।
34. वही, पृ० २६।
35. पत्र प्रभाकर, पृ० २
36. वही; पृ० २
37. वही; पृ० २

इन्होंने केवल एक ही ग्रन्थ लिखा जिसका नाम 'पत्रप्रभाकर' है। इसमें मेवाड़ के इतिहास और मेवाड़ की प्राकृतिक शोभा का वर्णन है। इसकी छंद-संख्या ११०८ है। इसमें रस, अलंकार आदि काव्योचित गुणों का अच्छा सन्निवेश हुआ है। फतहकरण ने कविराजा सूरजमल की क्लिष्ट भाषा-शैली का अनुकरण किया है। अतएव कविता इनकी भी कुछ कठिन है। यथा—

कहूं क्रकचच्छद औ थल कंज, कहूं सुम जाति रु कुन्द करञ्ज।
मयूर सनृत्य रु कुक्कुट मत्त, तथा रुत कोकिल व्है अविरत्त॥
सभृंग पिकीरुत वाद्य सु गीति, नभस्वत वेगन में वहु रीति।
मनो करतैं करसाख मिलाय, रहे इत पादप नृत्य रचाय॥
मनो घनस्याम मृगत्वच मान, सरित् उतरै उपवीत्त समान।
दरीमुख मारुत ध्वंरुत दच्छ, पढ़े मनु पर्वत वेद प्रतच्छ॥
द्विरेफन की मनु तंत्रि विधाय, प्लवंगम घुंकृति ताल लगाय।
पिकीरुत सुस्वर राग प्रगीत सुनावत ज्यां गिरिशास्त्र सँगीत[38]॥

(३१८) बालाबख्श—ये पालावत शाखा के चारण[39] जयपुर राज्य के हणूंतिया गाँव के निवासी थे। इनका जन्म सं० १६१२ में हुआ था[40]। इनके पिता का नाम निरसंघदास और पितामह का जसराज था। ये चार भाई थे—बालाबख्श, शिवबख्स, डालजी और सालजी। ये चारों कवि थे। बालाबख्श की प्रारंभिक शिक्षा घर ही पर हुई। फिर दादूपंथी खेमदास से धर्म-ग्रंथ एवं रीति-ग्रंथ पढ़े और छन्द अलंकार आदि काव्यांगों का ज्ञान प्राप्त किया।[41] ये बड़े मिलनसार एवं व्यवहार-कुशल चारण थे और राजपूत सरदारों को रिझाना जानते थे। इसलिए कई ठिकानों से इनको अच्छी भूसंपत्ति प्राप्त हुई। इनका देहान्त सं० १६८८ में अपने जन्म-स्थान हणूंतिया में हुआ था।[42]

---

38. वही; पृ० १३
39. पु० हरिनारायण; स्वर्गीय बारहठ बालाबख्श पालावत, पृ० ५
40. वही; पृ० ६
41. वही; पृ० ११
42. वही; पृ० १८

बारहठजी एक प्रतिष्ठावान साहित्यकार और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान थे। विशेषकर जयपुर राज्य के इतिहास का इनको अच्छा ज्ञान था। ये दानी भी थे। इन्होंने नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, को सात हजार रुपयों का दान दिया था जिसके ब्याज से 'बालाबक्श राजपूत-चारण पुस्तकमाला' में राजपूत-चारणों के रचे हुए इतिहास व कविता विषयक ग्रंथों का प्रकाशन होता है।[43]

ये डिंगल और पिंगल दोनों में कविता करते थे। इनके रचे ग्रंथों के नाम नीचे दिये जाते हैं जिनमें दो-एक को छोड़कर शेष सभी अप्रकाशित हैं :—

(१) अश्वविधान-सूचना, (२) भूपाल-सुजस-वर्णन (३) आसीस-विगतावली (४) आसीस-अष्टक (५) आसीस-पच्चीसी (६) षट्शास्त्र-सारांश (७) खंडेला पाना खुर्द की वंशावली (८) शस्त्रविधान-सूचना (९) शस्त्रप्रकाश (१०) शास्त्रसार (११) संध्योपासना-उत्थानिका (१२) क्षत्रिय-शिक्षा-पंचाशिका (१३) छंद देवियों के (१४) छंद राजाओं के (१५) राव राजा माधवसिंहजी सीकरवालों का स्मारक काव्य (१६) मानमहोत्सवमहिमा (१७) मरसिया ठाकुर जोरावरसिंहजी का (१८) शोक-शतक और (१९) कछावों की खांपें और ठिकाने[44]।

इनके अतिरिक्त फुटकर गीत, कवित्त आदि भी हैं।

इन्होंने अपनी रचना में प्राचीन चारण काव्य-परिपाटी का अनुकरण किया है और प्रशंसात्मक कविता अधिक लिखी है। इनकी कविता में उच्च कोटि के साहित्यिक गुण पाये जाते हैं। भाषा परिपक्व, परिमार्जित और भावपूर्ण है।

(३१९) ईश्वरीसिंह—ये कृपाराम के पुत्र और बिड़दसिंह उपनाम माधव कवि के छोटे भाई थे। अलवर राज्य का किशनपुर गाँव इनकी जन्म-भूमि थी।[45] इनका जन्म सं० १९१३ में[46] और देहान्त सं० १९७१ में हुआ

---

43. वही; पृ० २।

44. वही; पृ० १७

45. अलवर तें पश्चिम तरफ, पंच कोस परमान।
 ग्राम किसनपुर नाम मम, जन्म-भूमि को थान ।।
 तीन ग्राम जागीर के, तेरह हय के मांहि।
 अलवर पति की ओर तें, लिखित पटा विच आंहि ।।
 पुनि डेडरिया खांप मे, आल्हणोत चौहान।
 नाम ईश्वरीसिंह नित, कविजन दास निदान ।।

46. मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० १२४९

था।[47] ये कट्टर आर्यसमाजी और ब्रजभाषा के मँजे हुए कवि थे। इनके रचे सात ग्रंथों का पता है जो अभी तक अप्रकाशित हैं। उनके नाम ये हैं—

(१) अज्ञान-नाशक-स्वप्न (२) विनयाष्टक (३) ज्ञानमंगल (४) कलि युगाष्टक (५) अहिंसापच्चीसी (६) प्रार्थनापच्चीसी और (७) बारहमासी।

इन्होंने शृंगार और शान्त रस की कविताएँ अधिक लिखी हैं। रचना मार्मिक है।

(३२०) अम्बिकादत्त व्यास—ये गौड़ ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १९१५ में जयपुर में हुआ था।[48] ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के घनिष्ठ मित्रों में से थे। इनके पिता का नाम दुर्गादत्त था जो दत्त कवि के नाम से कविता करते थे। व्यासजी संस्कृत के प्रतिभाशाली विद्वान और ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे। ये हिंदी गद्य और पद्य दोनों लिखते थे और समस्यापूर्ति में इतने अभ्यस्त थे कि देखते-देखते नया छंद बनाकर सामने रख देते थे। इनकी काव्य प्रतिभा से मुग्ध होकर कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों और साहित्य-सभाओं ने इनको 'भारतभूषण', 'शतावधान' इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया था। साहित्य के नाम पर इनको द्रव्य-लाभ भी यथेष्ट हुआ पर ये अन्त समय तक ऋणग्रस्त ही बने रहे।[49] इनकी मृत्यु सं० १९५७ में हुई थी।[50]

व्यासजी हरिश्चन्द्र युग के उन इने-गिने साहित्य- सेवियों में से हैं जिनको हिंदी-क्षेत्र में भरपूर ख्याति मिली है। इन्होंने संस्कृत और हिंदी में कुल ७८ पुस्तकें लिखीं जिनमें से अधिकांश प्रकाशित हो चुकी है।[51] इनकी प्रकाशित पुस्तकों में 'बिहारी-बिहार' बहुत प्रसिद्ध है। इसमें इन्होंने बिहारी के दोहों पर कुंडलियाँ रची हैं और उनके भाव बड़ी मार्मिकता से पल्लवित किये गये हैं। उदाहरण—

> सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात।
> मनो नीलमनि सैल पर आतप पर्यौ प्रभात॥
> आतप पर्यौ प्रभात ताहि सों खिल्यो कमल-मुख।
> अलक भौंर लहराय जूथ मिलि करत विविध सुख॥

---

47. राजस्थान के हिंदी-साहित्यकार, पृ० २७
48. पं० रामचन्द्र शुक्ल; हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ४१४
49. रामनरेश त्रिपाठी; कविता-कौमुदी, भाग दूसरा, पृ० ७७
50. पं० रामचन्द्र शुक्ल; हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ४१४
51. रामनरेश त्रिपाठी, कविता-कौमुदी, भाग दूसरा, पृ० ७८

था।[47] ये कट्टर आर्यसमाजी और ब्रजभाषा के मँजे हुए कवि थे। इनके रचे सात ग्रंथों का पता है जो अभी तक अप्रकाशित हैं। उनके नाम ये हैं—

(१) अज्ञान-नाशक-स्वप्न (२) विनयाष्टक (३) ज्ञानमंगल (४) कलि युगाष्टक (५) अहिंसापच्चीसी (६) प्रार्थनापच्चीसी और (७) बारहमासी।

इन्होंने शृंगार और शान्त रस की कविताएँ अधिक लिखी हैं। रचना मार्मिक है।

(३२०) अम्बिकादत्त व्यास—ये गौड़ ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १९१५ में जयपुर में हुआ था।[48] ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के घनिष्ठ मित्रों में से थे। इनके पिता का नाम दुर्गादत्त था जो दत्त कवि के नाम से कविता करते थे। व्यासजी संस्कृत के प्रतिभाशाली विद्वान और ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे। ये हिंदी गद्य और पद्य दोनों लिखते थे और समस्यापूर्ति में इतने अभ्यस्त थे कि देखते-देखते नया छंद बनाकर सामने रख देते थे। इनकी काव्य प्रतिभा से मुग्ध होकर कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों और साहित्य-सभाओं ने इनको 'भारतभूषण', 'शतावधान' इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया था। साहित्य के नाम पर इनको द्रव्य-लाभ भी यथेष्ट हुआ पर ये अन्त समय तक ऋणग्रस्त ही बने रहे।[49] इनकी मृत्यु सं० १९५७ में हुई थी।[50]

व्यासजी हरिश्चन्द्र युग के उन इने-गिने साहित्य- सेवियों में से हैं जिनको हिंदी-क्षेत्र में भरपूर ख्याति मिली है। इन्होंने संस्कृत और हिंदी में कुल ७८ पुस्तकें लिखीं जिनमें से अधिकांश प्रकाशित हो चुकी हैं।[51] इनकी प्रकाशित पुस्तकों में 'बिहारी-बिहार' बहुत प्रसिद्ध है। इसमें इन्होंने बिहारी के दोहों पर कुंडलियाँ रची हैं और उनके भाव बड़ी मार्मिकता से पल्लवित किये गये हैं। उदाहरण—

सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि सैल पर आतप पर्यौ प्रभात॥
आतप पर्यौ प्रभात ताहि सों खिल्यो कमल-मुख।
अलक भौंर लहराय जूथ मिलि करत विविध सुख॥

---

47. राजस्थान के हिंदी-साहित्यकार, पृ० २७
48. पं० रामचन्द्र शुक्ल; हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ४१४
49. रामनरेश त्रिपाठी; कविता-कौमुदी, भाग दूसरा, पृ० ७७
50. पं० रामचन्द्र शुक्ल; हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ४१४
51. रामनरेश त्रिपाठी, कविता-कौमुदी, भाग दूसरा, पृ० ७८

ओछी कद ओछी वैस उदित उरोज उर
जाती आजु गजन गम्न पर नारी है ॥[57]

(३२३) वल्लभ—ये मालवा के रहनेवाले श्रीमाल महाजन थे और मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह की कीर्ति को सुनकर उनके आश्रय में उदयपुर चले आये थे।[58] इनके पिता का नाम अनूपचन्द था। इनका वास्तविक नाम बालचंद था।[59] इन्होंने अपने आश्रयदाता महाराणा सज्जनसिंह को भेंट करने के लिये 'सज्जन-विलास' नाम का एक नीति विषयक ग्रंथ बनाया जिसकी मूल प्रति उदयपुर के सरस्वती भंडार में विद्यमान है। यह ग्रंथ महाभारत के आधार पर रचा गया है। इसका निर्माण-काल सं० १९३५ है।[60] इसमें चालीस अध्याय हैं। इसमें साहित्यिक सौन्दर्य प्रायः नहीं के बराबर है, पर व्यावहारिक ज्ञान कूट-कूट कर भरा है और इस दृष्टि से यह ग्रंथ मनन करने योग्य है। इसकी भाषा इस ढंग की है—

नर केवल हू धन लोभ चहै तहँ धर्म की हानि निदान प्रमानी।
पुनि केवल धर्म के लोभस तें वयरागिन को हुव अर्थ की हानी॥
मदमत्त अनंग के बीच सोऊ दोउ खोवत धर्म रु अर्थ अज्ञानी।
निहि तें इन तीन हु बीच अनाश चही तुम रोज प्रजा सुखदानी॥[61]

(३२४) मारकंडेलाल—इनका विशेष वृत्त नहीं मिलता। ये गाजीपुर के रहनेवाले कोई अच्छे प्रतिभावान कवि थे जो मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह के समय में उदयपुर में आ बसे थे[62]। यहाँ इन्होंने महाराणा सज्जनसिंह के लिए 'सज्जन-विनोद' नाम का एक ग्रंथ सं० १९३९ में बनाया था। इन बातों का उल्लेख इन्होंने अपने इस ग्रंथ के प्रारंभ में किया है—

---

57. वही; पत्र ३१

58. महिमा सुनी महान, हिंद भान भुव रान की।
वल्लभ चित उमंगान, आयो श्री उदयापुरी ॥

59. स० भं० उ० की हस्तलिखित प्रति, पृ० २८

60. वही; पृ० २०९

61. वही; पृ० ३९

62. स० भं० उ० की हस्तलिखित प्रति, पत्र ३

सज्जनसिंह नरेन्द्र हित, ग्रंथ सु सज्जन-विनोद ।
धर्‌यो नाम चिरजीव कवि, मानि महा मन मोद ॥
संवत ग्रह गुन अंक ससि, आस्विन सुक्ल पवित्र ।
विजया दसमी द्योस रवि, पूर्‌यो ग्रंथ विचित्र ॥[63]

यह नायिका-भेद का ग्रंथ है । इसकी छंद-संख्या नौ सौ है । रचना काव्य-कलापूर्ण और मार्मिक है । इसमें से एक छंद यहाँ दिया जाता है ।

रूप प्रिया को बन्यो नंद नंद प्रिया बनी स्याम को रूप अगाधा ।
वै उनको हठि अंक भरै अरु वै उनको मुख चूमति आधा ॥
त्यौं चिरजीव प्रिया कहि जाति औ प्यारो सनाग पुजावत साधा ।
कुँजन में सुख लूटि रहे भले गोरे गुपाल औ सांवरी राधा ॥[64]

(३२५) जगदीशलाल—ये गोस्वामी कृष्णलाल के पुत्र थे । इनका जन्म सं० १८२० में बूंदी में हुआ था ।[65] इनके मृत्यु-काल का निश्चित पता नहीं है, पर कहा जाता है कि ये सं० १८७० में वर्तमान थे । ये ब्रजभाषा के अधिकारी विद्वान एवं उत्कृष्ट कवि थे और नवों रसों में बहुत उत्तम कोटि की कविता करते थे । इन्होंने कुल अठारह ग्रंथ बनाये जिनके नाम ये हैं—

(१) ब्रजविनोद (२) साहित्यसार (३) प्रस्तारप्रकाश (४) बूंदीन्द्र नृप रामपचीसी (५) लालविहारी प्रागट्य पचीसी (६) लालविहारी अष्टक (७) करुणाष्टक (८) महावीर-अष्टक (९) षट्-उपदेश (१०) ध्यान-षट्पदी (११) कृष्णसत (१२) विनयसत (१३) नीति-अष्टक (१४) गुरु-महिमा (१५) अश्वचालीसा (१६) संप्रदायसार (१७) उत्सव-प्रकाश और (१८) पदपद्मावली[66] ।

जगदीशलाल की भाषा साधारण बोलचाल को लिये हुए बड़ी जोरदार है । इन्होंने विविध छंदों में कविता की है । इनकी कविता में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है ।

---

63. वही; पत्र ३

64. वही; पत्र ११३

65. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० १२१४

66. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ६०–७०

ओछी कद ओछी वैस उदित उरोज उर
जाती आजु गजन गरून पर वारी है ॥[57]

(३२३) वल्लभ—ये मालवा के रहनेवाले ओसवाल महाजन थे और मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह की कीर्ति को सुनकर उनके आश्रय में उदयपुर चले आये थे।[58] इनके पिता का नाम अनूपचन्द था। इनका वास्तविक नाम वालचंद था।[59] इन्होंने अपने आश्रयदाता महाराणा सज्जन सिंह को भेंट करने के लिये 'सज्जन-विलास' नाम का एक नीति विषयक ग्रंथ बनाया जिसकी मूल प्रति उदयपुर के सरस्वती भंडार में विद्यमान है। यह ग्रंथ महाभारत के आधार पर रचा गया है। इसका निर्माण-काल सं० १६३५ है।[60] इसमें चालीस अध्याय हैं। इसमें साहित्यिक सौन्दर्य प्रायः नहीं के बराबर है, पर व्यावहारिक ज्ञान कूट-कूट कर भरा है और इस दृष्टि से यह ग्रंथ मनन करने योग्य है। इसकी भाषा इस ढंग की है—

नर केवल हू धन लोभ चहै तहँ धर्म की हानि निदान प्रमानी।
पुनि केवल धर्म के लोभस तें वयरागिन को हुव अर्थ की हानी॥
मदमत्त अनंग के वीच सोऊ दोउ खोवत धर्म रु अर्थ अग्यानी।
निहि तें इन तीन हु वीच अभाव चहौ तुम रोज प्रजा सुखदानी॥[61]

(३२४) मारकंडेलाल—इनका विशेष वृत्त नहीं मिलता। ये गाजीपुर के रहनेवाले कोई अच्छे प्रतिभावान कवि थे जो मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह के समय में उदयपुर में आ बसे थे[62]। यहाँ इन्होंने महाराणा सज्जनसिंह के लिए 'सज्जन-विनोद' नाम का एक ग्रंथ सं० १६३६ में बनाया था। इन बातों का उल्लेख इन्होंने अपने इस ग्रंथ के प्रारंभ में किया है—

---

57. वही; पत्र ३१
58. महिमा सुनी महान, हिंद भान भुव रान की।
    वल्लभ चित उमँगान, आयो श्री उदयापुरी ॥
59. स० भं० उ० की हस्तलिखित प्रति, पृ० २८
60. वही; पृ० २०६
61. वही; पृ० ३६
62. स० भं० उ० की हस्तलिखित प्रति, पत्र ३

सज्जनसिंह नरेन्द्र हित, ग्रंथ सु सज्जन-विनोद ।
धर्यो नाम निरजीव कवि, मानि महा मन मोद ॥

संवत ग्रह गुन अंक ससि, आस्विन सुक्ल पवित्र ।
विजया दसमी चौस रवि, पूज्यो ग्रंथ विचित्र ॥[63]

यह नायिका-भेद का ग्रंथ है । इसकी छंद-संख्या नौ सौ है । रचना काव्य-कलापूर्ण और मार्मिक है । इनमें से एक छंद यहाँ दिया जाता है ।

रूप प्रिया को बन्यो नंद नंद प्रिया बनी स्याम को रूप अगाधा ।
वै उनको हँसि अंक भरैं अरु वै उनको मुख चूमति आधा ॥
त्यौं निरजीव प्रिया सठि जानि औ प्यारो मनाय पुजावत साधा ।
कुंजन में सुख लूटि रहे भले गोरे गुपाल औ साँवरी राधा ॥[64]

(३२५) जगदीशलाल—ये गोस्वामी कृष्णलाल के पुत्र थे । इनका जन्म सं० १९२० में बूंदी में हुआ था ।[65] इनके मृत्यु-काल का निश्चित पता नहीं है, पर कहा जाता है कि ये सं० १९७० में वर्तमान थे । ये ब्रजभाषा के अधिकारी विद्वान एवं उत्कृष्ट कवि थे और नवों रसों में बहुत उत्तम कोटि की कविता करते थे । इन्होंने कुल अठारह ग्रंथ बनाये जिनके नाम ये हैं—

(१) ब्रजविनोद (२) साहित्यसार (३) प्रस्तारप्रकाश (४) बूंदीन्द्र नृप रामपचीसी (५) लालविहारी प्रागट्य पचीसी (६) लालविहारी अष्टक (७) करुणाष्टक (८) महावीर-अष्टक (९) षट्-उपदेश (१०) ध्यान-षट्पदी (११) कृष्णसत (१२) विनयसत (१३) नीति-अष्टक (१४) गुरु-महिमा (१५) अश्वचालीसा (१६) संप्रदायसार (१७) उत्सव-प्रकाश और (१८) पदपद्यावली[66] ।

जगदीशलाल की भाषा साधारण बोलचाल को लिये हुए बड़ी जोरदार है । इन्होंने विविध छंदों में कविता की है । इनकी कविता में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है ।

---

63. वही; पत्र ३

64. वही; पत्र ११२

65. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० १२१४

66. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ६०–७०

(३२६) रामनाथ—ये बूंदी के राव गुलाबजी के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६२० में और देहान्त सं० १६८६ में हुआ था[67]। ये बहुपठित विद्वान और ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे। इन्होंने छोटे-छोटे ११ ग्रंथ बनाये जिनके नाम ये हैं—

(१) समस्यासार (२) सतीचरित्र (३) रामनीति (४) नीतिसार (५) शंभुशतक (६) परमेश्वराष्टक (७) गणेशाष्टक (८) सूर्याष्टक (९) दुर्गाष्टक (१०) शिवाष्टक और (११) नीति-शतक[68]।

रामनाथ ने भक्ति विषयक कविता अधिक लिखी है। इनकी कविता सरल और मनोहर है। उसमें अनूठापन और सूक्ति का प्राधान्य है।

(३२७) चन्द्रकला—चंद्रकलाबाई पूर्वोक्त राव गुलाबजी के घर की दासी थी।[69] इनका जन्म सं० १६२३ में और देहावसान सं० १६६५ के लगभग हुआ था[70]। यह विशेष पढ़ी लिखी नहीं थी, पर कविता के मर्म को खूब समझती थी। इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी जिससे इन्होंने सैकड़ों कवित्त-सवैये मुखाग्र कर लिए थे। राव गुलाबजी की तो प्रायः सभी अच्छी-अच्छी कविताएँ इन्हें कंठस्थ थीं। इन्होंने गुलाबजी से कविता करना भी सीख लिया था। समस्या-पूर्ति का इन्हें विशेष शौक था और इस कला में थी भी ये बहुत निपुण। एक समस्या की पूर्ति कई तरह से, कई रसों में, कर सकती थी और काव्य-चमत्कार सभी में एक-सा पाया जाता था। हिंदी के 'रसिक-मित्र' 'काव्य-सुधाकर' इत्यादि पत्रों में इनकी कविताएँ प्रायः छपा करती थीं। इनकी रचनाओं से मुग्ध हो कर सीतापुर जिले के बिसवाँ गाम के कवि-मंडल ने इन्हें 'वसुन्दरा-रत्न' की उपाधि प्रदान की थी[71]।

इन्होंने करुणा-शतक, पदवी-प्रकाश, रामचरित्र, महोत्सव-प्रकाश इत्यादि ग्रंथ बनाए थे[72]। परंतु इनकी कीर्ति श्रृंगार रसात्मक फुटकर कवित्त-सवैयों के कारण विशेष है। इनकी भाषा सालंकार, सरस तथा व्यवस्थित है। वस्तुतः हिंदी की कवयित्रियों में कला की दृष्टि से इतनी अधिक श्रेष्ठता

---

67. राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, पृ० ५४३
68. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ६४
69. मुंशी देवीप्रसाद; महिलामृदुवाणी, पृ० ६
70. ज्योतिप्रसाद मिश्र; स्त्री-कवि-कौमुदी, पृ० १६७
71. वही; पृ० १६८
2. वही; पृ० १७०

किसी ने प्रशंसित नहीं की जितनी इन्होंने की है। यह करुण रस के लिखने में भी सिद्धहस्त थे। विषाद की एक हृदय-वेधक रेखा इनके 'करुणा-शतक' में चित्रित देख पड़ती है।

(२२८) मुरारिदान—ये आसिया शाखा के चारण जोधपुर-नरेश महाराजा जसवंतसिंह (द्वितीय) के आश्रित थे। इनका रचना-काल सं० १९५० है[73]। इनके पिता का नाम भारतदान था[74]। डिंगल भाषा के सुप्रसिद्ध कवि बाँकीदास इनके पितामह थे। इन्होंने 'जसवंत-जसो-भूषण' बनाया जो हिंदी के अलंकार-ग्रंथों में सब से बड़ा है। इस पर इन्हें 'कविराजा' की पदवी के साथ लाखपसाव मिला था।[75]

'जसवंत-जसोभूषण' ८५२ पृष्ठों का एक भारी ग्रंथ है। इसका लघु रूप 'जसवंत-भूषण' है जो ३५१ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। ये दोनों ग्रंथ मारवाड़ स्टेट प्रेस, जोधपुर की ओर से प्रकाशित हुए हैं। 'जसवंत-जसोभूषण' में मुरारिदान ने अलंकारों के नामों को ही उनका लक्षण माना है और उदाहरण में अपने आश्रयदाता महाराजा जसवंतसिंह का यशोगान किया है। इसमें संदेह नहीं कि इसके लिखने में इन्होंने हिंदी-संस्कृत के बहुत से प्राचीन ग्रंथों से सहायता ली है। परंतु नाम में ही लक्षण की कल्पना करने से अनेक स्थानों पर खींचातानी का आश्रय लेना पड़ा है और ऐसे उद्योग में सर्वत्र सफलता भी नहीं हुई है। इन्होंने अतुल्ययोगिता, अनवसर तथा अपूर्वरूप ये तीन नये अलंकार बनाये हैं और प्रमाण को अलंकार ही नहीं माना है।

ग्रंथ की रचना-शैली और विषय-विवेचना कलापूर्ण एवं हृदयग्राही है और इससे मुरारिदान के साहित्य विषयक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है।

---

73. मिश्रबंधु-विनोद; पृ० २०४ (चतुर्थ भाग)
74. बाँकीदास-ग्रंथावली; भाग पहला, पृ० ९ (भूमिका)
75. इक गज द्वै हयराज, कनक भूषन सों भूषित।
    मुक्तमाल सिरपेच, रत्न-जटित जु कर अति हित ॥
    कुंडल कंकन बसन, खड्ग जमदढ़ जुत भूषन।
    पंच सहस्र मुद्रिका, अपर परिजन हित दिय गज ॥
    प्रति वर्ष सहस्र पट उपज के, लक्षपूर्ति को ग्राम दिय।
    निज ग्रंथ रीझ जसवंत नृप, यह विध जग थिर नाम किय ॥

(३२९) झारसीराम—ये बूंदी-निवासी हीरालाल मिश्र के पुत्र थे। इनका रचना-काल सं० १९४६-७० है। ये बूंदी के महाराव राजा रघुवीर-सिंह के बड़े कृपापात्र थे और प्रायः उन्हीं के पास रहा करते थे। ये आशुकवि थे। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) वंशप्रदीप
(२) ललितलहरी
(३) सर्वसमुच्चय
(४) रघुवरसुयश-प्रकाश[76]

(३३०) किशनजी—ये सिढायच कुलोत्पन्न जाति के चारण थे।[77] इनका रचना-काल सं० १९६५ है। ये डूंगरपुर के महारावल उदयसिंह के आश्रित थे। महारावल के आग्रह से इन्होंने उदयप्रकाश नामक एक ग्रंथ बनाया जिसमें उनका जीवन-चरित्र वर्णित है।[78] यह ग्रंथ प्रकाशित भी चुका है। इसमें ४५५ छंद हैं। ग्रंथ इतिहास का है और इतिहास की दृष्टि से लिखा गया है पर इसमें स्थान-स्थान पर साहित्यिक छटा भी अच्छी दरसाई गई है।

(३३१) जगन्नाथ—ये सं० १९२८ में पैदा हुए थे।[79] बूंदी के प्रसिद्ध कवि झारसीराम इनके पिता थे। अपने पिता के समान ये भी ब्रजभाषा के मंजे हुए कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। इन्होंने रामायण-सार, माथुर-कुल-कल्पद्रुम, शिक्षादर्पण, जमुना-पच्चीसी और अलंकारमाला ये पांच ग्रंथ लिखे थे। इनके अतिरिक्त इनकी फुटकर रचनाएं भी हैं। इनकी भाषा प्रवाह युक्त और कविता मधुर है।

(३३२) जयदेव—ये राव जाति के कवि इन्द्रमल के बेटे थे। इनका जन्म सं० १९२८ में हुआ था। ये अलवर के दरबारी कवि थे। ये ब्रजभाषा के बड़े पृष्ठपोषक और खड़ी बोली के विरोधी थे। कहा

---

76. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ५३–५४
77. उदय-प्रकाश, पृ० १४२
78. कियो तीन बेरा हुकुम, उदयसिंह नृप एह।
कविता छंद प्रबंध क्रम, किसना ग्रंथ करेह॥
सुधा रूप यह वचन सुन, हित धरि हृदय हुलास।
करचो ग्रंथ भाषा किसन, प्रगट सु उदय-प्रकास॥
79. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ५६

(३२९) ज्ञारसीराम—ये बूंदी-निवासी हीरालाल मिश्र के पुत्र थे। इनका रचना-काल सं० १९४६-७० है। ये बूंदी के महाराव राजा रघुवीर-सिंह के बड़े कृपापात्र थे और प्रायः उन्हीं के पास रहा करते थे। ये आशुकवि थे। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) वंशप्रदीप
(२) ललितलहरी
(३) सर्वसमुच्चय
(४) रघुवरसुयश-प्रकाश[76]

(३३०) किशनजी—ये सिंढायच कुलोत्पन्न जाति के चारण थे।[77] इनका रचना-काल सं० १९६५ है। ये डूंगरपुर के महारावल उदयसिंह के आश्रित थे। महारावल के आग्रह से इन्होंने उदयप्रकाश नामक एक ग्रंथ बनाया जिसमें उनका जीवन-चरित्र वर्णित है।[78] यह ग्रंथ प्रकाशित भी चुका है। इसमें ४५५ छंद हैं। ग्रंथ इतिहास का है और इतिहास की दृष्टि से लिखा गया है पर इसमें स्थान-स्थान पर साहित्यिक छटा भी अच्छी दरसाई गई है।

(३३१) जगन्नाथ—ये सं० १९२८ में पैदा हुए थे।[79] बूंदी के प्रसिद्ध कवि ज्ञारसीराम इनके पिता थे। अपने पिता के समान ये भी व्रजभाषा के मंजे हुए कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। इन्होंने रामायण-सार, माथुर-कुल-कल्पद्रुम, शिक्षादर्पण, जमुना-पच्चीसी और अलंकारमाला ये पांच ग्रंथ लिखे थे। इनके अतिरिक्त इनकी फुटकर रचनाएं भी हैं। इनकी भाषा प्रवाह युक्त और कविता मधुर है।

(३३२) जयदेव—ये राव जाति के कवि इन्द्रमल के बेटे थे। इनका जन्म सं० १९२८ में हुआ था। ये अलवर के दरबारी कवि थे। ये व्रजभाषा के बड़े पृष्ठपोषक और खड़ी बोली के विरोधी थे। कहा

---

76. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ५३–५४
77. उदय-प्रकाश, पृ० १४२
78. कियो तीन बेरा हुकुम, उदयसिंह नृप एह।
    कविता छंद प्रबंध क्रम, किसना ग्रंथ करेह ॥
    सुधा रूप यह वचन सुन, हित धरि हृदय हुलास।
    करयो ग्रंथ भाषा किसन, प्रगट सु उदय-प्रकास ॥
79. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ५६

महाराज चतुरसिंहजी

मालूम पड़ते थे। बातचीत करते समय ये इतनी सरल एवं स्निग्ध भाषा का प्रयोग करते थे कि देखते ही बनता था। कठिन से कठिन विषय को सरलता से समझा देना इनके बायें हाथ का खेल था। कैसा भी कठिन विषय क्यों न होता, महाराज साहब की प्रतिभा के खराद पर चढ़कर नवीन रूप धारण कर लेता था और उसकी दुरूहता हवा हो जाती थी।

सं० १९८६ के जेठ महीने के कृष्ण पक्ष में इनको सोजिश की व्याधि हुई और कोई दस-बारह दिन की बीमारी के बाद आषाढ़ बदि ६ को प्रातः नौ बजे इन्होंने अपनी सांसारिक लीला संवरण करली[85]।

चतुर्रसिंह संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी आदि अनेक भाषाओं के सुज्ञाता और मर्मज्ञ कवि थे। मीरांबाई के बाद मेवाड़ में यही एक ऐसे कवि हुए हैं जिनकी रचनाओं का घर-घर में प्रचार है। इन्होंने मेवाड़ी भाषा में अधिक लिखा है। इसलिए कोई-कोई इनको मेवाड़ी का महाकवि मानते हैं।

महाराज साहब ने ब्रजभाषा में ग्रंथ कोई नहीं लिखा, केवल फुटकर रचना की है जो प्रचुर मात्रा में है। इनकी भाषा बहुत सरल, मधुर और भावोपयोगी है। इन्होंने जो कुछ लिखा है वह अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर लिखा है। इसलिए इनके काव्य में सचाई और और स्वाभाविकता है। एक बहुत बड़ी विशेषता जो इनकी कविता में दृष्टिगोचर होती है वह यह है कि अत्यन्त भावमयी एवं मौलिकतापूर्ण होने के साथ-साथ वह सदुपदेशों से ओतप्रोत है और मनुष्य को उच्च आदर्शों की ओर ले जाती है। उदाहरण—

उन उरझीली अलक पै, जो मन उरझै नाँहि।
तो उरझैगो ताहि की, माया ही के माँहि॥

जो मानुस मोकौं विरचि, विमुख आप सौं कीन।
तो मानुसता को कहो, कौन पदारथ दीन॥

पसु तें यही विसेसता, नर में मोहि लखाय।
पसु अनजाने भ्रमत जग, नर जानत ही जाय॥

---

85. वही; पृ० ५।

घरी घरी निरखै घरी, बढ़ी काम की चाह ।
वहै घरी तो को खरी, सुधि आवै की नाह ।।

लै धरनी में अलभ तनु, है हरिनी दृग-लीन ।
वैतरनी के तरन की, तैं करनी नहिं कीन ।।

राम रावरे नाम में, यहै अनोखी बात ।
दो सूधे आखर तऊ, आखर याद न आत ।।

(२३४) राजेन्द्रसिंह—ये झालावाड़-नरेश भवानीसिंह के पुत्र थे । इनका जन्म सं० १९५७ में हुआ था।[86] इनकी प्रारंभिक शिक्षा राज-महलों में हुई । बाद में ये मेयो कॉलेज, अजमेर, में भरती हुए और कुछ वर्ष वहां रहकर फिर इंगलेंड चले गये । वहां इन्होंने आक्सफार्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त की । अपने पिता की मृत्यु के बाद ये सं० १९८६ में झालावाड़ की गद्दी पर बैठे और १४ वर्ष तक राज करने के पश्चात् सं० २००० में स्वर्गवासी हुए ।[87]

राजेन्द्रसिंह बड़े प्रजा-हितैषी, सुधारप्रिय और व्यवहार-कुशल राजा थे । ये साहित्य-सेवी भी पूरे थे। ये ब्रजभाषा और उर्दू दोनों में कविता करते थे। ये ब्रजभाषा की कविता में अपना उपनाम 'सुधाकर' और उर्दू कविता में 'मखमूर' रखते थे । ये कवित्त सवैया अधिक लिखते थे और समस्या-पूर्ति में प्रवीण थे । इनकी कविताओं का वृहत् संग्रह 'सुधाकर-काव्य-कला' के नाम से प्रसिद्ध है । इसके अतिरिक्त इनकी लिखी हुई 'मधुशाला' और 'मधुबाला' नाम की दो रचनाएँ और भी हैं जो अभी अप्रकाशित हैं ।

ये सुधारवादी कवि थे । इनकी कविता में देश-भक्ति और देश-कल्याण की गूंज है ।

(२३५) केसरीसिंह—ये सोदा बारहठ कुलोत्पन्न जाति के चारण हैं । इनका जन्म सं० १९२७ में मेवाड़ राज्य के सोन्याणा नामक गांव में हुआ । इनके पिता का नाम खेमराज था । इनके पूर्वज गुजरात के रहनेवाले थे । कोई ६०० वर्ष हुए जब वे वहां से मेवाड़ में आकर बस गये थे ।

---

86. सुकवि, नवंबर १९३४, पृ० १७ ।
87. राजस्थान के हिंदी-साहित्यकार; पृ० ५०८ ।

बारहठजी बहुश्रुत विद्वान, इतिहास-प्रेमी एवं आशुकवि हैं। वर्तमान चारण कवियों में ये सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्होंने प्रताप-चरित्र, राजसिंह-चरित्र, दुर्गादास-चरित्र, जसवंतसिंह-चरित्र और रूठी राणी नामक पांच काव्य-ग्रंथों का प्रणयन किया है। इनमें प्रताप-चरित्र को छोड़कर शेष अभी तक अप्रकाशित हैं।

केसरीसिंह प्राचीन चारण-काव्य-परंपरा के अनुवर्ती हैं। ये वीर रस की कविता अधिक लिखते हैं जिसमें ये निपुण हैं। छंदों में घनाक्षरी इनको बहुत प्रिय है। इनकी भाषा भावों के साथ चलती है और अभिव्यंजना-शैली भी अनूठी होती है। भाव की सचाई, कल्पना की सुघड़ता और पुरुषोचित शक्ति इनकी कविता के प्रधान गुण हैं। इन गुणों के कारण इनको नागरी प्रचारिणी सभा काशी, की ओर से 'रत्नाकर-पुरस्कार' और 'बलदेवदास-पदक' भी मिले हैं। स्वर्गीय डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल इनको 'आधुनिक भूषण' कहा करते थे। पंडित रामचंद्र शुक्ल ने भी इनकी काव्योत्कृष्टता को स्वीकार किया है।[88]

(३२६) सुजानसिंह—ये भगवानपुरा के स्वामी पृथ्वीसिंह के पुत्र हैं। इनका जन्म सं० १९३५ में हुआ। ये बड़े मिलनसार, सहृदय एवं साहित्य-प्रेमी सरदार हैं और अपना अधिक समय विद्याध्ययन में व्यतीत करते हैं। ये काव्य-मर्मज्ञ और काव्य-रचना में प्रवीण हैं। इन्होंने 'गजेन्द्रमोक्ष' नामक एक ग्रंथ और अनेक फुटकर कविताएँ लिखी हैं। इनकी रचनाओं में वर्णन-चातुर्य्य के साथ-साथ भाव-गांभीर्य्य भी यथेष्ट पाया जाता है।

(३२७) उमाशंकर—ये उदयपुर के रहनेवाले पालीवाल ब्राह्मण हैं। इनका जन्म सं० १९४९ में हुआ। इनके पिता का नाम नानजीराम था और वे ज्योतिष के अच्छे जानकार थे। ये हिंदी के बड़े प्रेमी एवं साहित्य-रसिक सज्जन हैं और मेवाड़ में हिंदी का प्रचार करनेवालों में अग्रणी हैं। ये कवि भी हैं और अधिकतर ब्रजभाषा में रचना करते हैं। इन्होंने ग्रंथ कोई नहीं लिखा पर फुटकर कवित्त, सवैया आदि प्रचुर मात्रा में रचे हैं जिनमें से कुछ प्रकाशित भी हुए हैं। इनकी कविता कलापूर्ण और वर्णन-शैली जोरदार होती है।

. हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ५७५।

(३२८) अमृतलाल—इनका जन्म सं० १६५५ में जोधपुर राज्य के कुचेरा गाँव में हुआ।[89] ये जाति के कायस्थ हैं। इनके पिता का नाम लाला गोपाललाल था। ये भी कविता से बड़ा प्रेम करते थे और स्वयं भी कवि थे। राजस्थान के वर्तमान कवियों में अमृतलाल एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। इनकी टक्कर का ब्रजभाषा का कवि यहाँ दूसरा नहीं है। समूचे हिंदी-क्षेत्र में भी एक-दो ही हैं। इन्होंने श्रीरामरसामृत (अमृत-सतसई), यमक रामायण और गंगालहरी ये तीन ग्रंथ रचे हैं। इनमें 'श्रीराम-रसामृत' बहुत प्रसिद्ध है। यह दो बार प्रकाशित भी हो चुका है। इसका दूसरा संस्करण बीस हजार प्रतियों का निकला था। इससे इस ग्रंथ की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। स्वर्गीय पंडित किशोरीलाल, लाला भगवानदीन, पद्मसिंह शर्म्मा आदि विद्वानों ने इस काव्य की बड़ी सराहना की है और हिंदी के कुछ पत्रकारों ने इसे हिन्दी-साहित्य की अमर कृति बतलाया है।

श्रीरामरसामृत में मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्र का जीवन-चरित्र वर्णित है। इसमें ७६६ दोहे हैं। यह सात कांडों में बँटा हुआ है। इसकी भाषा अलंकारमयी और विषय के अनुकूल सरल तथा श्रुतिमधुर है। कवि ने प्रत्येक कांड में अपने विषय का सफलता पूर्वक प्रतिपादन किया है। काव्य-चमत्कार से भी अधिक महत्त्वपूर्ण उसमें की वह अटल श्रद्धा है जिससे उसकी प्रत्येक पंक्ति ओतप्रोत है।

(३२९) मोहनसिंह—ये जाति के राव हैं। इनका जन्म मेवाड़ राज्य के बसी नामक गाँव में सं० १६५६ में हुआ। ये बड़े अध्ययनशील व्यक्ति और हिंदी भाषा के मंजे हुए कवि हैं। ये डिंगल और पिंगल दोनों में चमत्कार पूर्ण कविता लिखते हैं। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) प्रतापयशचंद्रोदय (२) भूपालभूषण (३) कुंभाकीर्तिप्रकाश (४) कूर्मयशकलानिधि (५) व्यंग्यार्थ प्रकाश (६) कुंडलिया-शतक (७) नीति-शतक (८) मोहन-सतसई (९) मृगया-बावनी (१०) महाराणा चरितामृत (११) रागबहार (१२) रघुवंशचरित्र (१३) मानपचीसी (१४) वणिक-बहत्तरी (१५) प्रपंच-पचीसी (१६) जैमल-पचीसी और (१७) रामवास-पचीसी।

---

89. श्रीरामरसामृत, पृ० ११५।

सुकवि होने के साथ-साथ मोहनसिंह काव्यानुवाद करने में भी परम प्रवीण हैं। इन्होंने सूर, रसखान आदि ब्रजभाषा के कवियों की कुछ कविताओं का डिंगल भाषा में बहुत सुन्दर अनुवाद किया है। बिहारी-सतसई के दो दोहों का अनुवाद देखिये—

पतड़ाँ मिळवे मत्तड़ी, उण झूंपड़ै घाट।
पून्यूं रातड़-दीहड़े, मुखड़ा रै भरळाट ॥
सोकां साज्या तीज नै, सकळ साज सणगार।
सब रै मुख सळवट पड़्या, थण गळवट पट धार ॥[90]

(३४०) रेवतसिंह—ये भाटी राजपूत हैं। इनका जन्म सं० १९६२ में किशनगढ़ राज्यान्तर्गत नरवर नामक गांव में हुआ। इनके पिता का नाम जोरसिंह था। ये अच्छी कविता करते हैं। इन्होंने लक्ष्मणविलास, श्रीराम-रहस्य, श्रीगोहिल-गौरव-प्रकाश और श्रीदत्रशाल-शतक नामक ग्रंथों का प्रणयन किया है। ये चारों ग्रंथ ब्रजभाषा में हैं। ये बहुत प्रौढ़ एवं परिमार्जित भाषा लिखते हैं जो विषय-वस्तु का एकान्त अनुसरण करती है।

(३४१) रणवीरसिंह—ये पिपलाज-निवासी सामंतसिंह के पुत्र हैं और जाति के शक्तावत राजपूत हैं। इनका जन्म सं० १९६७ में हुआ। ये ब्रजभाषा के अनन्य भक्त एवं सिद्धहस्त कवि हैं और लगभग तेरह वर्ष की आयु से कविता करते आ रहे हैं। इनका 'नरसी-चरित्र' नामक एक छोटा-सा काव्य-ग्रंथ हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त इनकी फुटकर रचनाएँ भी सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं। ये वीर, शृंगार आदि नवों रसों में बड़ी भावपूर्ण कविता लिखते हैं। विशेषकर इनकी भाषा देखने योग्य है। वह देव और पद्माकर का स्मरण दिलाती है।

---

90. पत्रा हीं तिथि पाइयै, वा घर कैं चहुँ पास।
नितप्रति पून्योई रहै, आनन-ओप-उजास ॥
तीज-परब सौतिनु सजै, भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे-मुंह करीं, इहीं मरगजैं चीर ॥

पंचम अध्याय का परिशिष्ट

(३४२) कुंजीलाल, जयपुर। नि० का० सं० १६००; ग्रं० भागवत दशम स्कंध भाषा। वि० ये चैनराम के पुत्र थे।

(३४३) शंभुजी, जयपुर। नि० का० सं० १६००। ग्रं० जयसाह-सुजस सरोवर और वाग्विलास; वि० ये भट्ट ब्रजपाल के पुत्र थे।

(३४४) गोविन्दलाल, जयपुर। नि० का० सं० १६००; ग्रं० फलि-युगरासो, सांच-झूठ-वर्णन और माधव विनोद। वि० ये ब्रजपाल के पुत्र थे।

(३४५) संगम, जयपुर। नि० का० सं० १६००; र० स्फुट; वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण चैनराम के पुत्र थे।

(३४६) सुन्दरलाल, जयपुर। नि० का० सं० १६००; ग्रं० रामसु-जस-सागर, और सत्यासत्य-निरूपण; वि० इनके फुटकर छंद भी बहुत मिलते हैं।

(३४७) चंडीदान, कोटा। नि० का० सं० १६००; र० फुटकर कवित्त; वि० ये मेंह्यारिया गोत्र के चारण थे।

(३४८) वासुदेव, जयपुर। नि० का० सं० १६००; ग्रं० राधारूप-चरित्र-चंद्रिका, बाबूदयाल—चरित्र चंद्रिका और नखशिख; वि० ये भट्ट ब्रजपाल के पुत्र थे।

(३४६) जीवनलाल, जयपुर। नि० का० सं० १६००; ग्रं० मथुरा-वर्णन; वि० ये गोपाल के पुत्र थे।

(३५०) सांवलदास, उदयपुर। नि० का० सं० १६०१; र० फुटकर भजन। वि० ये कोई साधु थे।

(३५१) चंद कवि, जयपुर। नि० का० सं० १६०४। ग्रं० महाभारत भाषा और भेदप्रकाश; वि० महा-राजा रामसिंह (द्वितीय) के आश्रित।

(३५२) पुरुषोत्तम, मेवाड़। नि० का० सं० १६०५; र० स्फुट; वि० ये शृंगार रस के उत्कृष्ट कवि थे।

(३५३) सुन्दरलाल, जयपुर। नि० का० सं० १६०६; ग्रं० सुन्दर चंद्रिकारसिक, कुंजकौतुक और पूजा विभास; वि० इनका उपनाम रसिक था।

(३५४) श्रीधर भट्ट, जयपुर। नि० का० सं० १६०६; ग्रं० भारत सार और राजेन्द्र-चिंतामणि; वि० ये पद्माकर के वंशज थे।

(३५५) लक्ष्मीधर भट्ट, जयपुर। नि० का० सं० १६१०; ग्रं० गज-सालोत्र और हयसालोत्र। वि० पद्माकर के पौत्र थे।

(३५६) वंशीधर, जयपुर। नि० का० सं० १९१०; र० स्फुट; वि० ये पद्माकर के पौत्र थे।

(३५७) विजयचंद्र, जयपुर; नि० का० सं० १९१०; ग्रं० मान-महोदधि।

(३५८) शालिग्राम चौबे, बूंदी। नि० का० सं० १९१४; र० स्फुट।

(३५९) हीरालाल चौबे, बूंदी। नि० का० सं० १९१४; र० स्फुट।

(३६०) थिरपाल, जोधपुर। नि० का० सं० १९१४; ग्रं० गुलाब चम्पा।

(३६१) रामनाथ, अलवर। नि० का० सं० १९१६; र० स्फुट; वि० ये बारहठ ज्ञानजी के पुत्र थे।

(३६२) पारसदास, जयपुर। नि० का० सं० १९२०; ग्रं० ज्ञान सूर्योदय, पारसविलास और सार चतुर्विंशतिका की वचनिका।

(३६३) पुरंदरजी, जयपुर। नि० का० सं० १९२०; ग्रं० रघुराज-विनोद वि० ये रीवाँ से जयपुर में आये थे।

(३६४) फतहलाल, जयपुर। नि० का० सं० १९२०; ग्रं० विवाह-पद्धति, दशावतार नाटक, राजवार्तिकालंकार रत्नकुरंडन्यायदीपिका और तत्त्वार्थ सूत्र की वचनिका; वि० ये जैन थे।

(३६५) गोविंदराम, जयपुर। नि० का० सं० १९२०; ग्रं० गूजर-गीत-मंगल; वि० ये जाति के गूजर थे।

(३६६) वंशीधर, जयपुर। नि० का० सं० १९२०; र० फुटकर पद; वि० ये तैलंग ब्राह्मण थे।

(३६७) शिवलाल, जयपुर। नि० का० सं० १९२०; ग्रं० चर्चा-संग्रह बोधसार, दर्शनसार और अध्यात्म तरंगिनी आदि।

(३६८) रामगोपाल, अलवर। नि० का० सं० १९२१; स्फुट; ये सनाढ्य ब्राह्मण थे।

(३६९) बालकृष्ण चौबे, बूंदी। नि० का० सं० १९२५; र० स्फुट। वि० ये सतसईकार बिहारी के वंशज थे।

(३७०) चन्द्रधर, जयपुर। नि० का० सं० १९२५; र० स्फुट; वि० पद्माकर के पौत्र।

(३७१) जमनालाल, जयपुर। नि० का० सं० १९२८-६०; र० जमन-विलास; वि० ये सेठ चिमन लाल के पुत्र थे।

(३७२) चतुर्भुज मिश्र, जयपुर। नि० का० सं० १९२६; ग्रं० ब्रज-परिक्रमा सतसई और वंश-विनोद; वि० ये कुलपति मिश्र के वंशज थे।

(३७३) मुकुंदलाल, भरतपुर। नि० का० सं० १९३०; ग्रं० मुकुंद-विनोद।

(३७४) मोड़जी, मेवाड़। नि० का० सं० १९३०; र० स्फुट; वि० ये म्हैयारिया गोत्र के चारण थे।

(३७५) इन्द्रमल, अलवर। नि० का० सं० १९३०; र० स्फुट; वि० ये जाति के राव थे।

(३७६) गोर गुसाँई, जयपुर। नि० का० सं०१९३०; र० फुटकर; वि० ये महाकवि भूषण के वंशज थे।

(३७७) गुलाबसिंह, भरतपुर। नि० का० सं० १९३०; ग्रं० प्रेम-सतसई और कार्तिक माहात्म्य। वि० ये जाति के गूजर थे।

(३७८) रामचंद्र, जयपुर। नि० का० सं० १९३०; र० स्फुट; वि० ये गौड़ ब्राह्मण थे।

(३७९) श्रीकृष्ण भट्ट, जयपुर। नि० का० सं० १९३०; ग्रं० जयपुर-विनोद, सारशतक आदि; वि० ये संस्कृत और पिंगल दोनों में रचना करते थे।

(३८०) श्यामलदास, उदयपुर। नि० का० सं० १९३५; ग्रं० सज्जन यश-वर्णन। वि० ये दधवाड़िया गोत्र के चारण थे।

(३८१) सज्जनसिंह, उदयपुर। नि० का० सं० १९३५; ग्रं० रसिक-विनोद; वि० ये मेवाड़ के महाराणा थे।

(३८२) जोधसिंह महता उदयपुर। नि० का० सं० १९३५; र० स्फुट; वि० ये इतिहास के भी मर्मज्ञ थे।

(३८३) रामप्रसाद गौड़, अलवर। नि० का० सं० १९३५; वि० ये ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे। इनके बनाये ग्रंथों की संख्या ५० के लगभग है। इनका उप नाम परसाद था।

(३८४) रसिकलाल, अलवर। नि० का० सं० १९३७; ग्रं० श्रीमद्भगवद्गीता का पद्यानुवाद; वि० ये जाति के कायस्थ थे।

(३८५) हरिचरण, खेतड़ी। नि० का० सं० १९४०; र० हरिभक्त-प्रकाश; वि० ये खेतड़ी के मंत्री-पद पर थे।

(३८६) दामोदर, अलवर। नि० का० सं० १९४०; ग्रं० कृष्णकेलि; वि० ये तैलंग भट्ट अलवर दरबार के आश्रित थे।

(३८७) अमरकृष्ण चौबे, बूंदी। नि० का० सं० १९४०; र० स्फुट वि० ये बालकृष्ण चौबे के पुत्र थे।

(३८८) लुमाणसिंह, करौली। नि० का० सं० १९४०; र० स्फुट; ये करौली-नरेश मदनपाल के आश्रित थे।

(३८९) साधुजी, जयपुर। नि० का० सं० १९४०; ग्रं० कृष्णचंद्र-भक्तिविलास।

(३९०) गंगादीन, अलवर। नि० का० सं० १९४०; र० स्फुट; वि० ये कविया शाखा के चारण रामनाथ के पुत्र थे।

(३९१) गंगजी, खेतड़ी । नि० का० सं० १९४०; र० फुटकर; वि० ये गौड़ ब्राह्मण साधुराम के पुत्र थे ।

(३९२) हरिनारायण, जयपुर । नि० का० सं० १९४४; र० फुटकर; वि० ये गंगजी के वंशज थे ।

(३९३) कृष्णराम, जयपुर । नि० का० सं१९४४; र० स्फुट; वि० गौतम गोत्रीय ब्राह्मण कुन्दनराम के बेटे थे ।

(३९४) हनुमंतसिंह, अलवर । नि० का० सं० १९४५; ग्रं० (१) हिंडोलाष्टक और (२) पावसाष्टक; वि० ये नरूका क्षत्रिय थे ।

(३९५) रामनाथ, जयपुर । नि० का० सं० १९४७; ग्रं० आर्य-विनोद ।

(३९६) भैरवदान, बीकानेर । नि० का० सं० १९४९; ग्रं० अलंकार-कला-निधि ।

(३९७) बालकृष्ण, कांकरौली । नि० का० सं० १९५०; र० स्फुट; वि० ये कांकरौली के गोस्वामी थे ।

(३९८) रामकुमार, अलवर । नि० का० सं० १९५०; र० स्फुट; वि० ये खंडेलवाल महाजन थे ।

(३९९) रामलाल, गोलावास । नि० का० सं० १९५०; र० स्फुट, वि० ये चारण थे ।

(४००) मन्नालाल, जयपुर; नि० काल सं० १९५०; ग्रं० मधुमास-वर्णन; वि० ये कुंजीलालजी के पुत्र थे ।

(४०१) प्रभुदान, दौलतगढ़ । नि० का० सं० १९५० र० स्फुट; वि० ये देथा गोत्र के चारण थे ।

(४०२) गंगाप्रसाद, जयपुर । नि० का० सं० १९५२; ग्रं० भक्ति-विलास; वि० ये नंदलाल के पुत्र थे ।

(४०३) गंगाधर, जयपुर । नि० का० सं० १९५०; र० स्फुट; वि० ये गुर्जरगौड़ ब्राह्मण बलदेव के पुत्र थे ।

(४०४) जोगालाल, मारवाड़ । नि० का० सं० १९५०; र० स्फुट; वि० ये बडलू गांव-निवासी जाति के सेवग थे ।

(४०५) अजीतसिंह, खेतड़ी । नि० का० सं० १९५०; वि० ये खेतड़ी के राजा थे ।

(४०६) जगन्नाथ चौबे, बूंदी । नि० का० सं० १९५०; ग्रं० अलंकार माला, रामायण-सार, माथुर-कुल-कल्पद्रुम, शिक्षा-दर्पण और जमुना-पचीसी ।

(४०७) रामसिंह, उदयपुर, नि० का० सं० १९५१; र० स्फुट; वि० ये चारण जाति के कवि उदयपुर दरबार के पोलपात थे ।

(४०८) रामद्विज, अलवर । नि० का० सं० १९५२; र० स्फुट; वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका पूरा नाम रामचन्द्र था ।

(४०९) बजरंग, कोटा । नि० का० सं० १९५२; र० स्फुट; वि० ये जाति के राव थे ।

(४१०) विहारीदान, जोधपुर। नि० का० सं० १६५२;, र० स्फुट; वि० ये देथा गौत्र के चारण थे।

(४११) शंभुदान, नागौर। नि० का० सं० १६५२; र० स्फुट; वि० ये जाति के चारण थे।

(४१२) शिवप्रताप, अजमेर। नि० का० सं० १६५२; र० वि० ये कोटा-नरेश के अध्यापक थे।

(४१३) शिवबख्श, अलवर। नि० का० सं० १६५२; र० स्फुट; वि० ये पालोवत शाखा के चारण थे।

(४१४) राघोदान, सिरोही। नि० का० सं० १६५२; र० स्फुट; वि० ये आढ़ा गोत्र के चारण थे।

(४१५) जयलाल, किशनगढ़। नि० का० सं० १६५२; ग्रं० छप्पन भोग-चंद्रिका, प्रतिष्ठा-प्रकाश और कवि-सार-समुच्चय; वि० ये वृन्द कवि की वंश-परंपरा में थे।

(४१६) भैंरोदान, घाणेराव। नि० का० सं० १६५२; स्फुट; वि० ये चारण थे।

(४१७) भोपालदान, थानणी। नि० का० सं० १६५२; र० स्फुट; वि० ये चारण थे।

(४१८) कृष्णचन्द्र, किशनगढ़। नि० का० सं० १६५२; र० स्फुट; वि० ये जाति के कायस्थ थे।

(४१९) किशोरदान, शाहपुरा। नि० का० सं० १६५२; स्फुट; वि० ये दधवाड़िया गोत्र के चारण थे।

(४२०) चालकदान; उदयपुर। नि० का० सं० १६५२; स्फुट; वि० ये आशिया शाखा के चारण थे।

(४२१) चतरसिंह, कर्णवास। नि० का० सं० १६५२; र० स्फुट; वि० ये चारण थे।

(४२२) विद्यारसिक, आबू। नि० क० सं० १६५२; र० स्फुट; वि० विशेष वृत्त ज्ञात नहीं।

(४२३) हरदेव, करौली। नि० का० सं० १६५२; ग्रं० शृंगार शतक; ये चन्द्रलाल के पुत्र थे।

(४२४) हमीरदान, मारवाड़। नि० का० सं० १६५२; र० स्फुट; वि० ये लालस शाखा के चारण थे।

(४२५) सूरतदान, जोधपुर। नि० का० सं० १६५२; र० स्फुट; वि० ये दधवाड़िया गोत्र चारण थे।

(४२६) गोपालजी, मारवाड़। नि० का० सं० १६५२; वि० ये जाति के सेवग थे।

(४२७) बलभद्रसिंह, जोधपुर (?)। नि० का० सं० १६५३; र० स्फुट; वि० विशेष वृत्त ज्ञात नहीं।

(४२८) गिरवरसिंह, केलवा। नि० का० सं० १६५३; र० स्फुट; वि० ये जाति के राव थे।

(४२९) बालचंद, सीकर। नि० का० सं०-१६५६; र० फुटकर पद; वि० ये गौड़ ब्राह्मण थे।

(४३०) हरदान, मोगड़ा। नि० का० सं० १६५६; र० स्फुट; वि० ये सिढायच शाखा के चारण थे।

(४३१) विजयनाथ, जयपुर । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट; वि० ये जाति के चारण थे।

(४३२) पीताम्वर, किशनगढ़ । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट; वि० ये देवीदास के पुत्र थे ।

(४३३) गंगादान, वदनोर । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट; वि० ये चारण थे।

(४३४) रघुनाथसिंह, किशनगढ़ । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट; वि० महाराजा शार्दूलसिंह के आश्रित ।

(४३५) शुकदेव, खरवा । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट! वि० ये कोई ब्राह्मण थे।

(४३६) चंडीदान, किशनगढ़ । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट; वि० ये चारण थे।

(४३७) लक्ष्मीनारायण, जयपुर । नि० का० सं० १९६०; र० स्फुट; वि० गंगजी के वंशज थे ।

(४३८) सामंतसिंह पिपलाज । नि० का० सं० १९६०; र० स्फुट; वि० ये शक्तावत राजपूत थे।

(४३९) घनश्याम, नाथद्वारा । नि० का० सं० १९६०; र० फुटकर कवित्त; वि० ये ब्राह्मण थे ।

(४४०) संपतराम, अलवर । नि० का० सं० १९६२; र० स्फुट ।

(४४१) नाथूराम, जयपुर । नि० का० सं० १९६२; ग्रं० भैरव-विलास ।

(४४२) श्यामलाल मिश्र, जयपुर । नि० का० सं० १९६०; र० स्फुट; वि० ये कुलपति मिश्र की वंश-परंपरा में रघुनाथ जी के बेटे थे।

(४४३) हनुमंतसिंह, बूंदी । नि० का० सं० १९६८; र० स्फुट; वि० ये हाड़ा राजपूत बलवंतसिंह के बेटे थे।

(४४४) कन्हैयालाल, बूंदी । नि० का० सं० १९६८; र० फुटकर; वि० ये गोस्वामी जगदीशलाल के पुत्र थे ।

(४४५) जीवनसिंह, करौली । नि० का० सं० १९६८; र० स्फुट; वि० ये राव खुमाणसिंह के बेटे थे ।

(४४६) उमादत्त, अलवर । नि० का० सं० १९६८; र० स्फुट; वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण अलवर के दरबारी कवि थे ।

(४४७) विष्णुसिंह, करौली । नि० का० सं० १९७०; र० स्फुट; वि० ये राव जीवनसिंह के पुत्र थे ।

(४४८) कृष्णकर, करौली । नि० का० सं० १९७०: [illegible] स्फुट; वि० ये राव जीवन[illegible] ।

(४४९) कर[illegible] । नि० का० सं० [illegible]; वि० ये [illegible] के पुत्र थे ।

(४५०) [illegible] । नि० का० [illegible] र०; वि० ये [illegible] के पुत्र थे ।

(४३१) विजयनाथ, जयपुर । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट; वि० ये जाति के चारण थे ।

(४३२) पीताम्वर, किशनगढ़ । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट; वि० ये देवीदास के पुत्र थे ।

(४३३) गंगादान, वदनोर । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट; वि० ये चारण थे ।

(४३४) रघुनाथसिंह, किशनगढ़ । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट; वि० महाराजा शार्दूलसिंह के आश्रित ।

(४३५) शुकदेव, खरवा । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट! वि० ये कोई ब्राह्मण थे ।

(४३६) चंडीदान, किशनगढ़ । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट; वि० ये चारण थे ।

(४३७) लक्ष्मीनारायण, जयपुर । नि० का० सं० १९६०; र० स्फुट; वि० गंगजी के वंशज थे ।

(४३८) सामंतसिंह पिपलाज । नि० का० सं० १९६०; र० स्फुट; वि० ये शक्तावत राजपूत थे ।

(४३९) घनश्याम, नाथद्वारा । नि० का० सं० १९६०; र० फुटकर कवित्त; वि० ये ब्राह्मण थे ।

(४४०) संपतराम, अलवर । नि० का० सं० १९६२; र० स्फुट ।

(४४१) नाथूराम, जयपुर । नि० का० सं० १९६२; ग्रं० भैरव-विलास ।

(४४२) श्यामलाल मिश्र, जयपुर । नि० का० सं० १९६०; र० स्फुट; वि० ये कुलपति मिश्र की वंश-परंपरा में रघुनाथ जी के वेटे थे ।

(४४३) हनुमंतसिंह, वूंदी । नि० का० सं० १९६८; र० स्फुट; वि० ये हाड़ा राजपूत वलवंतसिंह के वेटे थे ।

(४४४) कन्हैयालाल, वूंदी । नि० का० सं० १९६८; र० फुटकर; वि० ये गोस्वामी जगदीशलाल के पुत्र थे ।

(४४५) जीवनसिंह, करौली । नि० का० सं० १९६८; र० स्फुट; वि० ये राव खुंमाणसिंह के वेटे थे ।

(४४६) उमादत्त, अलवर । नि० का० सं० १९६८; र० स्फुट; वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण अलवर के दरवारी कवि थे ।

(४४७) विष्णुसिंह, करौली । नि० का० सं० १९७०; र० स्फुट; वि० ये राव जीवनसिंह के पुत्र थे ।

(४४८) कृष्णकर, करौली । नि० का० सं० १९७०: [illegible] स्फुट; वि० ये राव जीवन[illegible] ।

(४४९) कदं[illegible] । नि० का० सं० [illegible]; वि० ये [illegible] के पुत्र थे ।

(४५०) [illegible] । नि० का० [illegible] र०; वि० ये [illegible] के पुत्र थे ।

(४३१) विजयनाथ, जयपुर । नि० का० सं० १६५७; र० स्फुट; वि० ये जाति के चारण थे ।

(४३२) पीताम्वर, किशनगढ़ । नि० का० सं० १६५७; र० स्फुट; वि० ये देवीदास के पुत्र थे ।

(४३३) गंगादान, वदनोर । नि० का० सं० १६५७; र० स्फुट; वि० ये चारण थे ।

(४३४) रघुनाथसिंह, किशनगढ़ । नि० का० सं० १६५७; र० स्फुट; वि० महाराजा शार्दूलसिंह के आश्रित ।

(४३५) शुकदेव, खरवा । नि० का० सं० १६५७; र० स्फुट! वि० ये कोई ब्राह्मण थे ।

(४३६) चंडीदान, किशनगढ़ । नि० का० सं० १६५७; र० स्फुट; वि० ये चारण थे ।

(४३७) लक्ष्मीनारायण, जयपुर । नि० का० सं० १६६०; र० स्फुट; वि० गंगजी के वंशज थे ।

(४३८) सामंतसिंह पिपलाज । नि० का० सं० १६६०; र० स्फुट; वि० ये शक्तावत राजपूत थे ।

(४३९) घनश्याम, नाथद्वारा । नि० का० सं० १६६०; र० फुटकर कवित्त; वि० ये ब्राह्मण थे ।

(४४०) संपतराम, अलवर । नि० का० सं० १६६२; र० स्फुट ।

(४४१) नाथूराम, जयपुर । नि० का० सं० १६६२; ग्रं० भैरव-विलास ।

(४४२) श्यामलाल मिश्र, जयपुर । नि० का० सं० १६६०; र० स्फुट; वि० ये कुलपति मिश्र की वंश-परंपरा में रघुनाथ जी के वेटे थे ।

(४४३) हनुमंतसिंह, वूंदी । नि० का० सं० १६६८; र० स्फुट; वि० ये हाड़ा राजपूत वलवंतसिंह के वेटे थे ।

(४४४) कन्हैयालाल, वूंदी । नि० का० सं० १६६८; र० फुटकर; वि० ये गोस्वामी जगदीशलाल के पुत्र थे ।

(४४५) जीवनसिंह, करौली । नि० का० सं० १६६८; र० स्फुट; वि० ये राव खुमाणसिंह के वेटे थे ।

(४४६) उमादत्त, अलवर । नि० का० सं० १६६८; र० स्फुट; वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण अलवर के दरबारी कवि थे ।

(४४७) विष्णुसिंह, करौली । नि० का० सं० १६७०; र० स्फुट; वि० ये राव जीवनसिंह के पुत्र थे ।

(४४८) कृष्णकर, करौली । नि० का० सं० १६७०: [illegible] स्फुट; वि० ये राव जीवन[illegible] ।

(४४९) कद[illegible] । नि० का० सं० [illegible]; वि० ये [illegible] के पुत्र थे ।

(४५०) [illegible] । नि० का० [illegible]; वि० ये [illegible] के पुत्र थे ।

छठा अध्याय

उपसंहार

आज से कोई साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा के रूप में प्रकट हुई थी और राजस्थान के कवियों में सर्वप्रथम भक्त मीरांबाई ने इसमें पद-रचना की थी। तब से लेकर आज तक इस को जो गौरव प्राप्त हुआ और इसमें जो साहित्य लिखा गया उसकी रूप-रेखा दे देने के बाद अब हम उस इतिहास के अन्तिम पृष्ठ पर आ गये हैं।

एक समय था जब ब्रजभाषा समस्त राजस्थान की साहित्यिक भाषा के पद पर आरूढ़ थी। यहाँ के छोटे-बड़े सभी राज्यों के कविगण इसमें कविता लिखते थे। परंतु अब समय बहुत बदल गया है। लोगों के मन में अब ब्रजभाषा के प्रति उतना अनुराग नहीं रहा जितना पहले था। ब्रजभाषा को पद-च्युत कर खड़ी बोली ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है। राजस्थानी भी उस की प्रतिद्वंदिता के लिये उठ खड़ी हुई है। अब केवल कुछ नगण्य से स्थान यहाँ ऐसे रह गये हैं जहाँ ब्रजभाषा की चर्चा और उसमें काव्य-रचना होती है और वह भी सिर्फ शौक पूरा करने के लिए। ब्रजभाषा की यह स्थिति केवल राजस्थान में ही नहीं, उसकी जन्मभूमि ब्रजप्रदेश में भी है। ऐसा लगता है कि ब्रजभाषा का थोड़ा-बहुत प्रभाव जो राजस्थान तथा राजस्थान के बाहर अन्य स्थानों में रह गया है वह भी आगामी दस-बीस वर्षों में लुप्त हो जायगा और संस्कृत भाषा की तरह यह भी स्कूल-कॉलेजों में अध्ययन मात्र की वस्तु रह जायगी।

ब्रजभाषा अपने आप में एक पूर्ण भाषा है। इसका विशाल शब्द-समूह है। इसमें दूसरी भाषाओं के शब्दों को पचाने की अद्भुत शक्ति है। इसकी अभिव्यंजना-शक्ति अनुपम है। विशेषकर श्रृंगार रस के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने की जो विलक्षण क्षमता इसमें पाई जाती है वह अन्य भारतीय भाषाओं में कम देखने में आती है। और इसका-सा माधुर्य तो इसी में है। किंतु इन सब गुणों के होते हुए भी ब्रजभाषा आज अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रही है। इसका दायित्व किस पर है? इसके कवियों पर। उन्होंने बिना समय की गति को जाने-पहचाने इसका अंधाधुंध दुरुपयोग किया है और इसे जनसाधारण

छठा अध्याय

उपसंहार

आज से कोई साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा के रूप में प्रकट हुई थी और राजस्थान के कवियों में सर्वप्रथम भक्त मीरांबाई ने इसमें पद-रचना की थी । तब से लेकर आज तक इस को जो गौरव प्राप्त हुआ और इसमें जो साहित्य लिखा गया उसकी रूप-रेखा दे देने के वाद अव हम उस इतिहास के अन्तिम पृष्ठ पर आ गये हैं ।

एक समय था जव ब्रजभाषा समस्त राजस्थान की साहित्यिक भाषा के पद पर आरूढ़ थी । यहाँ के छोटे-बड़े सभी राज्यों के कविगण इसमें कविता लिखते थे । परंतु अव समय वहुत वदल गया है । लोगों के मन में अव ब्रजभाषा के प्रति उतना अनुराग नहीं रहा जितना पहले था । ब्रजभाषा को पद-च्युत कर खड़ी वोली ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है । राजस्थानी भी उस की प्रतिद्वंदिता के लिये उठ खड़ी हुई है। अव केवल कुछ नगण्य से स्थान यहाँ ऐसे रह गये हैं जहाँ ब्रजभाषा की चर्चा और उसमें काव्य-रचना होती है और वह भी सिर्फ शौक पूरा करने के लिए। ब्रजभाषा की यह स्थिति केवल राजस्थान में ही नहीं, उसकी जन्मभूमि ब्रजप्रदेश में भी है । ऐसा लगता है कि ब्रजभाषा का थोड़ा-वहुत प्रभाव जो राजस्थान तथा राजस्थान के वाहर अन्य स्थानों में रह गया है वह भी आगामी दस-वीस वर्षों में लुप्त हो जायगा और संस्कृत भाषा की तरह यह भी स्कूल-कॉलेजों में अध्ययन मात्र की वस्तु रह जायगी ।

ब्रजभाषा अपने आप में एक पूर्ण भाषा है । इसका विशाल शब्द-समूह है । इसमें दूसरी भाषाओं के शब्दों को पचाने की अद्भुत शक्ति है । इसकी अभिव्यंजना-शक्ति अनुपम है । विशेषकर शृंगार रस के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने की जो विलक्षण क्षमता इसमें पाई जाती है वह अन्य भारतीय भाषाओं में कम देखने में आती है । और इसका-सा माधुर्य तो इसी में है । किंतु इन सव गुणों के होते हुए भी ब्रजभाषा आज अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रही है । इसका दायित्व किस पर है ? इसके कवियों पर । उन्होंने विना समय की गति को जाने-पहचाने इसका अंधाधुंध दुरुपयोग किया है और इसे जनसाधारण

भाषा के रूप में टिका रहना असंभव ही है। अतः इस दिशा में प्रयत्न करना निरर्थक है।

लेकिन एक काम राजस्थान-वासी भी कर सकते हैं। वह यह कि ब्रजभाषा के सैंकड़ों-हजारों ग्रंथ जो यहाँ के विभिन्न राजभांडारों, रामद्वारों, चारण-भाटों के घरों आदि में अस्तव्यस्त और उपेक्षित दशा में पड़े हुए हैं उन सब को एकत्र करें, उनके प्रामाणिक संस्करण निकालें और स्कूल-कॉलेजों में उनके पठन-पाठन की व्यवस्था करें। इससे ब्रजभाषा के साथ जो उनका प्राचीन संबंध है वह बराबर बना रहेगा और हिंदी की बल-वृद्धि होगी। यदि उन्होंने यह नहीं किया तो ब्रजभाषा की वह अतुल सामग्री जो उनके पास धरोहर के रूप में रखी हुई है धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी और आगे आनेवाली पीढ़ियों के सामने वे अपराधी सिद्ध होंगे।

२८. पृथ्वीराज रासो की प्रथम संरक्षा (मोहनलाल-विष्णुलाल पंड्या)
२९. पृथ्वीराज रासो (ना० प्र० स०)
३०. पृथ्वीराज रासो (ए० सो० बं०)
३१. प्रतापचरित्र (केसरीसिंह)
३२. बखनाजी की वाणी (स्वामी मंगलदास)
३३. बिहारी की वाग्विभूति (विश्वनाथप्रसाद)
३४. बिहारी-रत्नाकर (जगन्नाथदास)
३५. ब्रजनिधि-ग्रंथावली (पु० हरिनारायण)
३६. ब्रजभाषा व्याकरण (धीरेन्द्र वर्मा)
३७. ब्रजभाषा साहित्य का नायिका- वर्णन (प्रभुदयाल मीतल)
३८. ब्रजमाधुरी-सार (वियोगी हरि)
३९. भक्तनामावली (ध्रुवदास)
४०. भक्तमाल (नाभादास)
४१. महिला-मृदुवाणी (मुंशी देवीप्रसाद)
४२. मारवाड़ का इतिहास (विश्वेश्वरनाथ रेउ)
४३. मिश्रबंधु-विनोद, भाग १–४
४४. मीराँबाई का जीवनचरित्र (मुंशी देवीप्रसाद)
४५. मीराँबाई की शब्दावली (बे० प्रे०)
४६. मीराँ-माधुरी (ब्रजरत्नदास)
४७. मीराँ-स्मृति-ग्रंथ (हिंदी बंगीय परिषद, कलकत्ता)
४८. मुहणोत नैणसी की ख्यात (ना० प्र० स०)
४९. राजपूताने का इतिहास (ओझा)
५०. राजरसनामृत (मुंशी देवीप्रसाद)
५१. राजस्थान के हिंदी-साहित्यकार (हिंदी-साहित्य-परिषद, जयपुर)
५२. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग १ (मोतीलाल मेनारिया)
५३. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग २ (अगरचंद नाहटा)
५४. राजस्थानी भाषा (सुनीतिकुमार चटर्जी)
५५. राजस्थानी भाषा और साहित्य (मोतीलाल मेनारिया)
५६. रामचंद्रिका (केशवदास)
५७. रामचरितमानस (तुलसीदास)
५८. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज्य मारवाड़, सन् १८९१

४. ए डिस्क्रिप्टि केटेलॉग ऑव बार्डिक ऐंड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स् (तैस्सितोरी)
५. एनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन ऐंड इथिक्स (टी० फ्लार्क)
६. एज यू लाइक इट (शेक्सपियर)
७. गुजरात ऐंड इट्स लिटरेचर (के० एम० मुंशी)
८. दि इंडियन लिटरेचर्स ऑव टुडे (बी० कुमारप्पा)
९. दि एनल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑव राजस्थान (कर्नल टॉड)
१०. दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिंदुस्तान (ग्रियर्सन)
११. दि रूलिंग प्रिंसेज, चीफ्स ऐंड लीडिंग पर्सनेजेज इन राजपूताना ऐंड अजमेर
१२. दि हिस्ट्री ऑव इंडियन ऐंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर (फर्ग्यूसन)
१३. प्रलिमिनेरी रिपोर्ट ऑन दि आपरेशन इन सर्च आव मैनुस्क्रिप्ट्स् ऑव बार्डिक क्रोनिकल्स (हरप्रसाद)
१४. प्रोसीडिंग्ज ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल
१५. फॉल ऑव दि मुगल एम्पायर (जदुनाथ सरकार)
१६. महाराणा कुंभा (हरविलास सारड़ा)
१७. महाराणा सांगा (हरविलास सारड़ा)
१८. मैमोरियल्स ऑव दि जयपुर एग्जिबिशन (टी० एच० हेंडले)
१९. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया (ग्रियर्सन), वोल्यूम ९, भाग १–२
२०. सेंटेनरी रिव्यू ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल
२१. हिस्ट्री ऑव क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (एम० कृष्णमाचार्य)
२२. हिस्ट्री ऑव हिंदी लिटरेचर (की)
२३. हिंदी सर्च रिपोर्ट्स (ना० प्र० स०)

संस्कृत और अपभ्रंश

१. अपभ्रंशकाव्यत्रयी (गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज)
२. गीतगोविंद की टीका (महाराणा कुंभा)
३. चंद्रालोक (जयदेव)
४. पुरातन प्रबंध-संग्रह (मुनि जिन विजय)
५. पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (जयानक)
६. राजप्रशस्ति महाकाव्य (छोटिंग भट्ट)
७. संदेशरासक (अब्दुल रहमान)

———

४. ए डिस्क्रिप्टि केटेलॉग ऑव बार्डिक ऐंड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्टस्
(तैस्सितोरी)
५. एनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन ऐंड इथिक्स (टी० फ्लार्क)
६. एज यू लाइक इट (शेक्सपियर)
७. गुजरात ऐंड इट्स लिटरेचर (के० एम० मुंशी)
८. दि इंडियन लिटरेचर्स ऑव टुडे (वी० कुमारप्पा)
९. दि एनल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज ऑव राजस्थान (कर्नल टॉड)
१०. दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिंदुस्तान (ग्रियर्सन)
११. दि रूलिंग प्रिंसेज, चीफ्स ऐंड लीडिंग पर्सनेजेज इन राजपूताना
ऐंड अजमेर
१२. दि हिस्ट्री ऑव इंडियन ऐंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर (फर्ग्यूसन)
१३. प्रलिमिनेरी रिपोर्ट ऑन दि आपरेशन इन सर्च आव मैनुस्क्रिप्टस्
ऑव बार्डिक क्रोनिकल्स (हरप्रसाद)
१४. प्रोसीडिंग्ज ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल
१५. फॉल ऑव दि मुगल एम्पायर (जदुनाथ सरकार)
१६. महाराणा कुंभा (हरविलास सारड़ा)
१७. महाराणा सांगा (हरविलास सारड़ा)
१८. मैमोरियल्स ऑव दि जयपुर एग्जिबिशन (टी० एच० हेंडले)
१९. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया (ग्रियर्सन), वोल्यूम ९, भाग १–२
२०. सेंटेनरी रिव्यू ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल
२१. हिस्ट्री ऑव क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (एम० कृष्णमाचार्य)
२२. हिस्ट्री ऑव हिंदी लिटरेचर (की)
२३. हिंदी सर्च रिपोर्ट्स (ना० प्र० स०)

संस्कृत और अपभ्रंश

१. अपभ्रंशकाव्यत्रयी (गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज)
२. गीतगोविंद की टीका (महाराणा कुंभा)
३. चंद्रालोक (जयदेव)
४. पुरातन प्रबंध-संग्रह (मुनि जिन विजय)
५. पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (जयानक)
६. राजप्रशस्ति महाकाव्य (छोटिंग भट्ट)
७. संदेशरासक (अब्दुल रहमान)

६	अलसमेदिनी (नंदराम)	१८ वीं शताब्दी
७	अवतारचरित्र (नरहरिदास)	सं० १८८२
८	अश्वमेध-कथा (मुरली)	सं० १८४८
९	आनंदविलास (जसवंतसिंह)	सं० १७३३
१०	इच्छाविवेक (जसवंतसिंह)	१८ वीं शताब्दी
११	इश्कचमन (नागरीदास)	सं० १८५७
१२	कवित्त (तत्त्ववेत्ता)	१८ वीं शताब्दी
१३	कविवल्लभ (जान)	१८ वीं शताब्दी
१४	कविवल्लभ (हरिचरणदास)	सं० १८६६
१५	काव्यसिद्धान्त (सूरत मिश्र)	१९ वीं शताब्दी
१६	खेमदास-ग्रंथावली	सं० १७५७
१७	खुँमाणरासौ (दलपति विजय)	१८ वीं शताब्दी
१८	ख्यात (मुहणोत नैणसी)	सं०, १८९९
१९	ज्ञानसमुद्र (सुन्दरदास)	सं० १७८२
२०	चमत्कारचंद्रोदय (रसपुंज)	सं० १८६६
२१	चरणदास-ग्रंथावली	सं० १८७९
२२	छंदसार (सूरति मिश्र)	१८ वीं शताब्दी
२३	जगतविनोद (पद्माकर)	सं० १८७५
२४	जगविलास (नंदराम)	सं० १८७८.
२५	जसवंत-उद्योत (दलपत मिश्र)	सं० १७४१
२६	जहाँगीरचंद्रिका (केशवदास)	सं० १७९६
२७	त्रियाविनोद (मुरली)	सं० १८००
२८	दादूजी की वाणी	सं० १८८८
२९	दीन-काव्य-संग्रह (दीनजी)	सं० १८५९
३०	ध्यान-मंजरी (अग्रदास)	सं० १८७०
३१	नरसीजी रो माहेरो	सं० १९९८
३२	नेहतरंग (बुधसिंह)	सं० १७९७
३३	परशुराम-सागर	सं० १८३६
३४	पिंगल-शिरोमणि (कुशललाभ)	सं० १८००
३५	पृथ्वीराजरासौ (चंद)	सं० १७६०
३६	विहारी-सतसई (चित्रित)	१८ वीं शताब्दी
३७	विहारी-सतसई	सं० १७२४
३८	विहारी-सतसई	सं० १७४३

६	अलसमेदिनी (नंदराम)	१८ वीं शताब्दी
७	अवतारचरित्र (नरहरिदास)	सं० १८८२
८	अश्वमेध-कथा (मुरली)	सं० १८४८
९	आनंदविलास (जसवंतसिंह)	सं० १७३३
१०	इच्छाविवेक (जसवंतसिंह)	१८ वीं शताब्दी
११	इश्कचमन (नागरीदास)	सं० १८५७
१२	कवित्त (तत्त्ववेत्ता)	१८ वीं शताब्दी
१३	कविवल्लभ (जान)	१८ वीं शताब्दी
१४	कविवल्लभ (हरिचरणदास)	सं० १८६६
१५	काव्यसिद्धान्त (सूरत मिश्र)	१९ वीं शताब्दी
१६	खेमदास-ग्रंथावली	सं० १७५७
१७	खुँमाणरासौ (दलपति विजय)	१८ वीं शताब्दी
१८	ख्यात (मुहणोत नैणसी)	सं०, १८९९
१९	ज्ञानसमुद्र (सुन्दरदास)	सं० १७८२
२०	चमत्कारचंद्रोदय (रसपुंज)	सं० १८६६
२१	चरणदास-ग्रंथावली	सं० १८७९
२२	छंदसार (सूरति मिश्र)	१८ वीं शताब्दी
२३	जगतविनोद (पद्माकर)	सं० १८७५
२४	जगविलास (नंदराम)	सं० १८७८.
२५	जसवंत-उद्योत (दलपत मिश्र)	सं० १७४१
२६	जहाँगीरचंद्रिका (केशवदास)	सं० १७९६
२७	त्रियाविनोद (मुरली)	सं० १८००
२८	दादूजी की वाणी	सं० १८८८
२९	दीन-काव्य-संग्रह (दीनजी)	सं० १८५९
३०	ध्यान-मंजरी (अग्रदास)	सं० १८७०
३१	नरसीजी रो माहेरो	सं० १९९८
३२	नेहतरंग (बुधसिंह)	सं० १७९७
३३	परशुराम-सागर	सं० १८३६
३४	पिंगल-शिरोमणि (कुशललाभ)	सं० १८००
३५	पृथ्वीराजरासौ (चंद)	सं० १७६०
३६	विहारी-सतसई (चित्रित)	१८ वीं शताब्दी
३७	विहारी-सतसई	सं० १७२४
३८	विहारी-सतसई	सं० १७४३

७२	सिद्धान्तसार (जसवंतसिंह)	सं० १७३३
७३	हरिव्यास छब्बीसी	१६ वीं शताब्दी

पत्र-पत्रिकाएँ

१ चाँद
२ जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल (कलकत्ता)
३ जर्नल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी (लंदन)
४ नागरीप्रचारिणी पत्रिका
५ भारतीय विद्या
६ माडर्न रिव्यू
७ माधुरी
८ राजस्थान-भारती
९ राजस्थानी
१० विशाल भारत
११ सुकवि
१२ हिंदुस्तानी

७२ सिद्धान्तसार (जसवंतसिंह) सं० १७३३
७३ हरिव्यास छत्तीसी १६ वीं शताब्दी

पत्र-पत्रिकाएँ

१ चाँद
२ जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल (कलकत्ता)
३ जर्नल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी (लंदन)
४ नागरीप्रचारिणी पत्रिका
५ भारतीय विद्या
६ माडर्न रिव्यू
७ माधुरी
८ राजस्थान-भारती
९ राजस्थानी
१० विशाल भारत
११ सुकवि
१२ हिंदुस्तानी